शक्ति स्वरूप एवं शाक्त सिद्धान्त का समीक्षात्मक अध्ययन

(श्रीमद् देवी भागवत तथा मार्कण्डेय पुराण के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच०डी०उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

वर्ष २००८

निर्देशक

डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री
उपाचार्य एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग
नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ललितपुर (उ०प्र०)

शोधार्थिनी

श्रीमती मीना अवस्थी
परास्नातक संस्कृत

बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय, झाँसी (उ०प्र०)

।। ॐ दुर्गायै नमः।।

"संस्कृतं भारतस्य राष्ट्र भाषा भवेत्"

नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ललितपुर (उ०प्र०)

(सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री
एम०ए०, पी-एच०डी०
नव्य व्याकरणाचार्य
लब्ध स्वर्णपदक
उपाचार्य एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष

आवास- १०८, अवध कुटी
आजादपुरा, ललितपुर (उ०प्र०)
दूरभाष-०५१७६-२७४०३२
चलदूरभाष-०६४१५५०६५८८

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती मीना अवस्थी ने मेरे निर्देशन में "शक्ति स्वरूप एवं शाक्त सिद्धान्त का समीक्षात्मक अध्ययन" (श्रीमद् देवी भागवत् तथा मार्कण्डेय पुराण के विशेष सन्दर्भ में) विषय पर यह शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है। यह शोध प्रबन्ध इनकी मौलिक दृष्टि और सतत अध्यवसाय का प्रतिफल है। श्रीमती मीना अवस्थी ने महाविद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होकर यह शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है। (ये महाविद्यालय में २०० दिन उपस्थित रहीं)

मेरी दृष्टि में यह शोधप्रबन्ध गम्भीर गवेषणापूर्ण एवं विद्यावाचस्पति (पी-एच०डी०) उपाधि के सर्वथा समर्पण योग्य है।

अतएव शोध प्रबन्ध संस्तुति सहित प्रेषित है।

ओमप्रकाश शास्त्री

दिनांक- 19/9/2008

डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री
उपाचार्य एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष
नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ललितपुर (उ०प्र०)

आत्मनिवेदन

कारुण्य नि लये देवि सर्वसनिधि संश्रये।
शरण्ये वत्सले मातः कृपामस्मिन् शिशौ कुरू।।
आणव प्रभुखैः पाशैः पाशितस्य सुरेश्वरी।
दीनास्यास्य दयाधारे कुरू कारूण्यमीश्वरि।।
नमस्ते नाथ ! भगवन्! शिवाय गुरूरूपिणे।
सर्व देवस्वरूपाय सर्वमन्त्रमयाय च।।

भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व, भारतीय जीवन को व्याख्यापित और परिष्कृत करने वाले संस्कृत साहित्य का अध्ययन काल में चिन्तन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। स्नातकोत्तर अध्ययन की समाप्ति के पश्चात मन में शोध कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हुयी थी। किन्तु गृहकार्य में व्यस्त रहने के कारण शोध कार्य प्रारम्भ नहीं हो पा रहा था। एक दिन मैंने शोध करने की इच्छा गुरूवर डॉ0 ओमप्रकाश शास्त्री, उपाचार्य एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष, नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर के समक्ष रखी। उन्होंने मेरा उत्साहवर्धन करते हुए अपने निर्देशन में शोधकार्य कराने की स्वीकृति प्रदान की एवं विषय चयन कर अपने समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।
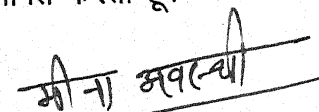
विद्यार्थी जीवन से ही मैं माँ दुर्गा जी की अनन्य भक्त रही एवं पग–पग पर उन्हीं का आश्रय लेकर आगे बढ़ी। अतः मैंने पूज्य गुरूजी के समक्ष पराम्बा भगवती दुर्गा जी से सम्बन्धित शाक्त दर्शन पर शोध करने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य गुरूवर डॉ0 शास्त्री जी के मार्ग दर्शन में शक्ति स्वरूप तथा शाक्त सिद्धान्त का समीक्षात्मक अध्ययन (श्रीमद्भागवत पुराण तथा माकर्ण्डेय पुराण के विशेष सन्दर्भ में विषय पर शोध करना सुनिश्चित हुआ। पराम्बा भगवती, जगतजननी राजराजेश्वरी, दुर्गा जी की परम कृपा से यह शोध कार्य पूर्ण हुआ। अतएव मैं श्रद्धापूर्वक माँ दुर्गा के चरणों में कोटिशः नमन करती हूँ।

पूज्य गुरूवर डॉ0 ओमप्रकाश शास्त्री जी की कृपा से यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। यह मेरा सौभाग्य है कि ऐसे विचारनिष्ठ, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं माँ दुर्गा के अनन्य उपासक गुरू के सानिध्य में मुझे शोधकार्य करने का अवसर मिला। मेरे जीवन के लिए दिशा देने वाले ऐस गुरू के प्रति आभार व्यक्त करना उनकी गरिमा को कम करना होगा। इस अवसर पर मैं

अपने पूज्य पिताजी श्री गजेन्द्रनाथ अवस्थी एवं पूज्य माताजी श्रीमती निर्मला अवस्थी जिनके आर्शीवाद से यह कार्य पूर्ण हो सका। संस्कृत साहित्य में श्रद्धा रखने वाले मैं अपने पति श्री आनन्द मोहन दीक्षित के चरणों में श्रद्धानत हूँ जिनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। मैं अपने पुत्र चि० राजीव, चि० अक्षय एवं पुत्री आयुष्मती, ऋचा का इस अवसर पर स्मरण आवश्यक समझती हूँ जो मेरे स्नेह भाजन है।

संस्कृति की संवाहिका ज्येष्ठ बहिन सदृश गुरूभार्या श्रीमती अन्नपूर्णा शस्त्री की आभारी हूँ जो मेरे प्रति सदैव स्नेह रखती है। अपनी अध्ययनकाल की मित्र श्रीमती पूनम तिवारी के प्रति हार्दिक स्नेह व्यक्त करती हूँ जो हमेशा मेरा उत्साह वर्धन करती थी, इस अवसर पर मैं नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य आदरणीय डॉ० रवीन्द्रनाथ यादव, संस्कृत प्रवक्ता आदरणीय डॉ० बालमुकुन्द मिश्र, आदरणीय डॉ० शशि कुमार सिंह का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने सदैव शोध करने में सहयोग प्रदान किया।

शोध प्रबन्ध को टंकण कार्य में सहयोग प्रदान करने वाले श्री दयाशंकर शुक्ला और श्री ओमप्रकाश शर्मा को धन्यवाद प्रदान करती हूँ। जिन विद्वानों के ग्रन्थों, रचनाओं से मैंने शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में सहयोग प्राप्त किया है। उन सभी के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ तथा अन्त में पराम्बा माँ दुर्गा के चरणों में यह शोध प्रबन्ध समर्पित करती हूँ।

मीना अवस्थी

(श्रीमती मीना अवस्थी)

विषय सूची

प्रस्तावना

प्रस्तावना

या नित्या श्रुतिशीर्षदर्शिततनुर्ब्रह्मा यदाधप्रजा

विश्वेषां जननस्थिती विद्धती मातेति या गीयते ।

अङ्के. सुप्तमिवात्यजं वहति या कल्पावसन्नं जगत्

तां दुर्गाचिदचिन्मयीं परतरानन्दाय वन्दामहे ।।

मन्दस्मितद्विजविनिःसृतचन्द्रभासा

प्रोत्साहितानतसुरी कुमुदावलीं ताम् ।

शम्भुप्रियां भुवनभूरुहमूलभूतां

मायां प्रणौमि मनसाखिलविश्वरूपाम ।

भालं भवानि तव चन्द्रकलावतंसं

सिन्दूरशोभमभिभूतसुवर्णपट्टम ।

कस्तूरिकातिलकमाशु मदीयमाधिं

व्याधिं च नाशयतु शञ्च सदा वितन्यात ।।

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्तया

निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।

ताममिबकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां

भक्त्या नताः स्म विद्धातु शुभानि सानः ।।

उद्भव–स्थिति–संहारकारिणी, जगद्धात्री, अव्याजकरुणामूर्ति, सच्चिदानन्दस्वरूपिणी, ब्रह्ममयी पराम्बा की यह अचिन्त्य अनुग्रह–शक्ति का प्रसाद है कि अनेक प्रत्यूहों के

अनन्तर भी भगवती जगज्जननी के लीला विलास की चर्चा स्वरूप इस शोध प्रबन्ध को सुधी जनों के अनुशीलनार्थ प्रस्तुत किया जा सका है। मन और वाणी दोनों से पूरी तरह अगोचर ब्रह्मतत्व की अभिव्यक्ति उसकी शक्ति के रूप में ही होती है। जो कुछ भी नाम रूपात्मक जगत है, अर्थात जो विश्व है, जो जड़, चेतन की समष्टि है, वह इसी शक्ति का विलास है। जड़ रूप में तथा समग्र चेतन जीवों के रूप में भी यही शक्ति है। भगवान शंकराचार्य ने इसी तत्व को काव्यमयी भाषा में कहा है कि शिव तो अपनी शक्ति के बिना हिल–डुल भी नही सकते। एकात्म प्रत्ययसार, प्रपंच्चोपशम, शान्त शिव जो सर्वथा सब प्रकार से अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अव्यपदेश्य हैं, अपनी शक्ति के ही कारण विश्व बने हुए हैं – जागृत, स्वप्न, सुषुति में अनुस्यूत। श्रीमद्भगवद्गीता के शब्दों में – 'सूत्रे मणिगणा इव'।

शक्ति तथा शक्तिमान में पूरी तरह अभेद होता है। एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं रहती। शक्तिमान बिना शक्ति के नहीं रह सकता तथा शक्ति अपने शक्तिमान के आश्रय के अलावा अन्यत्र हो ही नहीं सकती । इसी को पुराण उमा–महेश्वर के दिव्य दाम्पत्य के रूप में लोक–शिक्षण के रूप में बताते हैं। भगवती माहेश्वरी शक्ति भगवान के शरीर के वामभाग में रहती ही है । यही शिव का अर्धनारीश्वत्व है, सृष्टि की उत्पत्ति का सूत्र, प्रतीकों की भाषा में प्रस्तुत सृष्टि की संचालिका के रूप में ब्रह्म की स्वरूपभूता आत्मशक्ति की पहचान हो-जाने के बाद तो उसकी उपासना का पूरा तन्त्र ही ऋषियों की मेधा ने प्रस्तुत कर दिया। कुछ उपदेश तो आगम ग्रन्थों के रूप में शिव के द्वारा ही रचित हैं। कुछ उपनिषदों के रूप में ऋषियों

द्वारा साक्षात्कार किये हुए हैं । देवी अथर्वशीर्ष ऐसा ही उपनिषद् हैं। कुछ शक्तिपरक मन्त्र तो स्वंय वेद में हैं। वैदिक देवीसूक्त, रात्रिसूक्त मन्त्रभाग के ही अन्तर्गत हैं। इस पर शक्ति की महिमा वेद तथा आगम सभी घोषित करते हैं।

आदिशक्ति की प्रथम अभिव्यक्ति महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के रूपों में होती है। यही तम, रज, तथा सत्व गुणों की अधिष्ठात्री देवियां हैं। महालक्ष्मी से ब्रह्मा तथा लक्ष्मी, महासरस्वती से विष्णु तथा उमा, महाकाली से रुद्र तथा त्रयी विद्या की उत्पत्ति है। यही शाक्त सृष्टि का क्रम है। ब्रह्मा तथा त्रयी विद्या, अक्षरा ने ब्रह्माण्ड का सृजन किया। गौरी तथा रुद्र ने उसका भेदन कर नाम–रूप प्रदान किया। विष्णु तथा लक्ष्मी ने उत्पन्न जगत का, स्थावर–जङ्गम सृष्टि का पालन पोषण किया। ऋषि कहते हैं कि स्त्रीरूपा महाशक्ति पुरुष रूप कैसे हुई, यह अज्ञानी जन नहीं समझ सकते। माया की अचिन्त्य शक्ति–सामर्थ्य को समझने की बुद्धि रखने वाले ही इस प्रक्रिया का रहस्य जान सकते हैं । संसार–चक्र को शक्ति ही विभिन्न रूपों में चला रही है, यह शास्त्र की दृष्टि है। सर्वत्र शक्ति का ही विजृम्भण है। सच्चित् सुखात्मक सर्वगत परमात्मा से तादात्म्य–प्राप्त अभमृण ऋषि की दुहिता वाक् ने अपनी ही स्तुति की है। शक्तितत्वपरक यह स्तुति ऋग्वेद में देवीसूक्त के नाम से प्रसिद्ध है।

वाक् ने बताया है कि वही जगत रूप है और वही जगत का अधिष्ठान भी है। रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वदेव, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि ये सभी देवता उसी के रूप हैं। वही यज्ञ का फल देती है और वही प्रपंच रूप में समस्त भूत–सृष्टि बनी हुई है। देवता उसी के लिए सब कुछ करते हैं। वही सभी जीवों में अन्तर्यामी होकर अन्न का भोग

करती है, सुनती है, देखती है, श्वांस लेती है, वही जिस पर कृपा करती है, उसे सर्वाधिक समृद्ध कर देती है। उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, ऋषि तथा प्रज्ञावान् बना देती है। रुद्र के धनुष को वही हिंसकों के वध के लिए चढ़ाती है, वही लोक–रक्षा के लिए युद्ध करती है और वही पृथ्वी तथा आकाश को व्याप्त किये हुए हैं। उसी ने आकाश का सृजन किया, उसी ने समस्त जीवों को चेतना दी, वही सभी भूतों में व्याप्त होकर स्थित हुई, वहीं कारण रूप से समस्त भुवनों को उत्पन्न करती है और वही समस्त विकारजात विश्व से परे असंग कूटस्थ भी है। ऐसी उसकी महिमा हैं। ऋग्वेद का देवीसूक्त वस्तुतः ब्रह्म की आत्मशक्ति की ही महिमा का वर्णन करता है :–

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदैवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिद्राग्नी अहमश्विनोभा ।।
अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामिद्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।।
अहं राष्ट्रीसंगमनीवसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्याविशयन्तीम् ।।
मया सोऽनामत्ति यो विपश्यति यः प्राणितिय ई श्रृणोत्युक्तम।
अमन्त वो मां त उप क्षियन्ति श्रुधिश्रुत श्रृद्धिवं ते वदामि।।
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं–जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।
अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्माद्विषे शखे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि।।
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिमा सम्बभूव ।।

(दैवीसूक्त – (१–८)

अर्थात मैं सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारद्वय को मैं ही धारण करती हूँ। मैं शत्रुहन्ता सोम को, विश्वकर्मा को, सूर्य को और षडैश्वर्यशाली देवों को धारण करती हूँ। जो मनुष्य दैवों के उद्देश्य से प्रचुर हविर्युक्त सोमयागादि का अनुष्ठान करते हैं, उन यजमानों का यज्ञफल मैं ही धारण करती हूँ।

मैं सृष्टि–स्थिति–प्रलयकारिणी जगदीश्वरी हूँ। मैं गो–हिरण्यादि पार्थिव तथा ज्ञान–विद्यादि अपार्थिव धन को प्रदान करने वाली हूँ । मैं उस ज्ञान को देने वाली हूँ जिससे जीव मैं के स्वरूप की उपलब्धि कर सके, जो ज्ञान सब उपासनाओं का आदि है। इस प्रकार के मैं (आत्मा) का देवतागण भजन करते हैं। मैं बहुभावों में अवस्थित हूँ। मैं अनन्त भावों में तथा अनन्त जीवों में प्रविष्ट हूँ । देवतागण मेरे बहुभावों की उपासना करते है। जीव अनादि जो कुछ भी खाता है, जो कुछ देखता है, जिन श्वास–प्रश्वासादि क्रियाओं के द्वारा जीवित रहता है और जो कुछ सुनता है, ये क्रियायें मेरे ही द्वारा निष्पन्न होती है । मुझे जो नहीं मानते, वे संसार में क्षीणता प्राप्त करते हैं।

हे सौम्य, श्रृद्धापूर्वक सुनो, जो कुछ तुम्हें मैं कहती हूँ । मैं स्वंय इन तत्वों का उपदेश देती हूँ और देवों तथा मनुष्यों के द्वारा ये आद्वत होते हैं। मैं जिसे चाहती हूँ उसे उन्नत पद देती हूँ। उसे अध्यात्मजीवनोपयोगी सुबुद्धि सम्पन्न करती हूँ, आत्मदर्शी ऋषि बनाती हूँ तथा जगत–सृष्टि–'स्थिति–प्रलय–कार्य के उपयोगी ब्रह्मा का पद प्रदान करती हूँ ।

मैं ब्रह्मज्ञानविरोधी विनाशयोग्य रुद्र के (एकादश इन्द्रियों को) हनन करने के लिए प्रणवरूप धनु में आत्मरूप शर का सन्धान करती हूँ । इस प्रकार मैं मनुष्यों के लिए युद्ध करती हूँ तथा स्वर्ग एवं मर्त्यलोक में आविर्भूत होती है। पहले ही कहा गया है कि मैं रुद्ररूप में विराजित हूँ। यहाँ फिर उस रुद्र का हनन करने के लिए मैं ही उद्यत हुई है। मैं ही जीवों का बन्धन हूँ । मैं ही उस बन्धन को छिन्न करती हूँ। मैं ही मुक्ति को देने वाली हूँ।

मन चाहता है कि संसार वासना में आबद्ध रहे; किन्तु प्राण चाहते हैं भगवच्चरणों में सर्वस्व अर्पण कर चरितार्थ हो। । इसी समय युद्ध का सूत्रपात होता है, इसी समय देवासुर संग्राम संगठित होता है। यह संग्राम मैं ही करती हूँ । सर्वत्र मैं ही सब कर्मों की नियंत्री हूँ ।शास्त्रों में पाँच कोषों का उल्लेख है – १– अन्नमय कोष २– प्राणमय कोष ३– मनोमय कोष ४– विज्ञानमय कोष तथा ५– आनन्दमय कोष। व्यष्टि रूप में जीव इन कोषों में क्रमशः पहुंचता है। उसका स्थूल–देह अनामय कोष हैं – सृष्टि–स्थिति–क्रियाशील। उसका मनोमय कोष है – नाना भावों में व्यक्त होने का संकल्प। उसका विज्ञानमय कोष है – वह ज्ञान, जो बहुत्व के संकल्प को धारण कर

रहा है। उसका आनन्दमय कोष निरा आनन्दमय है। यहीं जगत का बीज अव्यक्त रूप में रहता हैं । विराट विज्ञानमय कोष ही स्वर्गलोक हैं। यदि जीव व्यष्टि–विज्ञानमय कोष में अवस्थान कर सके, तो वह अनायास स्वर्गलोक को प्राप्त कर सकता है। श्रीचण्डीतत्व इस विज्ञानमय कोष की साधना हैं।

मैं जगत्पिता हिरव्यगर्भ को प्रसव करती हूँ । इसके ऊपर आनन्दमय कोष–मध्यस्थ विज्ञानमय कोष में मेरा कारण शरीर अवस्थित है। मैं समग्र भुवन में अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ । वह सामने स्वर्गलोक है, उसे भी मैं अपने शरीर के द्वारा स्पर्श कर रही हूँ । जब मैं वायु के समान प्रवाहित होती हूँ, तभी इस समग्र भुवन की सृष्टि का आरम्भ होता है । इन स्वर्ग तथा मर्त्यलोक के परे भी है, विद्यमान हूँ। यही मेरी महिमा है। वायु के समान प्रवाहशीला का अर्थ है – क्रियाशक्तिविशिष्टा । गीता में भी कहा गया है कि जिस प्रकार से सर्वत्रगामी तथा महान वायु आकाश में अवस्थित है, उसी प्रकार से सर्वभूत आत्मा में अवस्थित हैं – यथा –

यथा काशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।। (गीता – ६/६)

इसीलिए ब्रह्मजिज्ञासा के उत्तर में ब्रह्मसूत्र में कहा गया है कि 'जन्माद्यस्य यतः' (ब्र0सू0 २) जिससे समस्त जगत उत्पन्न, जिसमें अवस्थित तथा जिसमें विलीन हैं, वही ब्रह्म है, वही आत्मा, वही मैं। वही जगत्प्रसवित्री, पालयित्री तथा सहन्त्री शक्तिरूपा जननी मैं हूँ । जब तक यह विश्वभुवन विद्यमान है, तब तक यह क्रियाशक्ति विशिष्टा रहेगी।

देवी सूक्त का प्रतिपाद्य है – सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा / चण्डी या देवीमाहात्म्य में यह परमात्मा ही महामाया के रूप में उपाख्यान के आकार में वर्णित हुए हैं। परमात्मा और महामाया अभिन्न हैं जो मनुष्य साधक हैं, ब्रह्मविद हैं, आत्मज्ञ हैं, वे जानते हैं कि आख्या तथा माया सर्वथा अभिन्न पदार्थ है, जब तक साधना है, जब तक देह है, तब तक आत्मा मायारूप में ही अभिव्यक्त है। जब जीव परमात्मा की अवस्था को पहुँचता है, तब न साध्य है, न साधना, न साधक, न शास्त्र, न चिन्ता, न भाषा। चिन्ता या साधना जब तक भाषा की सीमा के भीतर रहती है, तब तक आत्मा माया के रूप में प्रकट होता है।

भगवती की महिमा को बताने, उसे यथार्थतःसमझा पाने में ब्रह्मादिक की भी वाणी अवरुद्ध तथा अवसन्न हो जाती है, तो अल्पप्राण मनुष्य के लिए कुछ भी यथार्थत् कहना सर्वथा दुष्कर कृत्य है फिर भी यत्किन्चित अध्यवसाय इस शोध प्रबन्धं के माध्यम से किया गया है, वह अपनी ही वाणी को, अपनी ही बुद्धि को पवित्र करने के लिए हुआ है।

शक्ति की पूजा का प्रारम्भ ऋग्वेद में प्राप्त होता है। एक ऋचा मे शक्ति को ऐसी शरीरधारिणी क्षमता के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पृथिवी को धारण करने वाली है तथा स्वर्ग में निवास करती है। (ऋ०सं० १.१३६.३) वही सर्वोपरि है, जिसके द्वारा समस्त विश्व का धारण होता है (छान्दोग्य उपनिषद – ३.१२ और यही केनोपनिषद मे वर्णित हेमवती उमा भी हैं। महाभारत में यह कृष्ण की भगिनी के रूप में है और इस प्रकार वैष्णव मत के साथ इसका सम्बन्ध हो गया है। शैवों ने इसे शिव की पत्नी मान

लियां। पुराणों के अन्दर यह चण्डी के रूप में प्रकट होती है, जिसकी दैनिक पूजा का विधान है और शरद तथा बसन्त ऋतु में जिसका उत्सव मनाया जाता हैं। देवी के रूप में इस शक्ति की पूजा की जाती है, जिसका ब्रह्म के साथ ऐक्य भाव है, जो ब्रह्म परम निरपेक्ष तत्व है और जिसका स्वरूप सार, चित्त तथा आनन्द हैं। अथ च जिसका पुमान, स्त्री अथवा निर्गुण रूप में भी चिन्तन किया जा सकता है जैसा कि कहा गया है :–

पुंरुपां वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपां वा विचिन्तयेत् ।

अथवा निष्कलां ध्यायेत् सच्चिदाननदलक्षणाम् ।।

क्रमशः जगन्माता के रूप में उस शक्ति की पूजा ने वैदिक कर्मकाण्ड का स्थान ले लिया। हिन्दू धर्म के इस रूप में सम्बन्ध रखने वाले साहित्य को तन्त्र के नाम से पुकारा जाता है। यह स्त्री जाति के प्रति आदर–भाव के लिए प्रसिद्ध है तथा स्त्रियों को देवी माता की प्रतिकृति करके मानता है । यथा –

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः

स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्

का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ।।

(दुर्गा सप्तशती – ११.६)

इस प्रकार विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा अन्य किसी भी देवता की उपासना मूलतः शक्ति की ही उपासना है। इस प्रकार से वैष्णवादि समस्त सम्प्रदायों की समग्र साधनायें शक्ति–साधना के अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात भाव से भी शक्ति की साधना हो सकती है।

आद्या शक्ति तत्वातीस होते हुए भी सर्वतत्वमयी तथा प्रपंच रूपा है। वह नित्या, परमानन्दस्वरूपिणी तथा चराचर जगत की बीजस्वरूपा है । वह प्रकाशात्मक शिव के स्वरूप ज्ञान का उदबोधक दर्पणस्वरूप है। अहं ज्ञान ही शिव का स्वरूप–ज्ञान है । आद्या शक्ति का आश्रय लिये बिना इस आत्मज्ञान का प्रकाश नहीं हो सकता। आगम शास्त्र के अनुसार जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने सामने स्थित स्वच्छ दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर उस प्रतिबिम्ब को अहं रूप में पहचान लेता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी अधीन स्वकीया शक्ति को देखकर अपने स्वरूप की उपलब्धि करते हैं।

आत्मशक्ति का दर्शन एवं आत्मस्वरूप की उपलब्धि और आस्वादन एक ही वस्तु है। यही पूर्णाहन्ता चमत्कार अथवा सच्चिदानन्द ही धनीभूत अभिव्यक्ति है। मैं पूर्ण हूं – यह ज्ञान ही नित्य सिद्ध आत्मज्ञान का प्रकृत स्वरूप है। वस्तु का सामीप्य सम्बन्ध न होने पर जैसे दर्पण प्रतिबिम्ब को नही ग्रहण कर सकता अथववा वस्तु का सानिध्य होने पर भी प्रकाश के अभाव में दर्पण मे स्थित प्रतिबिम्ब जैसे प्रतिबिम्ब रूप में नहीं भासता, उसी प्रकार पराशक्ति भी प्रकाश स्वरूप परम शिव के सानिध्य के बिना अपने अन्तःस्थिति विश्व प्रपंच को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती। इसी कारण शुद्ध शिव अथवा शुद्ध शक्ति परस्पर सम्बन्ध रहित होकर अकेले जगत के निर्माण का कार्य नहीं कर सकते । दोनों की आपेक्षिक सहकारिता के बिना सृष्टि–कार्य असम्भव है। सारे तत्व इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध से ही उदभूत होते हैं । इससे कोई यह न समझे कि शिव और शक्ति अथवा प्रकाश और विमर्श विभिन्न और स्वतन्त्र पदार्थ हैं।

' शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्वमाहुर्मनीषिणः '।

शास्त्र का यही अन्तिम सिद्धान्त है तथापि संहार–कार्य में शिव का और सृष्टि कार्य में शक्ति का प्राधान्य स्वीकार करना होगा । पराशक्ति स्वतन्त्र होने के कारण परावाक प्रभृति क्रम का अवलम्बन कर विश्व–सृष्टि का कार्य सम्पादन करती है और तदन्तर सृष्ट विश्व के केन्द्र स्थान में अवस्थित होकर उसका नियमन करती है। यही स्वातन्त्रय उपर्युक्त रीति से क्रमशः इच्छन, ज्ञान और क्रिया का आकार प्राप्त कर वैचित्य का आविर्भाव करता है और विश्वरूप धारण करता है । शिव तटस्थ तथा उदासींन रहकर निरपेक्ष साक्षिरूप में आत्मशक्ति की यह लीला देखा करते हैं । यह नाना तत्वमय विश्वसृष्टि ही पराशक्ति का स्फुरण है।

महेश्वर केवल पराशक्ति द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, अन्यथा कदापि नहीं । समाधिनिष्ठ महर्षि भी इस महाविद्या शक्ति के प्रकाश के बिना न महेश्वर को देख सकते हैं और न प्राप्त कर सकते हैं। पराशक्ति ही महेश्वर का दिव्य तेजः स्वरूप है। इसी शक्ति को गायत्री कहा जाता है । अर्थात 'गायन्तं त्रायतः इति गायत्री', जिसका अर्थ है – वह गान करने वाले का त्राण करती है । गायत्री त्रिपाद हैं। प्रत्येक पाद में आठ अक्षर हैं। यह आठ दो का घन है। इस दो का भाव है – रूप और नाम । यह 'ज्योतिषां ज्योति' और परमा विद्या तथा जीव एवं चित शक्ति का मूल है। इसके भीतर नाम अर्थात शब्द–ब्रह्म है, जो अनादि और अव्यय एवं जिसका ब्रह्म रूप प्रणव है। धन व्यक्त किये जाने पर चतुष्कोण होता है। इस कारण दो के तीन धन व्यक्त होने पर चतुष्कोण हुए, अर्थात् त्रिपाद से चतुष्पाद हुआ। प्रत्येक पाद में चार अक्षर होने से गायत्री में चौबीस अक्षर हुए। ये छः चतुष्कोण छः शक्तियाँ हैं, जिनके नाम हैं–

क्रियामात्र का कारण है। २. पाञ्जभौतिक उपाधि के रज–तम भाव से मुक्त होने पर इसके द्वारा दूरदर्शन, अन्तर्ज्ञान, अन्तर्दृष्टि प्रभृति सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

३. **इच्छा शक्ति**– इसके द्वारा शरीर के स्नायुमण्डल में लहरें उत्पन्न होती है, जिससे कर्मेन्द्रियाँ इच्छित कार्य को करने के निमित्त संचालित होती है। उच्च कक्ष में सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर इस शक्ति के द्वारा ब्राह्म तथा आभ्यन्तर में समान भाव उत्पन्न होकर सुख तथा शन्ति की वृद्धि होती है एवं इसके द्वारा उपयोगी तथा लोकहितैषी कार्य सम्पन्न होते है।

४. **क्रियाशक्ति**– यह आन्तरिक विज्ञान शक्ति है। इसके द्वारा सात्विक इच्छा शक्ति कार्य रूप में परिणत होकर व्यक्त फल उत्पन्न करती है। एकाग्रता की शक्ति प्राप्त होने पर इस शक्ति के द्वारा इच्छित विशेष मनोरथ भी सफल हो जाते है। योगियो की सिद्धियाँ इन्हीं सात्विक तथा अध्यात्मिक इच्छा एवं क्रिया शक्ति द्वारा व्यक्त होती है।

५. **कुण्डलिनी शक्ति** – इस शक्ति के समष्टि तथा व्यष्टि दो रूप है। सृष्टि में यह प्राण अर्थात जीवनी शक्ति है, जो समाष्टि रूप में सर्वत्र नाना रूपों में वर्तमान है। आकर्षण तथा विकर्षण दोनों इसके रूप हैं। विद्युत तथा आन्तरिक तेज भी इसी के रूपान्तर हैं। प्रारब्धकर्मानुसार यही शक्ति बाह्म तथा आभ्यन्तर में समानता का सम्पादन करती है और इसी के कारण पुनर्जन्म भी होता है। व्यष्टि रूप में मनुष्य के शरीर के भीतर यह तेंजोमयी शक्ति है। यह पंचप्राण अर्थात जीवनी शक्ति का मूल है,

जिन प्राणों के द्वारा ही इन्द्रियाँ कार्य करती है। इसी शक्ति के द्वारा मन भी संचालित होता है।

६. **मातृकाशक्ति**– यह अक्षर, बीजाक्षर, शब्द, वाक्य तथा यथार्थ गान–विद्या की भी शक्ति है। मन्त्रशास्त्र के मन्त्रों का प्रभाव इसी शक्ति पर निर्भर करता है। इसी शक्ति के साहाय्य से इच्छा शक्ति या क्रिया शक्ति फलप्रदा होती है। कुण्डलिनी–शक्ति का आध्यात्मिक भाव भी इस शक्ति की सहायता के बिना न तो जागृत होता है ओर न ही लाभदायक। जब सात्विक साधक के निरन्तर सात्विक मन्त्र का जप करने और ध्यान का अभ्यास करने से मन्त्र की सिद्धि होती है, तब उसकी इच्छाशक्ति, क्रिया शक्ति तथा कुण्डलिनी–शक्ति भी स्वतः अनुसरण करती है, अतएव यह मन्त्र–शक्ति सब शक्तियों का मूल है, क्योंकि शब्द ही सृष्टि का कारण है। सृष्टि के सब नाम इसी शक्ति के रूपान्तर हैं और रूप भी इसी के अधीन हैं। बीज मन्त्र इसी शक्ति का व्यक्त रूप भूलोक में है। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर वह पवित्रात्मा का उद्धार माता की भाँति करता है, किन्तु अपवित्रात्मा तथा कामासक्त को अधोगति प्रदान करता है।

अथच प्रसंगतः यहाँ पर देवी भागवत के अनुसार शक्ति–स्वरूप पर कछ लिखना समीचीन प्रतीत हो रहा है। शक्ति–शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए देवी भागवत में कहा गया है –

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता।।

(देवी भागवत–६.२.१०)

श नाम ऐश्वर्य का तथा क्ति नाम पराक्रम का है एवं ऐश्वर्य पराक्रम स्वरूप तथा दोनों को प्रदान करने वाली को शक्ति कहते हैं। इसी आदि–शक्ति प्रकृति–देवी की विकृति ही जगत् है। अब जिस प्रकार प्रकृति अपने विकृतिरूप जगत् की रचना करती है, यह संक्षेप में प्रकृति शब्द के अर्थ के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यथा –

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।।
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सा च शक्ति समन्विता।
प्रधाना सृष्टि करणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते।।
प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टि वाचकः।
सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।।

(देवी भागवत – ६.१.५.८)

प्र का अर्थ प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और कृतिका अर्थ सृष्टि है तथा च जो सृष्टि की रचना करने में प्रकृष्ट हो, उसे प्रकृति कहा जाता है। यह प्रकृति का तटस्थ लक्षण है। प्र–शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण का वाचक है, कृ–शब्द मध्यम रजोगुण का तथा ति–शब्द तमोगुण का वाचक है। यह प्रकृति का स्वरूप–लक्षण है, जैसा कि सांख्य शास्त्र में प्रतिपादित किया गया है –

'सत्तवरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'।

इन तीन गुणों के द्वारा ही तीन देवताओं को अर्थात सत्तव से विष्णु को, रज से ब्रह्मा को तथा तम से रूद्र को उत्पन्न कर भगवती आद्या शक्ति जगत् का पालन, उत्पत्ति एवं लय करती है। जैसा कि देवी भागवत में कहा गया है–

'सृजसि जननि देवान् विष्णुरूद्राजमुख्यान्

तैः स्थितिलयजननं कारयस्येकरूपा।

इस विषय को बह्वृचोपनिषद् में इस प्रकार वर्णित किया गया है – ,

'देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत् ....

तस्या एव ब्रह्म अजीजनत्। विष्णुरजीजनत् .... सर्व–

मजीजनत् ....। सैषा पराशक्तिः'। (१.१)

सृष्टि के आदि में एक ही देवी थी। उसने ही ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया। उससे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र उत्पन्न हुए। अन्य सब कुछ उससे ही उत्पन्न हुआ। वह ऐसी परा–शक्ति है। दुर्गा सप्तशती के प्राधानिक रहस्य में उल्लिखित है –

स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।

पुयोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः।।

सज्जहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः।।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपनी अर्धाड़गीभूत त्रिविध शक्ति–सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी – की सहायता से जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते है।

न हि क्षमस्त थात्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना।

(देवीभागवत–६.२.६)

अर्थात शक्ति के बिना आत्मदेव सृष्टि–रचना नहीं कर सकते।

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।

स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः।।

(देवी भागवत–६.२.१२)

अर्थात ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश तथा बलवाचक भग–शब्द से युक्त भगवती से संयुक्त होने के कारण आत्मा का नाम भगवान् है। स्वेच्छामय होने से भगवान् कभी साकार तथा कभी निराकार होते है।

इत्थं यदा – यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीयहिं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

(श्री दुर्गा सप्तशती–११.५५)

वही जगज्जननी 'जब–जब दानवजन्य बाधा उपस्थित होगी, तब–तब मै अवतीर्ण होकर दुष्टों का नाश करूँगी' अपनी इस प्रतिज्ञा के अनुसार समय–समय पर दुर्गा, भीमा, शाकम्भरी, प्रगतिनामों से अवतार ग्रहण कर जगत् का कल्याण करती हूँ। अथ च देव–देवी, स्त्री–पुरूष आदि स्त्री–पुरूष भेद से तथा :–

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि में पराम्। (गीता–७.५)

परा और अपराप्रकृति अर्थात जड़–चेतन भेद से दृश्यमान समस्त विश्व शक्ति का ही विलास है। इस प्रकार शक्ति के सगुण रूप का दिग्दर्शन का संक्षेपतः उसके गुणातीत स्वरूप का निरूपण किया जा रहा है।

एकमेवाद्वितीयं यद् ब्रह्म बेदा वदन्ति वै ।
सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं सन्देहं विनिवर्तय।।

(देवी भागवत–३.५.४३)

'जिसको वेद एक अद्वैत ब्रह्म के रूप प्रतिपादित करते है, वह तुमसे भिन्न है या तुम्हीं ब्रह्म हो, इस सन्देह को निवृत्त करो'। इस प्रकार ब्रह्मा जी के प्रश्न करने पर जगज्जनी भगवती ने उत्तर दिया कि –

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।

योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति खलु विभ्रमात्।।

'मैं और ब्रह्म सदैव एक हैं, हममें कोई भेद नहीं है, जो वह है, सो मैं हूँ, सो वह है, हममें भेद भ्रम से ही भासित होता है'।

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।

सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसङ्गत्वं स्फुटं मम।।

स्वशक्ति के संयोग से मेरा, अर्थात् ब्रह्म का जगत्कारणत्व सिद्ध होता है। वस्तुतः जगत् का मिथ्यात्व होने से मेरा असङ्गत्व स्पष्ट है। यह मेरा अलौकिक रूप है।

शिव तथा शक्ति के संयोग से ही यह सारा संसार है। शिव परमात्मा एक हैं, परन्तु **'एकाकी नारमत, स आत्मानं द्वेधाऽपातयत् पतिश्च पत्नी चाभवत्'**–द्वेधा भी, बहुधा भी, अनेकधा भी, असंख्यधा भी, **'एकोऽहं बहुस्याम्'**। एक पुरूष की नाना प्रकृति होते हुए भी एक ही पुरूष सर्वव्यापी होना चाहिए, परन्तु अन्योन्याध्यास से एक के अनेक पुरूष, अनेक की एक प्रकृति भी दृग्गोचर होते हैं।

आदिम द्वन्द्व, पहला जोड़ा, पुरूष तथा पुरूष की प्रकृति का है। संसार के असंख्य, अगण्य, अनन्त, अन्य सब जोड़े इसी के अनुकरण हैं, फल हैं, कार्य हैं। तद्यथा–

गिरामाहुर्देवीं दृहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पदमां हर सहचरी मद्रित नयाम।
तुरीया कापित्वं दुरधिगमनिस्सीम महिमे
महामाये विश्वं भ्रमयसि पर ब्रह्ममहिषी।। (आनन्दळहरी)

शंकरः पुरूषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।
विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी।।
मन्ता स. एव विश्वात्मा मन्तव्यं तु महेश्वरी।
आकाशः शङ्क.रो देवः पृथिवी शङ्क.र प्रिया।।
समुद्रो भगवानीशो वेला शैलेन्द्र कन्यका।
वृक्षो वृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वरप्रिया।।
शब्दजालमशेषं तु धत्ते शर्वस्य बल्लभा।
अर्थस्य रूपमखिळं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः।।
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरूदाहृता।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स देवो महेश्वरः।।
पुल्लिड़गमखिळं धत्ते भगवान् पुरशासनः।
स्त्रीलिड़ंग चाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा।।
येयमुक्ता विभूतिर्वै प्राकृती साऽपरा मता।
अप्राकृतीं परामन्यां गुह्मां गुह्मविदो विदुः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
अप्राकृती परा सैषा विभूतिः परमेष्ठिनः।।

(शिवपुराण, वा., संहिता, उत्तरखण्ड, अ०५)

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम्।,
इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिदुर्रत्यया।।

तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वमेव पुरूषः परः।
त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग् भवान्।।
गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग् भवान्।
त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया।।
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपा श्रयः।।

(श्रीमदभागवत–६.१६.११–१३)

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नमो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्ध–र्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्।।
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्री भूर्मिर्भधरों हरिः।
सन्तोषो भगवॉल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती।।
इच्छा श्रीर्भगवान् कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम्।
आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः।।
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्तोऽसौ कला त्वियम्।
ज्योत्स्ना लक्ष्मी। प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः।।
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः।
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया।।
तृष्णा लक्ष्मीर्जगनाथो लोभो नारायणः परः।
रती रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीगोविन्द एव च।।
किञ्चातिबहुनोक्तन संक्षेपेणेदमुच्यते।।
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्।।

(विष्णुपुराण, प्रथमांश, अ०८)

वायुपुराण में इसी अर्थ को अन्य रूपक में बतलाया गया है। पुरूष तत्व का नाम शिव, स्त्रीतत्व का नाम विष्णु, सन्तानतत्व का नाम ब्रह्मा कहा गया है। यथा–

विष्णुरूवाच (ब्रह्माणं प्रति)–

हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरूषोऽव्ययः।

प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः।।

अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।

यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते योगिभिः शिवः।।

एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः।

अस्मान्महत्तरं गुहयं भूतमन्यन्न विद्यते।।

(वायु–पुराण, पूर्वार्द्ध, अ.२४)

शिव उवाच (विष्णुं प्रति) –

प्रकाशञ्चाप्रकाशञ्च जङ्गम स्थावरञ्च यत्।

विश्वरूपमिदं सर्वं रूद्रनाराणात्मकम्।।

अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम्।

भवान् ऋतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम्।।

भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयमहं जप्यं भवान् जपः।

आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये।।

आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरूषं शिवम्।

भवानर्द्धशरीरं में त्वहं तव तथैव च।।

(वायु–पुराण, पूर्वार्द्ध, अ०२५)

विष्णु के मोहिनी अवतार की कथा में इस भाव की चरितार्थता स्पष्टतः दृग्गोचार होती है।

'शिवस्य ह्रदयं विष्णुर्विष्णोश्च ह्रदयं शिवः'।

ऐसे ही ब्रह्मा का इनसे अभेद है। त्रिमूर्ति–विष्णु–ब्रह्मा–महेश की, सरस्वती–लक्ष्मी–गौरी की, सत्व–रजस्–तमस् की, ज्ञान–इच्छा–क्रिया की सदैव अभेद्य है। इन सब का समाहार शक्ति–शक्तिमान् में होता है।

यहाँ पर प्रसंगतः इस शोध–प्रबन्ध में प्रतिपादित विषय–वस्तु का संक्षेपतः उल्लेख करना भी समीचीन प्रतीत हो रहा है। इस शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में शक्ति–स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्तो की प्रारम्भिक उद्भावना के अन्तर्गत वेदो में शक्ति का स्वरूप, शक्ति के रूप में ब्रह्म की उपासना, शक्ति के महाकालीख महालक्ष्मी, महासरस्वती स्वरूपों का निरूपण, शक्ति का सृष्टिकारक रूप, शक्ति के सात्विक, राजस, तामस स्वरूप, शक्ति का पालक रूप, शक्ति का रक्षक रूप, उपनिषदों में शक्ति का क्षर–अक्षर रूप, शक्ति का पस–ज्ञान–इच्छा–क्रिया–कुण्डलिनी–मातृ का रूप आदि विषयों का विशद निरूपण किया गया है।

द्वितीय अध्याय में श्रीमद्‌देवी भागवत का परिचय एवं उसमें प्रतिपादित शक्ति–स्वरूप तथा शाक्त–सिद्धान्त के अन्तर्गत श्री मद्‌देवी भागवत का समय, विषय, रचना का उद्‌देश्य तथा देवी भागवत में शक्ति के विभिन्न स्वरूपों का विशद निरूपण तथा उनका दार्शनिक विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में मार्कण्डये–पुराण का परिचय एवं उसमें प्रतिपादित शक्ति का स्वरूप के अर्न्तगत मार्कण्डेय–पुराण की रचना का समय, विषय, रचना का उद्‌देश्य आदि विषयों का विस्तृत निरूपण करते हुए जगज्जननी शक्ति के विभिन्न स्वरूपों का विशद वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में शक्ति–स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्त के अर्न्तगत वेदों में शक्ति के विविध रूप, उपनिषदों में शक्ति के स्वरूप प्रभृति विषयों का यथामति विस्तृत वर्णन किया गया है। अथ च शाक्त–सिद्धान्त में मोक्ष की कामना तथा मोक्ष का स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्त का महत्व आदि विषयों का विस्तृत विवेचना किया गया है।

अन्तिम तथा पञ्चम अध्याय में शक्ति–स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्त में दर्शन की पृष्ठभूमि के अर्न्तगत शाक्त सिद्धान्त का ऐतिहासिक उन्मूलन, शक्ति की उपासना का क्रमिक इतिहास, शाक्त सिद्धान्त का दार्शनिक रूप और क्रमिक विवेचन, शक्ति की उपासना में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यो का मत, समीक्षा तथा उपसंहार प्रभृति का विशद् निरूपण किया गया है।

माँ जगज्जननी भगवती के कृपा–प्रसाद से यह प्रबन्ध पूर्ण हुआ है, अतः माँ की स्तुति के साथ ही इस प्रस्तावना की सम्पूर्ति प्रतीत हो रही है –

या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाद्या परा
सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता।
दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता

प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा।।

सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं

शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।

संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका

तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि।।

शक्ति–शक्तिमदुत्थं हि शाक्तं शैवमिदं जगत्।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्ताभ्यां नमो नमः।। इति।
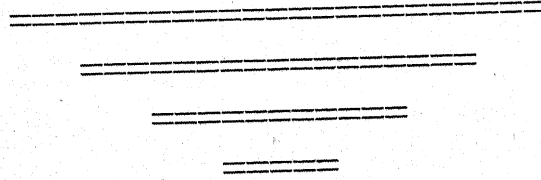
प्रथम अध्याय

शक्ति – स्वरूप – सिद्धान्त की प्रारम्भिक उद्भावना

यस्याः पादसरोरुहार्चनबलाद् देवा दिवं भुञ्जते
यां ध्यात्वा मुनयोऽथं योगनिरताः कुर्वन्ति साक्षात्प्रभुः।
यन्मन्त्राधिक जापधौततमसो वर्चस्वभावो जनाः
वाग्देवीं प्रणमाम आत्मविनयश्रद्धाप्रसूनैर्नुताम्।।

वेदों में शक्ति–स्वरूपः

शक्ति–तत्व की उपासना अनादिकाल से ही संसार में होती आ रही है। इससे लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्व होती है। बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य, निःश्रेयस् आदि शक्ति–तत्व के ही रूपान्तर हैं। ब्रहम भी शक्ति–तत्व का अभिन्न रूपान्तरण ही है। भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी में कहा हैः

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

शक्ति तत्व से युक्त होकर ही ब्रहम कार्य करने में समर्थ होता है, अन्यथा कुछ भी नहीं कर सकता। प्रत्यक्ष रूप से भी यह देखा गया है कि शक्तिमान् ही कार्य करता है। इतिहास से भी यह बात स्पष्ट है कि सदैव शक्तिशालियों का ही वर्चस्व रहा है।

वैदिक–साहित्य में भी सबसे प्राचीन संहिता–ग्रन्थों के अनेक मन्त्रों में शक्ति–तत्व रहस्य कहा गया है। देवी–सूक्त, रात्रि–सूक्त तथा सरस्वती–सूक्त आदि प्रसिद्व ही है। अथर्ववेद के प्रथम काण्डके तेरहवें सूक्त तथा सरस्वती–सूक्त आदि प्रसिद्व ही है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूक्त में चार मन्त्र है–

सूक्त के ऋषि भृगु अंगिरस हैं। विद्युत्–तत्व के द्रष्टा भृगु मुनि की शक्ति का उदाहरण महाभारत, पुराण प्रभृति ग्रन्थों में जिस प्रकार से दिया गया है, वैसा अन्य किसी आर्ष ग्रन्थ में नही प्राप्त होता। भृगु मुनि इतने शक्तिशाली हैं कि उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की भी परीक्षा ली थी और भगवान विष्णु को लात मारी थी। यजुर्वेद में इनके विषय में इस प्रकार कहा गया है–

'भृगूणामङ्गि.रसा तपसा तप्यध्वम्'। (अ.1010)

अङ्गिंरा गोत्र वाले भृगुओं के तेज से तेजस्वी बनो। गोपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है–

'एतद् वै भूयिष्ठं ब्रहम यद् भृग्वङ्गि.रसाम्'[1]।

शतपथ–ब्राह्मण में भी कहा गया है कि यह सर्वश्रेष्ठ तेज भृगु–आङ्गि. रसों का ही है–

'इत्येतद् वै तेजिष्ठं तेजो यद् भृगवङ्गि.रसाम्'[1]।

यह सब महत्व शक्ति–पदार्थ का ही है। भृगु अङ्गि.रा मुनि ने ही इस अनादि शक्ति–विज्ञान को जगत् के समक्ष प्रकट किया है। इस सूक्त का प्रतिपाद्य देवता रूप विद्युत्, ही शक्ति–पदार्थ है। आजकल पाश्चात्य प्रतिपाद्य देवता रूप विद्युत् ही शक्ति–पदार्थ है। आजकल पाश्चात्य विज्ञान के प्रचार–प्रसार के विद्युत्–तत्व को जो प्रचार एवं उपयोग हो रहा है, वह इसका स्थूल रूप ही है। शुद्व चेतन रूप जो सारे जगत् का नियामक है, वह इससे परे है। इसे ही दार्शनिक ग्रन्थों में सच्चिदानन्दरूपिणी बताया गया है। वही

---

[1] गोपथ-ब्राह्मण- ३.४

है। यह भाव उक्त सूक्त में दिये गये मन्त्रों के अक्षरों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाएगा। पहला मन्त्र है–

'नमस्ते अस्तु विद्युते नतस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने योनादूडारो अस्यसि'[१]।।

हे प्रकाश रूप वाली देवी! विद्युत्–तत्व रूप तुझे नमस्कार है। शब्द रूप से गर्जना करने वाली देवी तुझे नमस्कार है। अश्म वज्र भी तेरा रूप है, अतः उसे नमस्कार है, जिससे तुम हमारे कष्टों को दूर करती हो। विद्युत, का मुख्य सम्बन्ध जल है। उसका कारण रूप मेघ है, उसमें विद्युत की चमक, गर्जना एवं वज्रपात तीनों होते है। ये तीनो विद्युत् शक्ति के भौतिक रूप हैं। जगत् के व्यवहार में इन तीनों का उपयोग करके आज भौतिक विज्ञान अनेक चमत्कारिक दृश्य नये रूप में नित्य ही दिखा रहा है। इलेक्ट्रोन प्रोटोन एवं न्यूट्रन इस दो प्रकार की विद्युत से सारे पार्थिक पदार्थो की सृष्टि हुई है। पृथिवी का यह वर्तमान रूप इन्हीं दोनों विद्युतों के योग का परिणाम है, ऐसा वैज्ञानिकों का मत है। इसी से मिलता–जुलता वैदिक सिद्वान्त है–

'इयँ वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा[२]'

भूत–भौतिक सृष्टि के पहले यह पृथिवी ही उत्पन्न हुई। विद्युत् के विषय में उक्त के विषय में उक्त मन्त्र में जितने शब्द आये है, उनकी निरूक्ति वैदिक ग्रन्थों भिन्न–भिन्न प्रकार से की गयी है। यथा–

'शक्तितस्तान् देवान् व्यद्युत् पाप्मनः सकाशात् वियोगित्वाद् यद् विद्युत्'[१]

---

[१] अथर्ववेद-१.१३१
[२] शतपथ- ब्राह्मण-१४.१.२.१०

देवताओं को पापों से मुक्त कराने के कारण उसका नाम विद्युत् हुआ।
'विद्युत ब्रम्होत्याहु:' (शत, ब्रा.6.1.3.14) विद्युत् ही वज्र है। 'विद्युद् वाऽअपां वाऽवूम ज्योतिः' (यजुर्वेद–13.53) विद्युत् ही जल की ज्योति है। 'वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव, विद्युद् हि इदं वृष्टिमन्नाद्यं संयच्छति' (ऐतरेयोपनिषद्–2.41)। समस्त जलकणों का एकीभाव ही विद्युत् है। विद्युत् ही वृष्टि तथा अन्नादि की पुष्टि को प्रदान करती है। 'यो विद्युति पुरूषः स सर्वरूपः सर्वाणि हयेतस्मिन् रूपाणि' (ऐतरेयोपनिषद्–4.1)। विद्युत् में जो पुरुष हैं, उसी के ये सब रूप हैं, उसी में ये सब रूप रहते है।

विद्युत में गति हैं। वहाँ शब्द का होना नियम–सिद्व है। शब्द ही व्रज है अथवा उसकी अभिन्न शक्ति ही वज्र कहलाती हैं। 'वज्र एव वाक्' (ऐतरेयोपनिषद्–2.21)। महर्षि पतंजलि भी महाभाष्य के पस्पशाह्निक में कहते हैं– 'स वाग्वज्रो यजमानं हिन–स्ति'– वह वाणी वज्र होकर यजमान का विनाश कर देती है। अस्तु, विद्युत्–शक्ति के भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक रूप होते है।

महर्षि यास्क के मतानुसार प्रत्येक वैदिक मन्त्र का अर्थ भौतिक, दैविक तथा अध्यात्मिक होता है। तथा–

> 'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुक्तं तद् दैवतो स मन्त्रो भवति, तास्त्रिविधाः– परोक्ष–कृताः, प्रत्यक्षकृताः, आध्यात्मिक्यश्च'[२]।

अर्थात् जिस अर्थ की इच्छा से ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वह मन्त्र उस देवता का होता है। उसके तीन रूप हैं– 1. परोक्ष, 2. प्रत्यक्ष एवं

---

[१] तैत्तिरीयोपनिषद्-१.१०.७.१
[२] निरूक्त- ७.१

3. आध्यात्मिक। अन्य पुरूषों की अपेक्षा से होने वाले वर्णन को परोक्ष कहते है। तथा मध्यम पुरुष की अपेक्षा वाले को प्रत्यक्ष एवं अहं रूप से तादात्म्य करके बयान वाले को आध्यात्मिक कहते है। सूक्त की यह ऋचा प्रत्यक्षकृत है। ऋषि रूप से उस महाशक्ति का वर्णन कर रहे है। अध्यात्मवाद की अपेक्षा से इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से लगाया जा सकता है। दैविक अर्थ अध्यात्मवाद के ही अन्तर्गत है–देवि! विद्युत–रूपे! मूलाधार में साढ़े तीन फेरे मे रहने वाली तुझे नमस्कार है। स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के भेदन मे वज्र का कार्य करने वाली हे देवी, तुझे नमस्कार है। ये तीनों कार्य शक्ति से ही सम्भव होते है। इसे तांत्रिक लोग अच्छी तरह से जानते हैं। इसके सुसम्पन्न होने पर ही सभी साधकों के कष्ट दूर हो जाते हैं। अस्तु ऋषि कहते हैं –'येनादूडाशे अस्यसि', अर्थात् हमारे (साधकों के) सभी क्लेशों (पापों) को दूर करती है।

तांत्रिक ग्रन्थों में भगवान शिव बताते हैं कि मूलाधार चक्र में सर्प की आकृति में साढ़े तीन फेरे मे लिपटी इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण शक्ति ही है। यह तत्व आन्तरिक साधन से जागृत होता है। त्रिपुरासासमुच्चय में कहा गया है –

शक्तिः कुण्डलिनीति या निगदिता आईम संज्ञा जग–
न्निर्माणे सततोद्योता प्रविलसत् सौदामिनी सन्निभा।
शंकावर्तनिभा प्रसुप्तभुजगाकारा जगन्मोहिनी
त्नमध्ये परिभावायेद् विसलता तन्तू पमेयाकृतिम!।।
हुंकारेण गुरूपदिष्टविधिना प्रोत्थाप्य सुप्तां ततः
कृत्वा तां कलया तथा परमया चिद्रूपया सग्ड.ताम्।
मायां कुडलिनी समाहितमनास्तामुच्चरेत्कौशिकीं
शक्तिं ब्रहममहापथेन सहितामाधारतः स्वात्मना।।

---

[1] त्रिपुरासारसमुचच्य - ४.१०.११

अर्थात आईम संज्ञा वाली, जगत् की रचना में सततोद्यत, चमकती हुई विद्युत के समान, शंकर के मुख के समान आवर्त (चक्करदार) सदृश, सोये हुए सर्प के समान, सारे जगत् को मुग्ध करने वाली तथा विस–तन्तु के समान कुण्डलिनी शक्ति मानी गयी है। गुरू द्वारा बतायी गयी रीति से 'हूँ' बीज के अभ्यास के द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी को उठाकरपरम चित्कला से उसका योग करके आधार–पक्ष से लेकर सह स्रार–पर्यन्त षट्चक्रों का समाहित मन द्वारा अनुभव करना चाहिए।

इसी मार्ग में शब्द या नाद का भी अनुभव योगी साधकों को होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है–

आदौ मत्तालिमाला गल पथविगलत्तार झंकारहारी
नादोऽसौ कंशिकांस्यानिल भरितलस द्वंशानिःस्वानतुल्यः।
धण्टानादानुकारी तदनु जलनिधी ध्वानधीरो गभीरो
गर्जत्पर्यन्यषोधः पर इह कुहरे वर्तते ब्रहम नाड्याः[1]।

पहले मन्त्र भृंग की गुंजार होती है, बाद में वेणु की मधुर ध्वनि सुनाई देती है। तत्पश्चात् घण्टानाद समुद्र की ध्वनि–सुदृश सुनाई देता है। यह सब घोष ब्रह्मनाड़ी में सुनाई देता है। नौ नाद और वर्णों की उत्पत्ति भी तन्त्रों में कुण्डलिनी के जागने पर ही मानी जाती है। कुण्डलिनी का यह रहस्य षट्चक्रों सहित वेद में भी माना जाता है–

गौरीर्मिमाय सहिलानि तक्षती एकपदी द्विपदी
सा चतुष्पदी नवपदी बभूवुषी सहस्त्राक्षरा परमे व्योमन्[2]।

---

[1] ऋग्वेद-संहिता - १.१६४.४७
[2] त्रिपुरासार समुच्चय -४.१०.११

अर्थात् गौरी वाक् कुण्डलिनी महाशक्ति जलों को तोड़ती हुई (जल से पन्चतत्वों का उपलक्षण है, जो षट्चक्रों में चिन्तित होते है। तोड़ने से वज्रपात ग्रहीत होता है। इस प्रकार तक्ष–तन् करणे का अर्थ संगत होता है।) एकपदी ऊँ द्विपदी सोऽहं सा ऊँ चतुष्पदी ऊँ भूर्भुवःस्वः अष्टपदी– अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, शवर्ग तथा नवपदी नवमाद वाली है। सहस्रार में सहस्राक्षर वाली हो जाती हे। अस्तु, प्रथम मन्त्र में आये 'विद्युते स्तनयित्नवे अश्मने' शब्दों द्वारा तन्त्रोक्त सिद्धान्त का भी एकीकरण हो जाता है।

'सर्व ,खल्विंद बह्म' के अनुसार प्रथम मन्त्र में कहा गया शक्ति का स्थूल रूप इस पराशक्ति का ही रूपान्तर है, जो गुण–वैचित्रय से नाना प्रकार का प्रतीक हो रहा हैं। – एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' का यही अभिप्राय है।

द्वैत अवस्था में रहते हुए योगक्षेम की प्राप्ति करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः सूक्त के दूसरे मन्त्र द्वारा ऋषि कहते हैं–

नमस्ते प्रवतो न पाद्यस्तपः सुमहसि।
मृडया नस्तनुभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि[1]।।

हे देवि! प्रकृष्ट ज्ञान वालों को तुम पतन की ओर नहीं ले जाती हो, इसलिये आपको नमस्कार है, क्योंकि आप तप, ज्ञान प्रभृति श्रेष्ठ वस्तुओं का समूह है। अपने कल्याणत्मक रूपों से हमारी रक्षा करें। हम आपकी सन्तान हैं। हमारे लिये मय (कल्याण) का दर्शन कराओ।

---

[1] अथर्ववेद-१.१३.२

भुक्ति–मुक्ति दोनों प्रकार की प्राप्ति शक्ति–साधन से होती है। इसी अभिप्राय से दुर्गासप्तशती ग्रन्थ में सुरथ एवं समाधि इन दोनों अधिकारियों को मेधा महर्षि ने उपदेश दिया है। 'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव' का सिद्वान्त इसी तत्व पर माना गया है। दुर्गासप्तशती में भी कहा गया है–

> विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे–
>
> ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
>
> ममत्वगतेऽतिमहान्धकरे
>
> विभ्रामयत्येदतीव विश्वम्[1]।

सर्वस्वकार की टीका के अनुसार– हे देवि! ज्ञान उपाय के साधन अन्वीक्षिकी आदि विद्याओं में जिससे लोक के योगक्षेत्र का विधान होता है, मनु आदि शास्त्रों द्वारा प्रवृत्ति–निवृत्ति तथा विवेक के दीप स्वरूप वेदान्त आदि शास्त्रों का जो अनादर करते हैं उन्हे अहं मम अभियान रूप संसार में, जो अन्धकार रूप है, तू उन्हें घुमाती है।

'अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते' में भी उक्त तत्व को कहा गया है– अविद्या की उपासना करने वाले अन्धकार में चले जाते हैं, यही पतन है। 'विद्यायाऽमृतमश्नुते' विद्या से ही अमृत की प्राप्ति होती है। अस्तु, तू विद्वानों को पतन की ओर नहीं ले जाती है। अतः हमें भी वही मार्ग बताओ। क्योंकि–

'लक्ष्मि लज्जे महाज्ञान, श्रद्धा, पुष्टि रूप, सुधा, नित्य, महारात्रि रूप अन्धकार, अज्ञान–स्वरूपावरण करने वाला भी नारायणि! तेरा स्वरूप है। अतः तुझे नमस्कार है। वेद में इसे ही कल्याण रूप वाली शिवातनू कहा गया है–

---

[1] दुर्गासप्तशती -११.३१

या ते रूद्र शिवातनू रघोरा पापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशंताभि चाकशीही[१]।।

हे रूद्र! आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्य आदि को प्रदान करने वाली जो शिवा (महाशक्ति) तनु है, उसके द्वारा आप हमारा निरीक्षण करें। हम सब आपके पुत्र हैं, हमारा कल्याण करें। 'अमृतस्य पुत्राः' इस श्रुति–वाक्य से सारा विश्व उसकी ही सन्तति है– यह सिद्ध होता है। 'यद् वै शिवं तन्मय' (तैत्तिरीयोपनिषद्–2.2.5.5) यहाँ कल्याण वाचक मय–शब्द का व्यवहार किया गया है। वैदिक कर्मकाण्ड तथा तान्त्रिक कर्मकाण्ड इसीलिये महर्षियों ने बनाये हैं, इनका आचरण करके सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं। महर्षि कणाद ने भी धर्म की व्याख्या करते समय कहा है कि– 'यतोऽभयुदयनिः श्रयससिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिससे अभ्युदय, ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति होती हे, वही धर्म है। यह लक्षण शाक्त धर्म में पूर्णतया घटित होता है।

अब तीसरे मन्त्र से श्री पराशक्ति के अस्त्र–शस्त्रों को नमस्कार करते हुए उसके उत्कृष्ट, सर्वव्यापक तथा योगियों के हृदय में वास करने वाले स्वरूप को ऋषि बताते हैं–

प्रवतो नयान्नम एवास्तु तुभ्यं
नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः।
विद्यतो धाम परमं गुहा यत्
समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः।।[२]

---

[१] यजुर्वेद-१६.२६
[२] अथर्ववेद-१.१३.३

उच्च पदवी पर आरूढ़ योगियों को तू गिराती नहीं है, प्रत्युत उन्हें अपनी सायुज्य पदवी प्रदान करती है। हम तुझे नमस्कार करते हैं। तेरे अस्त्र–शस्त्र को भी हमारा नमस्कार है, जिन्हें तूने असुरों के सहारार्थ (विनाश हेतु) ग्रहण किया है। मेरा परमधाम गुप्त हृदय–प्रदेश हैं, इसमें आधार रूप से तू छिपी है। उसे हम जानते हैं।

अहं–मम रूप अविद्या–जन्य संसार में ही लगे रहने वाले जीव बार–बार जन्म–मरण रूप संसार में आते रहते हैं, क्योंकि उनके सुख का आधार क्षणिक, विनाशी, आयात रमणीय यह संसार ही है। उन्हें शाश्वत शान्ति नहीं मिलती। अतः मुमक्ष, इससे विरक्त होकर विद्या का अनुसरण करता है। उसी को गीता मे कहा गया है–

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'।[१]

इसी को कठोपनिषद् में इस प्रकार से कहा गया है–

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते'।

(दुर्गा सप्तशती– 11.31)

अर्थात् ब्रहम को प्राप्त होने पर फिर संसार में मुमक्षु नहीं आता। इसी तत्व को 'प्रवतो न यात्' पद से कहा गया है। यह शक्ति का परम धाम है। दुर्गा सप्तशती में कहा गया है–

'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त समस्त दोषै–

र्विद्याऽसि सा भगवती परमा हि देवी'।।[२]

---

[१] श्रीमदभगवद्गीता- १५.६

[२] दुर्गासप्तशती- ११.२२

अर्थात समस्त अविधा दोषों से रहित मोक्षार्थी मुनिगण विद्यारूप से तुम्हारा ही अभ्यास करते हैं। वह विद्या तुम हो। जब–जब भक्त समुदाय असुरों से पीड़ित होता है, तब–तब असुरों के विनाशार्थ श्री आदिशक्ति का अविर्भाव होता है, जिसे किसी न किसी प्रकार से समस्त आस्तिक समुदाय स्वीकार करता है।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।
(दुर्गा सप्तशती– 11.31)

इस मन्त्र से यही बात कही गयी है उस समय उनके तेजः स्वरूप अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित होकर श्री अम्बा जी प्रकट होती हैं। इसे ही सूक्त में 'हेतये च तपुषे' पद से कहा गया है। सप्तशती में भी श्री भगवती के अस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है–

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान रक्ष सर्वतः।।[1]

अर्तात् हे अम्बिके! खड्ग, शूल, गदा आदि जितने तुम्हारे अस्त्र–शस्त्र हैं, उनसे तू सब ओर से हमारी ओर रक्षा कर। हे देवि्! समुद्र–परमात्मा में अभेद सम्बन्ध सामरस्य भावापन्न होकर तू छिपी हुई है, उसे हम उपनिषद् 'मम योनिरप्सु अन्तः समुद्रे' (देवीसूक्त–7) इस मन्त्रांश में भी समुद्र पद आधारार्थों में व्यवहृत हुआ हैं। सायणाचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा ही किया है–

'समुदवन्त्यस्मसद् भूतानि इति समुद्रः परमात्मा'।

---

[1] दुर्गासप्तशती– ४.२६

अर्थात् समस्त प्राणी समूह जिससे प्रकट होते है, उस परमात्मा को समुद्र कहते है। बहुत लोग इस मन्त्रांश से ब्रह्म को कारण तथा शक्ति तत्व को कार्य समझते हैं, परनतु यह उनका भ्रम है।

गीता में ब्रह्म का योनि कारण शक्ति को भी माना गया है–

'मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्'।

वास्तव में निर्मित की अपेक्षा से ब्रह्म, शक्ति दोनों के परम कारणत्व का व्यवहार होता है।

यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते।
सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।

(तैत्तिरीयापनिषद्)

इस उपनिषद् वचन में भी मन्त्रार्थ को विशद किया गया है। उक्त तीनो मन्त्रों द्वारा शक्ति तत्व का भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य बताया गया है। वैदिक तान्त्रिक एवं पौराणिक मतों में जो शक्ति का स्वरूप माना जाता हैं, उसका अभेद दिखलाया गया है। जो लोग पौराणिक एवं तान्त्रिक सिद्धान्त को वेदबाह्य अनार्यो की वस्तु बतलाते हैं। एवं उसमें वर्णित काली आदि शक्ति रूपों की पूजा को अनार्य पूजा कहते है, उन्हें वैदिक सिद्धान्त को विचारपूर्वक देखना चाहिये, क्योंकि वैदिक साहित्य में अनेक बार देवी या शक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है।

'प्राणों व अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः'।

(ऐतरेयोपनिषद्– 2.4)

अर्थात् यहाँ पर प्राण, अपान और व्यान इन तीनों को देवी बताया गया है। वास्तव में प्राण ही शक्ति है। इसी को लोक में दम कहते हैं। इसलिये कहावत भी है–

'दम से आदम है अन्यथा मुर्दा है'।

इसी प्राण, अपान और व्यान को पौराणिक सिद्धान्त में महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती कहते हैं। महा विद्याक्रम में यही काली, तारा, षोडशी कहलाती है।

'अथैषकः प्रजातिस्त देव्यश्च कश्च तस्माद्
देविकाः पंच्च भवन्ति प×च हि दिशः'[१]।

अर्थात् प्रजापति (परमात्मा) और उसकी देवियाँ पाँच हैं, क्योंकि दिशाएँ पाँच ही हैं। पच्चाम्नाय में ही देवी–देवताओं का समस्त विभाग है। दीक्षा काल में दिशा क्रम से ही घटस्थापन करके पाँचों आम्नायों का उपदेश होता है। षष्ठम्नाय, अधराम्नाय या अनुत्तराम्नाय कहलाता है। इसका उपदेश अमुख्य होने से पाँच में ही गतार्थ होने से पाँच ही कहा गया है।

'ता व एता देव्यः दिशो ह्येता (दिव्यः दशदिशाः)[२]

अर्थात् ये दशों दिशाएँ ही दश देवियाँ हैं। महाभागवत में ऐसी कथा आयी है। कि जब सती अपने पिता दक्ष के घर जाने लगी, तब उन्हें भगवान शिव ने रोका। तब अपने भयानक रूप से प्रकट होकर उन्होंने अपना महत्व दिखाया। श्री महादेव उसे न देख सकने के कारण भागे। तब भगवती ने अपने

---

[१] शतपथ- ब्राह्मण- ५.७.३७७
[२] शतपथ- ब्राह्मण- ५.६.३६

दश महाविद्यारूप दशों दिशाओं में धारण कर श्री शंकर को रोका था। इस कथा का मूल उक्त श्रुति ही है दशों दिशाओं की लय भावना की कथा भी वही पर कही है। सभी रूपों का लय श्री काली रूप में किया गया है। यही रूप सब शक्ति–रूपों में मुख्य है रूद्ररूप शिव की ही ये शक्तियाँ है। रूद्र अग्नि को कहते हैं, जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है–

> 'अग्निवै स देवः, तस्यैतानि नामामि शर्व इति यथा
> प्राच्या आचक्षते भव इति कथा वाहीकाः पशूनां
> पती रूद्रोऽग्निरिति''[1]

अर्थात उस देवी को शर्व, पूर्व देश वाले उसर को भव, वाहीक–देशोद्भव पशुपति, रूद्र, अग्नि आदि नामों से कहते हैं। रौद्र रूपों में काली रूप प्रधान होने से मुण्डकोपनिषद् में प्रथमतया निर्दिष्ट है–

> 'काली कराली च मनोजवा च
> सुलोहिता या च सूधूम्रवर्णा।
> विस्फुलिग्ङिनी विश्वरूपी च देवी
> लेलायमाना इति सप्तजिह्वा'[2]

'पच्चशून्यस्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता' इस तन्त्र– वाक्य से भी काली की प्रधानता सिद्ध होती है।

> चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता।
> विद्याराज्ञी सिद्धविद्या कलौ शीघ्रफलप्रदा।। (शक्तिसंग्ड.मन्त्र)

---

[1] मुण्डकोपनिषद्- २.३१
[2] मुण्डकोपनिषद्- २.४

कलौ काली विशिष्यते' आदि वचनों से काली रूप की प्रधानता ज्ञात होती है। रौद्र रूप की प्रचण्डता को लक्ष्य करके शिल्प–विज्ञान के अनुसार शक्तियों की मूर्ति की कल्पना की गयी है।

वैदिक–साहित्य में शक्ति–तत्व की प्रचण्डता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। उक्त सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में यही तत्व तथा संगठन–शक्ति का रहस्य बताया गया है–

'यां त्वां असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय वृष्णुम्।
सा नो मृड्विदधे गृणानां तस्यै ते नमो अस्तु देवि–।।
(अथर्ववेद– 1.13.4)

यही दुर्गासप्तशतीके मध्यम चरित्र की कथा का मूल है। इसी रहस्य को लेकर मार्कण्डेयपुराण में विस्तारपूर्वक कहा गया है। सप्तशती के दूसरे अध्याय में यह कथा आयी है कि महिषासुर दैत्य ने एक समय अपने आतंक से देवताओं को पीड़ित कर रखा था। देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के साथ मिलकर एक महान् तेज प्रकट किया। वह तेज दिव्य स्त्री रूप में प्रकट हुआ। सभी देवताओं के शक्ति–समूह से ही वह मूर्ति बनी थी। इसे ही सूक्त में 'यां त्वां देवा असृजन्त विदधे गृणाना'– इन रहस्यमय पदों से कहा गया है। उस सामूहिक शक्ति ने महिषासुर को युद्ध में मारा, जिसे अकेले ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी नही मार सके विजय प्राप्त होने पर अभियान का होना स्वाभाविक है, जिसे बताने के लिये केनोपनिषद् में भी यक्ष की आख्यायिका बतायी गयी है।

असुरों पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर देवताओं के अभिमान को निवृत्त करने के लिये साक्षात् कृपामयी हेमवती उमा का अभिर्भाव उपनिषत्कार ने अत्यन्त ही सुन्दर रूप से लिखा हैं जिसका दूसरा उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलना कठिन है। ब्रह्मविद्या ही अभिमान, अहंकार आदि रहित शाश्वत शान्ति करे देने वाली है। उसके बाद लौकिक विजय फिर तो पतन का हेतु ही हो सकती है। इसीलिये उपनिषद् का उपसंहार 'ज्येये स्वर्गे प्रतितिष्ठित' रूप में किया गया हे। दुर्गासप्तशती के चतुर्थ अध्याय में उसी महत्वपूर्ण महती देवता की स्तुति भी देवताओं ने की है। 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम' (ऋग्वेद) वाले वैदिक एकता के रहस्य को प्रकट करने के लिये ही यह मध्यम चरित्र की कथा लिखी गयी है। सप्तशती शक्ति–तत्व के समस्त रहस्यों को प्रकट करने वाला ग्रन्थरत्न हैं 'संग्डे शक्तिः, वाली युक्ति सर्व शक्तिवाद की उक्ति है। इसी का निदर्शन मध्यम चरित्रों का पाठ अकेले नहीं किया जाता, किन्तु मध्यम चरित्र का पाठ अकेले भी कर सकते है–

'एकेन व मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह'[1]

अर्थात् एकमात्र मध्यम चरित्र के पाठ से ही पूर्णता हो जाती है। एकता के विषय में यजुर्वेद का कथन है–

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'।

(यजुर्वेद– 40.4)

एकता देखने वाले ज्ञानी समाज को शोक कहाँ? और मोह कहाँ? युद्ध के समय ही एकता का परम उपयोग होता है। इसीलिए 'विद्धे गृणाना' कहा गया है, क्योंकि युद्ध ही महान् आपत्ति है। स्वार्थपरायण के ही समय युद्ध होता है।

---

[1] दुर्गासप्तशती, वैकृतिक-रहस्य- ३२

व्यक्तिगत अपस्वार्थ से ही किसी देश, संस्कृति, जाति का पतन होता है। ऐसे समय महालक्ष्मी ही सुमति प्रदान कर अपने राष्ट्रभक्तों की रक्षा करती है, अतः स्तुति–पूजा होती रहनी चाहिये। भारतीय युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को श्री कृष्ण ने गीतोपदेश के पहले श्री दुर्गा भगवती की स्तुति करने को कहा था, जिसे भीष्मपर्व में बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा गया है।

नम एकस्तु तुभ्यम्

तुम एक को ही हमारा नमस्कार है। सूक्त में सात बार नमः शब्द का प्रयोग होने से संसार की संचालिका सप्तमातृका रूप को तथा निवृत्ति की सप्त भूमिका को नमस्कार किया गया है। 'तस्यैते नमो अस्तु देवि' इस स्त्रीलिंगवाचक तस्यै देवि, पदों से यह सूक्त शक्तिवाद का ही पोषक है, यह निःसन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है।

आजकल केवल ऐतिहासिक भावना से प्रेरित होकर ही शक्ति की उपासना एवं साधक परिश्रम करते रहते हैं, जिससे यह परम रहस्य लुप्त होता जा रहा है। अस्तु, भगवती से यही प्रार्थना है कि अपनी सभी अन्दर अपने सभी रहस्यों को प्रकट कर कल्याण करें।

शक्ति के रूप में ब्रह्म की उपासना

शास्त्रों में 'शक्ति' शब्द के प्रसंगानुसार विविध अर्थ को विज्ञानानन्दघन ब्रह्म भी माना जाता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, शास्त्र आदि में भी 'शक्ति' शब्द का प्रयोग देवी, परा–शक्ति, ईश्वरी, मूल प्रकृति प्रभूति नामों से विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रहमा के लिये भी किया गया है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्म

का तत्व अतिसूक्ष्म एवं गुह्म होने के कारण शास्त्रों में उसे नाना प्रकार से समझाने की चेष्टा की गयी है। इसलिये 'शक्ति' नाम से ब्रह्म की उपासना करने पर भी परमात्मा की ही प्राप्ति होती हैं। एक ही परमात्म–तत्व की निर्गुण–संगुण, निराकार–साकार, देवी–देवी, ब्रह्मा–विष्णु शिव–शक्ति, राम–कृष्ण आदि अनेक नाम–रूप से भक्त लोग उपासना करते है। रहस्य को जानकर शास्त्र एवं आचार्यो के द्वारा उपदिष्ट मार्ग के अनुसार उपासना करने वाले समस्त भक्ततजनों को उसकी प्राप्ति हो सकती है। उस दया सागर प्रेममय सगुण एवं निर्णण रूप परमेश्वर को सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण, गुणाधार, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा समझकर श्रद्धापूर्वक निष्काम प्रेमभाव से उपासना करना ही उसके रहस्य को जानकर उपासना करना है। इसलिये श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उस विज्ञानानन्दस्वरूपा महाशक्ति भगवती देवी की उपासना करनी चाहिये। वह निर्गुण स्वरूपा देवी जीवों पर दया करके स्वयं ही सगुण भाव को प्राप्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से उत्पत्ति, पालन और संहार कार्य करती है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जी कहते है–

'त्वमेव सर्वजननी मूल प्रकृतिरीश्वरी
त्वमेवाद्या सृष्टिविद्यौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका
कार्यार्थे सगुणा त्वच्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रह विग्रहा।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमंगलमंगला'।।[1]

---

[1] ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड- २.६६.७.१०

अर्थात् तुम्ही विश्वजननी मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्ही सृष्टि की उत्पत्ति के समय आद्या शक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो, तथापि प्रयोजनवश सगुण बन जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य नित्य एवं सनातनी हो। परमतेजःस्वरूप एवं भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु शरीर धारण करती है। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्व–पूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्व प्रकार से मंगल करने वाला एवं सर्व मंगलो की भी मंगल हो।

उस ब्रह्मरूप वेतन शक्ति निर्गुण एवं दूसरा सगुण। सगुण के भी दो भेद हैं– एक साकार एवं दूसरा निराकार। इसी से समग्र संसार की उत्पत्ति होती है। उपनिषदों में इसी के परा–शक्ति के नाम से कहा गया है। यथा –

'तस्या एवं ब्रह्म अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्।
रूद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरूद्गणा अजीजनन्।
गन्धर्वाप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनी समन्ता
दजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्।
सर्व शक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वदेजमुद्भिंज
जरायुजं यत्किंचैतत्प्राणि स्थावरजंग्ङमं मनुष्य
मजीजनत् सैवा परा–शक्तिः

(बह्वृचोपनिषद्)

उस परा–शक्ति से ब्रह्म, विष्णु और रूद्र उत्पन्न हुए। उसी से सब मरूद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ और बाजा बजाने वाले किनारे सब ओर से उत्पन्न हुए। समस्त भोग्य–पदार्थ और अण्डज, स्वदेज, उद्भिंज्ज, जरायुज, जो कुछ भी

स्थावर, जंगम मनुष्यादि प्राणी मात्र? उसी परा–शक्तिः से उत्पन्न हुए, ऐसी वह परा–शक्तिः है। ऋग्वेद में भगवती कहती है–

अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहादित्यैरूत विश्वेदेवैः।
अहं मित्रावरूणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा
(ऋ.स. 8.7.11)

अर्थात् मैं रूद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। वैसे ही मित्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि एवं अश्विनीकुमारों के रूप को धारण करती हूँ।

ब्रह्मसूत्र में भी कहा गया है–
'सर्वोपेता तद्दर्शनात'। (द्वि.अ., प्रथम पाद)

अर्थात् वह परा–शक्तिः सर्वसामर्थ्य से मुक्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है।

यहाँ भी ब्रह्म का वाचक स्त्रीलिंग शब्द आया है। ब्रह्मकी व्याख्या शास्त्रों में स्त्रीलिंग, पुर्ल्लिंग एवं नपुंसकलिंग आदि सभी लिंगों में की गयी है। इसलिये महाशक्ति के नाम से भी ब्रह्म की उपासना की जा सकती है। बंगाल में श्री राम कृष्ण परमहंस ने माँ भगवती शक्ति के रूप में ब्रह्म की उपासना की थी। वे परमेश्वर को माँ, तारा, काली आदि नामों से पुकारा करते थे। और भी बहुत से महात्मा पुरूषों ने स्त्रीवाचकनामों से विज्ञानानन्दघन परमात्मा की उपासना की है। ब्रहम की महाशक्ति के रूप में श्रद्धा, प्रेम और निष्काम भाव से उपासना करने से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

शक्ति और शक्तिमान की उपासना

बहुत से लोग इसको भगवान् की ह्लादिनी शक्ति मानते है। महेश्वरी, जगदीश्वरी, परमेश्वरी भी इसी को कहते हैं लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, सीता आदि सभी इस शक्ति के ही रूप है। माया, महामाया, मूल प्रकृति, विद्या, अविद्या आदि भी इसी के रूप हैं। शक्तिमान से शक्ति अलग होने पर भी अलग नहीं समझी जाती है। जैसे अग्नि की दाहिका शक्ति अग्नि से भिन्न नहीं है। यह सारा संसार शक्ति और शक्तिमान् से परिपूर्ण है और उसी से इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते है। इस प्रकार समझदार वे लोग शक्तिमान् और शक्ति युगल की उपासना करते है। प्रेमस्वरूपा भगवती ही भगवान् को सुगमता से मिला सकती है। इस प्रकार समझदार कोई–कोई लोग केवल भगवती की ही आराधना/उपासना करते हैं। इतिहास–पुराण आदि में सब प्रकार के उपासकों के लिये प्रमाण भी मिलते है।

इस महाशक्ति रूपा जगज्जननी की उपासना लोग नाना प्रकार से करते है। कुछ लोग तो इसी महेश्वरी को ईश्वर से भिन्न समझते है। और कुछ लोग अभिन्न मानते हैं। वास्तव में तत्व को समझ लेना चाहिये। फिर चाहे जैसे उपासना करे, कोई हानि नहीं है। तत्व को समझकर श्रद्धा–भक्तिपूर्वक उपासना करने से सभी उस एक प्रेमास्पद परमात्मा को प्राप्त कर सकते है।

सर्वशक्तिमान् ब्रह्म (परमेश्वर) की उपासना

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादि शास्त्रों में इस गुणमयी विद्या–अविद्यारूपा मायाशक्ति को प्रकृति, मूल प्रकृति, महामाया, योगमाया आदि अनेक नामों से कहा गया है। उस मायाशक्ति की व्यक्त और अव्यक्त अर्थात् साम्यावस्था तथा विकृतावस्था नामक दो अवस्थाएँ है। उसे कार्य, कारण एवं व्याकृत, अव्याकृत

भी कहते है तेइस तत्वों के विस्तार ज्ञातज्ञ यह सारा संसार तो उसका व्यक्त स्वरूप हे। जिसे सारा संसार उत्पन्न होता है औंर जिससे यह ज्ञात हो जाता है, वह उसका अव्यक्त स्वरूप हैं। यथा–

अव्यक्ताइयक्तय: सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्रयागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञ के।। (गीता– 8.14)

अर्थात् सम्पूर्ण दृश्यमान भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त से अर्थात ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते है और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेश–काल में उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में ही लय होते है।

संसार की उत्पत्ति का कारण कोई परमात्मा को और कोई प्रकृति को तथा कोई प्रकृति एवं परमात्मा दोनों को बतलाते हैं। विचार करके देखने से सभी का कहना ठीक ही है। जहाँ संसार की रचयिता प्रकृति है, वहाँ समझना चाहियें कि पुरूष के सकाश से ही गुणमयी प्रकृति संसार को रचती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।
(गीता–7.10)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठान के सकाश से यह मेरी माया चराचर सहित सर्व जगत् को रचती है और इस ऊपर कहे हुऐ हेतु से ही यह संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है।

जहाँ संसार का रचयिता परमेश्वर हैं, वहाँ सृष्टि के रचने में प्रकृति द्वार है।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।
(गीता–7.8)

अर्थात् अपनी त्रिगुणमयी माया को अंगीकार करके स्व–भाव के वश से परतन्त्र हुये इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बारम्बार उनके कर्मो के अनुसार रचता हूँ।

वास्तव में प्रकृति और पुरूष दोनों के संयोग से ही चराचर संसार की उत्पत्ति होती है।

मम योनिर्भहद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

(गीता–14.3)

अर्थात् हे अर्जुन! मेरी महद्ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतों की योनि है, अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापित करता हूँ। उस जड़–चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

क्योंकि विज्ञानानन्दघन, गुणातीत परमात्मा निर्विकार होने के कारण उसमें क्रिया का अभाव है। इसलिये परमात्मा के सकाश से जब प्रकृति में स्पन्द होता है, तभी संसार की उत्पत्ति होती हे। अतएव प्रकृति और परमात्मा के संयोग से ही संसार की उत्पत्ति होती है। अन्यथा नहीं। महाप्रलय में कार्य सहित तीनों गुण कारण में लय हो जाते हैं, तब उस प्रकृति की अव्यक्तस्वरूप साम्यावस्था हो जाती है। उस समय सारे जीव स्वभाव, कर्म और वासनासहित उस मूल प्रकृति में अव्यक्त रूप से स्थित रहते है। प्रलयकाल की अवधि समाप्त होने पर उस मायाशक्ति में ईश्वर के सकाश से स्फूर्ति होती है, तब विकृत अवस्था को प्राप्त हुई प्रकृति तेइस तत्वों के रूप में परिणय हो जाती है, तब उसे व्यक्त करते हैं। फिर ईश्वर के सकाश से ही वह गुण, कर्म और वासना के अनुसार फल भोगने के लिये चराचर जगत् को रचती है।

त्रिगुणमयी प्रकृति और परमात्मा का परस्पर आधेय और आधार एवं व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध है। प्रकृति आधेय और परमात्मा आधार है। प्रकृति व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। नित्य वेतन, विज्ञानानन्दघन परमात्मा के किसी एक अंश में चराचर जगत् के सहित प्रकृति है। जैसे तेज, जल पृथिवी के आधार है जैसे बादल आकाश से व्याप्त है, वैसे ही परमात्मा से प्रकृति सहित यह सारा संसार व्याप्त है।

यथाकाशस्थितों नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। (गीता–14.3)

अर्थात् जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरण करने वाला महान वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति होने वाले से सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसा जानो।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।। (गीता–10.42)

अर्थात् अथवा हे अर्जुन, इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किच्च जगत्यां जगत्।
(ईशावास्योपनिषद्– 1)

अर्थात् त्रिगुणमयी माया में स्थित यह सारा चराचर जगत् ईश्वर से व्याप्त है।

किन्तु उस त्रिगुणमयी माया से यह लिप्त नहीं होता, क्योकि विज्ञानानन्दघन परमात्मा गुणातीत, केवल और सबका साक्षी है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतन्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निगुणश्च।।

(श्रवेताश्वतरोपनिषद्– ६.११)

अर्थात् जो देव सब भूतों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक, सर्व भूतों का अन्तरात्मा (अन्तर्यामी आत्मा), कर्मो का अधिष्ठाता, सब भूतों का आश्रय, सब का साक्षी, चेतन केवल और निर्गुण अर्थात् तत्व, रज, तम–इन तीनों गुणों से परे है, वह एक है।

इस प्रकार गुणों से रहित परमात्मा को अच्छी प्रकार से जानकर मनुष्य इस संसार के सारे दुःखों और क्लेशों से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। इसके जानने के लिये सबसे सहज उपाय उस परमेश्वर की अनन्य शरण है। इसलिये उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द परमात्मा की सर्व प्रकार से शरण में जाना चाहिये।

दैवी हयेषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेंतां तरन्ति ते।(गीता–६.१४)

अर्थात् क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अत्यदभुत त्रिगुण–मयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरूष मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया का उल्लघंन कर जाते हैं, अर्थात् ससांर से तर जाते है।

विद्या–अविद्यारूप त्रिगुणमयी यह महामाया बड़ी विचित्र है। इसे कोई अनादि, अनन्त और कोई अनादि, सान्त मानते हैं तथा कोई इसको सत् और

कोई असत् कहते है। एवं कोई इसको ब्रह्म से अभिन्न और कोई इसे ब्रह्म से भिन्न बतलाते हैं। वस्तुतः यह माया बड़ी विलक्षण है, इसलिये इसको अनिर्वचनीय कहा गया है।

दुराचार, दुर्गुणरूप आसुरी, राक्षसी, मोहिनी प्रकृति, महत्व का कार्यरूप यह सारा दृश्यवर्ग अविद्या का ही विस्तार है।

भक्ति, परा–भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग, योगमाया, समष्टि बुद्धि, शुद्ध बुद्धि, सूक्ष्म बुद्धि, सदाचार, सद्गुण रूप दैवी सम्पदा – यह सब विद्या का विस्तार है।

जैसे ईंधन को भस्म करके अग्नि स्वतः शान्त हो जाती है, वैसे ही अविद्या का नाश करके विद्या स्वतः भी शान्त हो जाती है, ऐसे मानकर यदि माया को अनादि, शान्त बतलाया जाये, तो यह दोष आता है कि यह माया आज से पहले ही शान्त हो जानी चाहिये थी। यदि कहें कि भविष्य में शान्त होने वाली है, तो फिर इससे छूटने के लिये प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है? इसके शान्त होने पर सारे जीवन अपने आप ही मुक्त हो जायेंगे। फिर भगवान किसलिये कहते है कि यह त्रिगुणमयी मेरी माया तरने में बड़ी दुस्तर है; किन्तु जो मेरी शरण में आ जाते हैं, वे इस माया को तर जाते है।

यदि इस माया को अनादि, अनन्त बतलाया जाये, तो इसका सम्बन्ध भी अनादि, अनन्त होना चाहिये। सम्बन्ध अनादि, अनन्त मान लेने से जीव का कभी छुटकारा हो ही नही सकता है। भगवान् कहते है कि क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के अन्तर को तत्व से समझ लेने पर जीव मुक्त हो जाता है–

क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।

(गीता– १३.१४)

अर्थात् इस प्रकार क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा विकार सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरूष ज्ञान–नेत्रों द्वारा तत्व से जानते है, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते है। क्षेत्र को जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान् तथा क्षेत्रज्ञ को नित्य चेतन, अविनाशी जानना ही उनके भेद को जानना है।

इसलिये इस माया को अनादि, अनन्त भी नहीं माना जा सकता है। इसे न तो सत् ही कहा जा सकता है और न ही असत् ही। असत् तो इसलिये नही कहा जा सकता है कि इसका विकार रूप यह सारा संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं बतलाया जा सकता है कि यह दृश्य जड़वर्ग सर्वथा परिवर्तनशील होने के कारण इसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती है।

इस माया को परमेश्वर से अभिन्न भी नहीं कह सकते, क्योंकि माया अर्थात् प्रकृति जड़, दृश्य, दुःखरूप विकारी है और परमात्मा चेतन, द्रष्टा, नित्य, आनन्दरूप और निर्विकार है। दोनों अनादि होने पर भी परस्पर इनका बड़ा भारी अन्तर है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तुमहेश्वर

(श्वेत. ५.१)

त्रिगुणमयी माया को तो प्रकृति (तेइस तत्व जड़ वर्ग का कारण) तथा मायापति को महेश्वर जानना चाहिए।

द्वे अक्षरे बह्मपरे त्वनन्ते
विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।।

(श्वेत. ५.१)

जिस सर्वव्यापी, अनन्त, अविनाशी, परब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा में अविधा विद्या दोनों स्थित हैं। अविद्याक्षर है, विद्या अमृत है; क्योंकि विद्या से अविद्या का नाश होता है तथा विद्या, अविद्या पर शासन करने वाला वह परमात्मा दोनों से ही अलग है।

यस्मात्क्षरमतीऽहमक्षरादपि चेस्तमः
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः।।
(गीता– १५.१८)

अर्थात् क्योंकि मैं नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूँ और माया में स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में भी पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।

इसलिये इस माया को परमेश्वर से अभिन्न नहीं कह सकते। वेद और शास्त्रों में इसे ब्रह्म का रूप बतलाया गया है–

'सर्व खल्विदं ब्रह्म'।

'वासुदेवः सर्वमिति'।
वासुदेवः सर्वमिति'। (गीता– ७.१६)
सदसच्चाहमर्जुन'। (गीता– ७.१६)

तथा माया ईश्वर की शक्ति है और शक्तिमान् से शक्ति अभिन्न होती है। जैसे अग्नि की दाहिका शक्ति अग्नि से अभिन्न है, इसलिये परमात्मा से इसे भिन्न की नही कह सकते।

चाहे जैसे हो, तत्व को समझकर उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। तत्व को समझकर की गयी उपासना ही सर्वोत्तम होती है। जो उस

परमेश्वर को तत्वतः समझा जाता है, वह उसको एक क्षण भी नही भूल सकता; क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, इस प्रकार समझने वाला परमात्मा को कैसे भूल सकता है अथवा जो परमात्मा के सारे संसार से उत्तम समझता है, वह भी परमात्मा को छोड़कर दूसरी वस्तु को कैसे भज सकता है? यदि भजता है तो परमात्मा के तत्व को नही जानता। क्योंकि यह नियम है कि मनुष्य जिसको उत्तम समझता है, उसी को भजता है, अर्थात ग्रहण करता हे।

मान लीजिये एक पहाड़ है। उसमें लोहे, ताँबे, शीशे और सोने की चार खानें है। किसी ठेकेदार ने परिमित समय के लिये उन खानों को ठेके पर ले लिया और वह उनसे माल निकालना चाहता है तथा चारो धातुओं में से किसी को भी निकालो, समय करीब–करीब बराबर ही लगता है। उन चारो में सोना सर्वोत्तम है। इन चारों की कीमत को जानने वाला ठेकेदार सोने के रहते हुए सोने को छोड़कर क्या लोहा, ताँबा, शीशा निकालने के लिये अपना समय लगा सकता है? कभी नहीं है। सर्व प्रकार से वह तो केवल सुर्वण ही निकालेगा। वैसे ही माया और परमेश्वर के तत्व को जानने वाला परमेश्वर को छोड़कर नाशवान् क्षणभङ्गुर भोग और अर्थ के लिये अपने अमूल्य समय को कभी नहीं लगा सकता। वह सब प्रकार से निरन्तर परमात्मा को ही भजेगा गीता में भी कहा है–

यो मावेवमसम्मूढ़ो जानाति पुरूषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।

(गीता– १५.१६)

अर्थात् हे अर्जुन, इस प्रकार तत्व को जो ज्ञानी पुरूष मुझको पुरूषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरूष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को भजता है।

इस प्रकार ईश्वर की अनन्य भक्ति करने से मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है। इसलिए श्रद्धापूर्वक निष्काम, प्रेमभाव से नित्य निरन्तर परमेश्वर का भजन, ध्यान करने के लिए प्राणपर्यन्त प्रयत्नशील रहना चाहिए।

शक्ति के महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती– ये तीनों नाम जगन्नियन्ता परमात्मा की चिति शक्ति के हैं। शास्त्रकारों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा को स्वरचित सृष्टि की मर्यादा के रक्षणार्थ प्रत्येक युग में आपकी अलौकिक योगमाया का आश्रय लेकर पुरूष या स्त्री रूप से अवतीर्ण होना पड़ता है। जब से पुरूष वेश में अवतार लेते हैं, उसी प्रकार चिति शक्ति के ये तीनों रूप भी सत्व, रज, तम आदि गुणों का अधिकता के अनुसार वेष धारण करते हुए तक्तद् गुणानुकुम्प कार्य करते हैं, जो चिति शक्ति के तमःप्रधान रौद्ररूप को महाकाली कहते हैं, जो महालक्ष्मी कहते हैं, जो जगत का पालन करती है। रजःप्रधान ब्राह्मी शक्ति को सरस्वती कहते हैं, जो प्रधानतया जगत् की उत्पत्ति और उसमें ज्ञान का संचार करती है। दुर्गाशप्तशती में चितिशक्ति के इन तीनों स्वरूपों की उत्पत्ति–कथा इस प्रकार वर्णित है –

स्वरोचिष– मन्वन्तर में चक्रवर्ती राजा सुरथ राज्य करता था। एक समय शत्रुओं द्वारा पराजित होकर वह अपने राज्य में आकर शासन करने लगा, परन्तु वहाँ पर भी उसके शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया, जिससे दुःखी होकर वह शिकार के बहाने से वन मे जाकर मेघा मुनि के आश्रम मे रहने लगा। परन्तु वहाँ भी उसे दिन–रात अपने राज्य–कोष आदि की ही चिन्ता घेरे रहती थी। एक समय राजा आश्रम के निकट घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक वैश्य पर पड़ी। उसे उदास देख राजा ने पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो? तुम्हारा मुख उदास एवं चिन्तित क्यों प्रतीत हो रहा है'? राजा के

वचन सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से वैश्य कहने लगा कि 'महाराज, मेरा नाम समाधि है मैं उच्च कुल में उत्पन्न वैश्य हूँ' परन्तु दुर्भाग्यवश मेरे दुष्ट पुत्रों ने मेरा धन छीनकर मुझे निकाल दिया, जिससे मैं इस वन मे भटकता फिर रहा हूँ। मुझे अपने स्वजनों के सकुशल समाचार नहीं प्राप्त होने से मै सर्वदा चिन्तित रहता हूँ। यद्यपि अर्थलोलुप पुत्रों ने मुझे निकाल दिया, फिर भी मेरा चित्त उनके मोह को नहीं छोड़ता। इस प्रकार परस्पर बातें करते वे दोनो आश्रम मे गये और राजा ने ऋषि के समक्ष विनीत भाव से कहा कि 'क्या कारण है कि मेरा सम्पूर्ण राज्य छिन जाने पर भी अभी तक उसमें मेरी आसक्ति बनी हुई है और यही दशा इस वैश्य की हो रही है? आप हमें उपदेश देकर चिन्ता से मुक्त कीजिए'।

मुनि ने कहा– 'राजन! महामाया की विचित्र लीला के द्वारा समस्त प्राणी ममता और मोह के गर्त में पड़े हुए है।

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तथा विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्[1]।।

अर्थात् जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भगवान् विष्णु की महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियों के चित को भी बलपूर्वक आकर्षित कर मोह में डाल देती है। उसी के द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है।

[1] दुर्गासप्तशती- १.५५-५६

ब्रह्मोवाच- त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरातिमका।

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थित।।

अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।

त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।

त्वयितत्पाल्यते देवि च सर्वदा।।

विसृष्टौ सृष्टिरूपात्वं स्थितिरूपा चपालने

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।।

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।

कालरात्रिमहारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।।

त्वं श्रीस्त्वश्रीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बृद्धिबोधलक्षणा

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।।

ख.ड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।

शंखिनी चापिनी बाणभुसुण्डीपरिधायुधा।।

सौम्या सौम्यतराशेष सौम्येभ्य स्त्वतिसुन्दरी।

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।।

यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलत्याके

तस्य सर्वस्य या शक्तिः स त्वं किं स्तूयसे मया।।

यथा त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।।

सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।।

मोहयैतो दुराधर्षासुरौ मधुकैटभौ।।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ"[१]।।

अर्थात् के देवि! तुम्ही स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप है। तुम्हीं जीवन–दायिनी हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवन–दायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उपकार, मकार–इन तीन मात्राओं के रूप में तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओं के अतिरिक्त जो बिन्दु रूपा नित्य अर्थमात्रा है, जिसका विशेष रूप से उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो, हे देवी! तुम्हीं सन्ध्या, सावित्री तथा परमजननी हो। हे देवि! तुम्हीं इस विश्व–ब्राहाम्ण को धारण करती हो। जगन्मयी देवी! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन–काल में स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्त के समय संहार रूप धारण करने वाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामाहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनोंगणों को उत्पन्न करने वाली सब की प्रकृति हो। भयंकर काल रात्रि, महारात्रि, एवं मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ही एवं तुम्हीं बोधस्वरूपा बृद्वि हो। लज्जा, पुष्टि, तृष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्गधारिणी, शूल–धारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करने वाली हो! वाण, भुसुण्डी और परिध–ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य एवं सौम्यतर हो। इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं। है, उन सब की अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दर हो। पर और अपर–असत् रूप तो कुछ भी वस्तएँ हैं, और उन सब की जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार

---

[१] दुर्गासप्तशती- १.७३-८७

करते हैं, उन भगवान को भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर दिया हैं, तब तुम्हारी स्तुति करने में यहाँ कौन समर्थ हो सकता है? मुझको, भगवान शंकर को तथा भगवात् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है। अतः तुम्हारी स्तृति करने की शक्ति किसमें है? हे देवी! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से ही प्रशंसित हो ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मघु और कैटभ हैं, इनको मोह में डाल दो और जगदीश्वर भगवान विष्णु को शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इसके भीतर इन दोनों महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो।

इस प्रकार स्तुति करने पर वह महामाया भगवती भग्वान के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु तथा ह्रदय से बाहर निकल कर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयी। भग्वान भी उठे और देखा कि दो भयंकर राक्षस ब्रह्मा को खाने के लिए उद्यत हो रहे है। ब्रह्मा की रक्षा के लिए स्वयं भग्वान उनसे युद्ध करने लगे। युद्ध करते–करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परन्तु वे राक्षस नही मरे। तब महामाया ने उन राक्षसों की बुद्धि मोहित कर दी।

जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णु भग्वान से कहने लगे कि 'हम तुम्हारे युद्ध से अत्यन्त सन्तुष्ट हुए हैं, तुम ईप्सित वर मांगो'। मधु–कैटभ ने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाॅ प्रथिवी जल से ढकी हुई हो, वहाँ हमको नही मारना।' अन्त में भगवान ने उनके सिरों को अपनी जंघाओं में रखकर चक्र से काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करने के लिए उस सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्ति ने महाकाली का रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है–

खड्गं चक्रगदेषुचापरिघाच्छूलं भुशुण्डीं शिरः

शंख सन्दघतीं करैस्त्रिनयनां सर्वागभूषावृताम्।

नीलाश्मधुतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां

यामस्तौ त्स्वपिते हरौ कमल जो हन्तुं मधुं कैटभम्।।[1]

खड्ग, चक्र, गदा, धनुष, बाण, पारिध, शूल, भुशुण्डी, कपाल एवं शंख को धारण करने वाली, सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित, नीलमणि के समान कान्तियुक्त, दस मुख, दस पाद वाली महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ, जिसकी स्तुति विष्णु भगवान् की योगनिद्रा की स्थिति में ब्रह्मा जी के ने की थी।

महालक्ष्मी

एक समय देवता एवं दानवों में सौ वर्ष तक घोर युद्ध हुआ। देवताओं का राजा इन्द्र था एवं दानवों का महिषासुर पराक्रमी दानवों द्वारा देवताओं को को पराजित कर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन बैठा। तब सम्पूर्ण देवगण पद्म ब्रह्मा जी को आगे कर भग्वान विष्णु और शंकर के पास गये और उन्हे अपनी सम्पूर्ण विपत्ति–गाथा सुनायी। देवताओं की आर्त वाणी को सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकर अत्यन्त क्रोधित हुए और उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उनके शरीर से एक महान तेजपुंज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्वलित पर्वत की तरह सम्पूर्ण दिशाओं को देदीप्यमान करता हुआ नारी–शरीर बन गया। उस भगवती को देखकर समस्त देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे अपने–अपने अस्त्र–शस्त्र समर्पित कर दिये। तब प्रसन्न होकर उस देवी ने अट्टहास किया, जिससे समग्र दिशाएँ गूँज उठीं समुद्र उछलने लगे, पृथ्वी काँप उठी एवं पर्वत भी डगमगाने

---

[1] *दुर्गासप्तशती- १.१*

लगे। देवताओं ने जयध्वनि की और मुनिगण उस देवी की स्तुति करने लगे।

उस देवी की भयंकर गर्जना को सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित दानवसेना को लेकर वहाँ आया और तेजपुंज महालक्ष्मी को उसने देखा। तदन्तर असुरों का देवी के साथ अति भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकार की माया करके थक गया और अन्त में महालक्ष्मी के द्वारा मारा गया। देवताओं ने उसे समय भगवती महालक्ष्मी की निम्न प्रकार स्तुति की–

देव्या यया ततमिदं जदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामाम्बिका मखिल देवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधाति शुभानि या न।
यस्य[illegible] प्रभावमतुलं भगवानन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा [illegible]ण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुमभयस्य मतिं करोतु।।
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवेनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तं त्वां नताः स्म परिपा[illegible] देवि विश्वम्।।
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किंचातिवीर्यमसुरक्षय कारि भूरि
किं चाहवेषु चारितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुर देवगणादिकेषु ।।

हेतुः समसतजगतां त्रिगुणापि दोषै -
र्न ज्ञायते हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिंद जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्तवामाद्या।।
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मर्खेषु देवि।
स्वाहासि वै गणस्य च तृप्ति हेतु
रूच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च।।
या मुक्ति हेतु रविचिन्तयमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त समस्तदोषै-
र्विद्यासिसा भगवती परमा हि देवी।।
शब्दात्मिका सुविम लर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमर्तिहन्त्री।।
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गाऽसि दुर्ग भवसागरनौरसंगा।
श्रीः कैटभारिहृद यैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृत प्रतिष्ठा।।
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तंकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरूषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण।।
दृष्ट्वा तु कुपितं भ्रुकुटीकराल

द्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषास्तदतीच चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन।।
देवि प्रसीद परमाभवती भवाय
सद्यो निवाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुबिपुलं महिष्तसुरस्य।।
ते सम्मता जनदेषु धनानितेषां
तेषां यशांसि ने च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्य
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना।।
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्ग प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा तनु देवि लेन।
दुर्गे स्मृता हरसि भीतमशेष ददासि।
दारिद्रय दुःख भयहारिणी का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्दचिन्ता।
एभिर्हतैर्ज गदुपै त सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।।
संग्राममृत्युधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनम हितान् विनिहंसि
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।

लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता

इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽपिसाध्वी।।

खड्गप्रभानिकर विस्फुरणैतथोग्रैः

शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।।

यन्नागता विलय मंशु मदिन्दुखण्ड

योग्यानंन तव विलोकयतां

दुवृत्तकृतशमनं तव देवि शीलं

रूपं तथैत दविचिन्त्यमतुल्य मन्यैः।

वीर्यं च हन्तृ हृ तदेवपराक्रमाणां

वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्।।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य

रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा

त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि।।

त्रैलाक्यमेतदखिलं रिपु नाशनेन

तात्रं त्वया समरभूर्धनि तेऽपि हत्वा

नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त

मस्माकमुन्मद सुरारिभंव नमस्ते।

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके

धण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च।।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।

भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।

यानि चात्यर्थ धोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लव संगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।।[1]

अर्थात "सम्पूर्ण देवताओं की शक्ति का समुदाय जिनका स्वरूप है तथा जिन देवी ने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं एवं महर्षियों की पूजनीया उन जगदम्बा को हम भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हम लोगों का कल्याण करें। जिनके अनुपम प्रभाव एवं बल का वर्णन करने में भगवान् शेषनाग, ब्रहम्मा जी तथा महादेव जी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत का पालन एवं अशुभ भाग का नाश करने का विचार करें। जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से, पापियों के यहां दरिद्रता रूप से, शुद्व अन्तःकरण वाले पुरूषों के हृदय में बुद्धि रूप से, सत्यपुरूषों में श्रद्वारूप से तथा कुलीन मनुष्यों में लज्जा रूप में निवास करती हैं, उन भगवती महालक्ष्मी को हम नमस्कार करते हैं, हे देवि! आप समग्र विश्व का पालन कीजिए।

हे देवि! आपके इस अचिन्त्य रूप का, असुरों का नाश करने वाले भारी पराक्रम का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्व में प्रकट किये हुये आपके अद्भुत चरित्रों का हम प्रकार वर्णन करें।

आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पात्ति में कारण हैं आपमें सत्तवगुण, रजोगुण और तमोगुण–ये तीनों गुण विद्यमान हैं। फिर भी दोषों के साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु औरमहादेव जी आदि देवता भी आपका पार

[1] दुर्गासप्तशती- ४.३-२६

नहीं पाते हैं। आप ही सब का आश्रय हैं यह समस्त जगत् आपका अंशभूत हैं, क्योंकि आप सब की आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं हे देवि! सम्पूर्ण यज्ञों में जिसके उच्चारण से सब देवता तृप्ति का लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरों की भी तृप्ति का कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वघा भी कहते है।

हे देविः जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, अचिन्त्य महाव्रत–स्वरूपा है, समस्त दोषों से रहित, जितेन्द्रिय, तत्व को ही सार वस्तु मानने वाले तथा मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, यह भगवती परा विद्या ही हैं। आप शब्द स्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्‌गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधारआप ही है। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) एवं भगवती (छः ऐश्वर्योसे युक्त) हैं। इस विश्व की उत्पत्ति एवं पालन के लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका) के रूप में प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का नाश करने वाली हैं।

हे देवि! जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है, वह मेघा–शक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली नौका रूप दुर्गा भी आप ही है। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं हैं। कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल एकमात्र निवास करने वाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं। आपका मुख मन्द मुस्कान से सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब का अनुकरण करने वाला और उत्तम सुवर्ण की मनोहर कान्ति से कमनीय है, तो भी उसे देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और सहसा उसने उस पर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

दे देवि! वही मुख जब क्रोध से युक्त होने पर उदयकाल के चन्द्रमा की भाँति लाल एवं तनी हुई भौंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर कि महिषासुर के प्राण तुरन्त नहीं निकले यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात हैं, क्योंकि क्रोध से भरे हुए यमराज को देखकर भला कौन जीवित रह सकता हैं? हे देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्म्स्वरूपा आपके प्रसन्न होने पर जगत् का अभ्युदय होता हैं क्रोध से भर जाने पर आप तत्काल ही कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभव में आयी हैं क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेना क्षण भर में आपके क्रोध में नष्ट हो गयी है।

सदा अभ्युदय प्रदान करने वाली आप जिन लोगों पर प्रसन्न रहती है, वे ही देश में सम्मानित हैं, उन्ही को धन एवं यश की प्राप्त होती हैं, उन्हीं का धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हष्ट–पुष्ट स्त्री, पुत्र और नृत्यों के साथ धन्य माने जाते हैं। हे देवि! आपकी कृपा से पुण्यात्मा पुरूष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकार के धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभाव से स्वर्गलोक में जाता है, इसलिये आप तीनों लोको में निश्चय ही मनोवांछित फल देने वाली है।

माँ दुर्गे! आप स्मरण करने पर सभी प्राणियों का भय हर लेती हैं और स्वस्थ्य पुरूषों द्वारा चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करती है। दुःख, दरिद्रता एवं भय को हरने वाली देवि! आपके अतिरिक्त दूसरी कौन हैं, जिसका चित्त सब का उपकार करने के लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो। हे देवि! इन राक्षसों के मरने से संसार को सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकाल तक नरक में रहने के लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समस सग्राम में मृत्यु को

प्राप्त होकर स्वर्गलोक में जायें–निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओं का वध करती है।

आप शत्रुओं पर प्रहार क्यों करती है? समस्त असुरों को दृष्टिगत मात्र से ही भस्म क्यों नही कर देती? इससे एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शास्त्रों से पवित्र होकर उत्तम लोकों में जायें इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है। खड्ग के तेजः पुन्ज की भयंकर दीप्ति से तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग की धनीभूत प्रभा से चौधियाँ कर जो असुरों की आँखें फूट नही गयी, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्द प्रदान करने वाले आपके इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे।

हे देवि! आपका शील दुराचारियों के बुरे बर्ताव को दूर करने वाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तन में भी नही आ सकता और जिसकी कभी दूसरों से तुलना भी नही हो सकती तथा आपका बल एवं पराक्रम को उन दैत्यों का भी नाश करने वाला है, जो कभी देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी अपनी दया ही प्रकट की है। हे वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रम की किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओं को भय देने वाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके अतिरिक्त और कहाँ है? हृदय में कृपा एवं युद्ध में निष्ठुरता– ये दोनों बातें तीनों लोगों के भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं।

हे मातः! आपने शत्रुओं का नाश करके इस समस्त त्रिलोकी की रक्षा की हैं। उन शत्रुओं को भी युद्ध भूमि में निष्ठुरता– ये दोनों बातें तीनों लोगों के भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं।

हे मातः! आपने शत्रुओं का नाश करके इस समस्त त्रिलोकी की रक्षा की है। उन शत्रुओं को भी युद्धभूमि में मारकर स्वर्गलोक में पहुँचाया है तथा उन्मत दैत्यों से प्राप्त होने वाले हम लोगों के भय को भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है।

हे देवि! आप शूल से हमारी रक्षा करें। हे अम्बिके! आप खड्ग से भी हमारी रक्षा करें तथा धण्टा की ध्वनि और धनुष की टंकार से भी हम लोगों की रक्षा करें। हे चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें तथा हे ईश्वरि! अपने त्रिशूल को घुमाकर आप उत्तर दिशा में ही हमारी रक्षा करें। तीनों लोगों में आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहतें हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोक की रक्षा करें। हे अम्बिके आपके कर–पल्लवों में शोभा पाने वाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो–जो अस्त्र हों, उनके द्वारा आप सब ओर से हम लोगों की रक्षा करें"।

इस प्रकार महालक्ष्मी जी ने रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है–

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं धण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दनीमिह महालक्ष्मीं सरोज स्थिताम्।।

अपने हस्तकमल में अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, बज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, शक्ति, खड्ग, चर्म, शंख, घण्टा, सुधापात्र, शूल, पाश और सुदर्शन चक्र को धारण करने वाली, कमल स्थित, महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी जी का हम ध्यान करते हैं।

महासरस्वती

पूर्वकाल में शुम्भ एवं निशुम्भ नामक असुरों ने इन्द्रादि देवताओं के सम्पूर्ण अधिकार छीन लिये तथा वे स्वयं ही यज्ञभोक्ता बन गये। तब अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिये देवताओं ने हिमालय पर्वत पर जाकर देवी भगवती की विविध प्रकार से स्तुति की। उस समय पतितपावनी भगवती पार्वती जी आयी और उनके शरीर में से शिवा प्रकट हुई महासरस्वती जी पार्वती के शरीर कोष से निकली थीं। इसलिये उनका नाम 'कौशिकी' प्रसिद्ध हुआ।[1] कौशिकी के निकल जाने के बाद पार्वती का शरीर काला पड़ गया, इसलिये उन्हें 'कालिका' कहते हैं। तदनन्तर भगवती कौशिकी परम सुन्दर रूप धारण कर बैठी हुई थीं कि उन्हें चण्ड–मुण्ड नामक असुरराज शुम्भ –निशुम्भ के दूतों ने देखा। उन्होनें जाकर शुम्भ–निशुम्भ से कहा–

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहर।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्।।
नैव ताहक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्
ज्ञायतां काप्यसा॰ देवी गृह्यतां चासुरेश्वरी।।
स्त्रीरत्न मतिचार्वंगी द्योतयनती दिशस्त्विषा।
सतुतिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति।।
यानि रत्नानि म॰णयो गजाश्वादीनि वै॰ प्रभो।
त्रैलोक्॰ तु समस्तानि साम्प्रंत भान्ति ते गृहे।।
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात।

---

[1] दुर्गासप्तशती- ५.८६

परिजाततरूश्चायं तथैवोच्चैश्रवा हय।

विमानं हंस संयुक्तमेतत्ष्ठिति तेऽगणे।

रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम्।

निधिरेष महापदमः समानीतो धनेश्वरात्।

किच्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम्।।

छंत्र ते वारूणं गेहे काञचनस्रावि तिष्ठति।

तथायं स्यन्दगरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः।।

मृत्योरूत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।

पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे।।

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्त रत्नजातयः।।

वह्नि रपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।।

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।

स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते।।[1]

अर्थात् चण्ड–मुण्ड ने कहा कि हे महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्ति से हिमालय को प्रकाशित कर रही है। वैसा उत्तम रूप कहीं किसी ने भी नही देखा होगा। हे असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे ले लीजिये। स्त्रियों में रत्न है, वह अंगो की प्रभा से सम्पूर्ण दिशाओं में प्रकाश फैला रही है। हे दैत्यराज! अभी वह हिमालय पर ही वर्तमान् है, आप उसे देख सकते है। हे प्रभो! तीनों लोगों में मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस जगह आपके घर में शोभा पा रहे है।

---

[1] दुर्गासप्तशती- ५.९०.१००

हाथियों में रत्नभूत ऐरावत, यह पारिजात वृक्ष और यह उच्चैःश्रवा घोड़ा– ये सब आपने इन्द्र से ले लिया हे। हंसो द्वारा संचालित यह विभाग भी आपके आँगन में शोभा पा रहा है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्मा जी के पास था, अब आपके यहाँ लाया गया हैं यह महापद्म नामक निधि आप कुबेर से छीन लाये हैं। समुद्र ने भी आपको विञजल्किनी नामक माला भेंट की है, जो केसरों से सुशोभित है और जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं है। सुवर्ण की वर्षा करने वाला वरूण का छत्र भी आपके घर में शोभायमान है। तथा यह श्रेष्ठ रथ है, पहले प्रजापति के अधिकार में था, अब आपके पास विद्यमान है। हे दैत्येश्वर! मृत्यु की उत्क्रान्ति नामक शक्ति भी आपने छीन ली है। तथा वरूण का पाश और समुद्र से उत्पन्न सब प्रकार के रत्न आपके भाई निशुम्भ के अधिकार में हे। अग्नि में भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवा में अर्पित किये है। हे दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं, फिर जो स्त्रियों में रत्नरूप कल्याणकारी देवी हैं, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकार में कर लेते?

दूतों के उपर्युक्त वाक्य सुनकर शुम्भ–निशुम्भ ने अपने सुग्रीव नामक दूत को उस देवी को प्रसन्न करके अपने पास लाने को कहा। दूत ने जाकर देवी को शुम्भ–निशुम्भ का ओदश सुनाया और उनके ऐश्वर्य की बहुत प्रशंसा की। देवी ने कहा कि तुम जो कह रहे हो, सब नित्य है, परन्तु मैंने पूर्वकाल में ही एक प्रतिज्ञा कर ली थी, वह यह है कि–

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्योहति।
यो मे प्रतिबलों लोके स मे भर्ता भविष्यति।।[1]

[1] दुर्गासप्तशती - ५.१२०

अर्थात् 'जो मुझ सग्रांम में जीतकर मेरे दर्प को चूर्ण करेगा, वही मेरा पति होगा। अतः तुम जाकर अपने स्वामी को मेरी प्रतिज्ञा बता दो कि मुझे युद्ध में जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर लें।'

दूत ने देवी को बहुत समझाया, परन्तु देवी ने नहीं माना। तब कुपित होकर दूत ने सम्पूर्ण वृत्तान्त शुम्भ–निशुम्भ को जा सुनाया, जिससे कुपित होकर उन्होनें अपने सेनापति धूम्रलोचन को देवी के साथ युद्व करने के लिये भेजा, परन्तु देवी ने थोड़े ही समय में उसे सेना सहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड और मुण्ड को भी देवी ने मार डाला। तब क्रुद्ध होकर उन्होनें अपनी समस्त सेना लेकर देवी को चारों तरफ से घेर लिया भगवती ने घण्टाध्वनि की, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। इस समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश कार्तिकेय और इन्द्रादि के शरीरों में शक्तियाँ निकलकर चण्डिका के पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थी, तत्तत् शक्ति के अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहन से युक्त थीं। उन शक्तियों के मध्य में 'स्वयं' महादेव जी आये और देवी से बोले कि 'मुझें प्रसन्न करने के लिये सम्पूर्ण दानवों का सहांर कीजिये'। उसी समय देवी के शरीर से अति–भीषण चण्डिका–शक्ति प्रकट हुई और शिव जी से बोली कि 'हे भगवान्! आप हमारे दूत बनकर दानवों के पास जाइए और उन्हें कह दीजिए कि यदि तुम जीना चाहते हो, तो त्रैलोक्य का राज्य इन्द्र को समर्पित कर पाताललोक को चले जाओ।'

शिव जी ने शुम्भ–निशुम्भ को देवी की आज्ञा सुनाई, पर वे बलगर्वित दानव कब मानने वाले थे। परिणामतः आपस में युद्ध छिड़ गया और अस्त्र–शस्त्र–प्रहार होने लगे। शक्तियों द्वारा आहत होकर दानव–सेना गिरने लगी। तदन्तर क्रुद्ध होकर रक्तबीज युद्धभूमि में आया। इस महादानव के रक्त से

उत्पन्न दानवसमूह से सम्पूर्ण युद्धस्थल भर गया, जिससे देवतागण काँप उठे। तब चण्डिका ने देवी काली से कहा कि तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीर से निकले हुए रक्त का पान करो, जब इसका रक्त क्षीण होगा, तो यह मारा जायेगा। पुनश्च देवी ने रक्तबीज पर शूल से प्रहार किया। उससे जो रक्त निकला, उसे काली पीती गयी। क्षीणरक्त होते ही देवी के प्रहार से वह धाराशाही हो गया। तदनन्तर शुम्भ और निशुम्भ भी युद्धभूमि मे मारे गये। देवतागण हर्षित होकर जयध्वनि करने लगे। इस प्रकार महासरस्वती ने रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है:—

घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं

हस्ताब्जैर्दधतीं धनान्तविलसच्छीतां शुतुल्यप्रभाम!।

गौरीदेह समुदभवां त्रिनयनामाधारभूतां महा—

पूर्वामत्र सरस्वतीमनु भजे शुम्भादि दैत्यर्दिनाम्।।

आपने हस्तकमल में घण्टा, त्रिशुल, हल, शंख, मुसल

अपने हस्तकमल में घण्टा, त्रिशूल, हल, शंख, मुसल, चक्र, धनुष और बाण को धारण करने वाली, गौरी—देह से उत्पन्न, त्रिनेत्रा, मेघास्थित चन्द्रमा के समान कान्तिवाली, संसार की आधारभूता, शुम्भादि दैत्यों का मर्दन (संहार) करने वाली महासरस्वती को हम नमस्कार करते है।

देवतागण महासरस्वती की स्तुति करने लगे—

त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्त वीर्या

विश्वस्य बींज परमासि माया।

समोहितं देवि समस्तमेतत्

त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः।।

विद्याः समस्तासतव देवि भेदाः

स्त्रियाः समस्ताः सकल न जगत्सु।

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्

का तें स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।[१]

प्रणतानां प्रसीद त्वं विश्वार्तिहारिणी।

त्रैलोक्यवासिनामीडये लोकानां वरदा भव।।[२]

अर्थात् 'हे देवी! आप अनन्त पराक्रमवाली वैष्णवी शक्ति हैं, संसार की आदि कारण महामाया आप ही है। आपके द्वारा समस्त संसार मोहित हो रहा है। आप ही प्रसन्न होने पर मुक्ति की दाता हैं। हे देवि सम्पूर्ण विद्याएँ आपके ही भेद हैं, सम्पूर्ण स्त्रियाँ आपका ही स्वरूप हैं। आपके द्वारा आपकी स्तुति करें। आप समस्त संसार के पापों का और उत्पात के फलस्वरूप उपसर्गों का नाश कर दीजिये। देवताओं की स्तुति सुनकर भगवती महासरस्वती प्रसन्न होकर कहने लगी– 'हे देवगण! तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुति के द्वारा एकाग्रचित होकर जो मेरा स्तवन करेगा, उसकी समस्त बाधाएँ मैं अवश्य नष्ट कर दूँगी।' यह कहकर देवताओं के देखते ही देखते भगवती महासरस्वती अर्न्तध्यान हो गयी।

---

[१] दुर्गा शप्तशाती - ११.५.-६

[२] दुर्गा सप्तशती- ११.३५

शक्ति का सृष्टिकारक रूप

शाक्त आचार्यों के अनुसार विश्वसृष्टि तथा व्यक्तिगत शरीर की सृष्टि के मूल में एक ही व्यापार है। योगियों की दृष्टि में श्री चक्र का आविर्भाव उसी का एक भेदमात्र है, अर्थात् चक्र का उदय, जगत की सृष्टि और आत्मा का देहादियुक्त होकर प्रकाशित होना एक ही बात है। शाक्तमतानुसार समग्र जगत् के मूल मे जो अखण्ड सत्ता है, वह विश्व का उपादानस्वरूप है तथा निमित्तस्वरूप भी हैं। वह निर्विकार है, उसमें न ह्रास हैं, न वृद्धि तथा वह अनादि, अनन्त, स्वप्रकाश एवं चिदानन्द स्वरूप है। शाक्त दृष्टि में स्थित है, अर्थात् वह विश्व रूप में निष्क्रिय है, दासीन है तथा निपेक्ष द्रष्टा मात्र है एवं शक्तिरूप में वही भावी विश्व का उपादान और पूर्ण स्वातन्त्रय रूप है। शिव तथा शक्ति अभिन्न होने पर भी शिव तटस्थ ळैं तथा शक्ति संकोच प्रसरणशीला हैं।

प्राचीन योगियों की पद्धति से परमतत्व–व्याख्यान का मूल ही है। जागतिक सत्ता का विश्लेषण। वे योगी लोग कहते हैं– व्यवहार दृष्टि से जिसे हम शिव कहते हैं, वह भी एक तरह से शक्ति का एक रूप है, क्योंकि वास्तव में जो शिव है, जिसको किसी प्रकार से शक्ति का नाम नहीं दिया जा सकता, उसके विषय में कुछ भी कह सकना संभव नहीं है, क्योंकि–

'शक्त्या विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते'।।

जगत् के मूल में स्थूल दृष्टि से शक्ति के ही दो विरूद्ध स्वरूपों के खेल विद्यमान हैं। ये दो शक्तियाँ स्थिति–विशेष में समरस तथा उद्वयभाव से अविभक्त रूप में विद्यमान हरती हैं। दूसरी स्थिति में ये परस्पर विषम भाव लेकर एक–दूसरे के ऊपर क्रिया करने लगी हैं। इन दोनों शक्तियों में एक का नाम

अग्नि और दूसरी का सोम है। अग्नि तापमय है और सोम शीतल; अग्नि दु:खप्रद है, पर सोम आनन्ददायक है। अग्नि मृत्युरूप है; क्योंकि काल अग्नि का ही रूप है और सोम अमृत रूप हैं। अग्नि अविभक्त वस्तु को विभक्त करके प्रकाशित करती हैं, परन्मु सोम विभक्त या पृथक् खण्डों को अविभक्तरूपेण, अर्थात एक भाव से संहत करता है। अग्नि प्रकाशस्वरूप से तथा सोम विसर्गरूप से तथा सोम विसर्गरूप से प्रकाशित होता है। अग्नि तथा सोम जब साम्यावस्था में स्थित रहते हैं, तब न अग्नि की क्रिया का प्रकाश होता है, और न सोम की क्रिया का। अग्नि क्रिया का नाम है। संहार और सोम–क्रिया का नाम है सृष्टि साम्यावस्था में अग्नि तथा सोम संहार एवं सृष्टि कुछ भी नही करते। यही स्थिति का स्वरूप हे। इसका पारिभाषि कनाम है रवि या सूर्य। यह अग्नि तथा सोम की विषमतावस्था में जब सोम का प्राधान्य होता है, तब संहार होता है। तन्त्र में सूर्य कामतत्व कहा गया है – 'कामख्यो रविः'। इस काम की, अर्थात् साम्यरूपी सूर्य की एक कला है अग्नि और दूसरी कला है चन्द्र। यही काम कला तत्व के अन्तर्गत बिन्दुद्वय का विवरण है। साम्यावस्था में शुद्व स्थिति रहती है, परन्तु विषम अवस्था में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का प्रकाश रहता है।

अग्नि के संस्पर्श से विगलित होकर सोम का क्षरण होने लगता है। इस अवस्था में अग्नि का उन्मेष होता है। तन्त्रमतानुसार हार्द्ध–कला नाम से चित्र–कला का उदय इसी प्रकार का होता है; क्योंकि वस्तुतः चित्त निष्फल है। दूसरी दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि अग्नि के प्रभाव से सोम के बाष्परूप में परिणत हो जाने पर सोमकला अव्यक्त हो जाती है। यह संसार का द्योतक है। इस अवस्था में सोम के रहने पर भी अग्नि की क्रिया ही प्रधान रहती

है, अर्थात् अग्नि तथा सोम संसर्ग से साम के प्राधान्यानुसार सृष्टि होती है तथा अग्नि के प्रधान्यानुसार संहार होता है।

दार्शनिकों के अनुसार यह विश्व कुछ मूल तत्वों से बना हुआ है। शाक्तगण तथा शैवगण अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुये इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि इन तत्वों की कुल संख्या 36 हैं। इन तत्वों से ही समग्र विश्व की रचना हुई है माया के भीतर और माया के बाहर; परन्तु विशुद्ध माया के भीतर असंख्य भुवनावली विद्यमान है। विश्लेषण करते देखने से प्रतीत होगा कि इन सब भुवनों में ये 36 तत्व ही विद्यमान है; परन्तु स्तरों की विभिन्नता के अनुसार सन्निवेश में तारतम्य है। किसी स्तर में एक तत्वों को नित्य कहा जाता है और युक्ति संगत भी हैं, क्योंकि व्यवहारमूलक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि इन तत्वों में भी नित्यत्व नहीं हैं। सभी तत्व कला–रूप उपादान से प्रकट हुए हैं, इसीलिये प्रत्येक तत्व ही कलामय है। तत्व–विश्लेषण करने पर अन्त में एकमात्र कला ही अवशिष्ट रह जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि कला से तत्वों का आविर्भाव हो सकता है, यह सत्य है; परन्तु स्वयं कला का उद्भव कहाँ से होता है और इसका स्वरूप क्या है? पूर्वाक्त कथन से स्पष्ट है कि बिन्दु के क्षोभ से कला का उद्गम होता है। सृष्टि के लिये चन्द्रकलस अपेक्षित है। यह पूर्ववर्णित सोमबिन्दु का अग्नि बिन्दुस्पर्शनिमित्तक क्षोभ से जो क्षरण होता है, उसका फल है। इससे यह भी पता चलता है कि पूर्वोक्त सोमबिन्दु ही विश्व का मूल उपादान है। वहीं तत्वों का प्रसव करते हुए भुवनों के उद्भव का कारण बन जाता है।

पराशक्ति परमशिव के साथ नित्य और अभिन्न है। जब यह परमशिव का अथवा आत्मा का स्फुरण देने की महाशक्ति के गर्भ में समग्र विश्व महाशक्ति के

साथ अभिन्न रूप में विद्यमान रहता है। यह महाशक्ति की सृष्टि–इच्छा जाग्रत होने पर विश्व से अविभक्त रहती हुई भी वह विभक्तरूपेण प्रतीयमान हो सकती है। तांत्रिक आचार्य इस क्रिया का उल्लेख विसर्ग–क्रिया के नाम से करते है। शक्ति कार्य का अविभक्त रूप में विद्यमान रहना ही बिन्दु का व्यापार है और उसका अविभक्त रहते हुए भी विभक्तरूपेण प्रतिभासमान होना विसर्ग का व्यापार है। जिसे सृष्टि कहा जाता है, वह विसर्गव्यापार के अतिरिक्त और कुछ नही है। योगिनी का कहना है कि इस सृष्टि व्यापार में जितने स्तरों का स्फुरण होता है, उनमें पहले का नाम है बिन्दु और दूसरे का त्रिकोण, जिसमें तीन भुजा और तीन कोण है और दूसरे का त्रिकोण, जिसमें तीन भुजा और तीन कोण है और सभी परस्पर समान है। उसके बाद है अष्टकोण। तदुपरान्त क्रमशः अभ्यनतरिक दश कोण और बाह्य दश कोण, पुनः चतुर्दश कोण, अष्टदल और षोडशदल है यह चतुष्कोण सृष्टि के बाहर का प्रचार है। यहीं सृष्टि का अवसान है। क्षुद्र सृष्टि तथा विराट् सृष्टि, दोनों में यही नियत है। चतुरस्र को तान्त्रिक परिभाषा में भूपुर कहा जाता है। बिन्दु से चतुरस्र–पर्यन्त या चतुरस्र से बिन्दु–पर्यन्त विश्व का विस्तार है। चाहे किसी प्रकार की सृष्टि क्यों न हो, उसके बाहर चतुरस्र तथा भीतर बिन्दु रहेगा ही। ऊपर वर्णित क्रम श्रीचक्र का है, परन्तु चक्रमात्र का मूल रहस्य इसी प्रकार का है।

शिव प्रकाशात्मक है और शक्ति विमर्शस्वरूपा हे। शिव चित्‌रूप है और शक्तिपूर्ण अहन्तानिमित्तक आनन्दस्वरूप है। अतएव मूल शिव–शक्ति चिदानन्दमय स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं है। समग्र सृष्टि का जो मध्यबिन्दु हैं, वही उसका सर्वोच्च बिन्दु है। इसी बिन्दु से सर्वप्रथम त्रिकोण का अविर्भाव होता है, जिसके रहस्य का उद्‌घाटन महायोगी को छोड़कर दूसरा कोई भी नही कर

सकता। समग्र विश्व के केन्द्र में महाशक्ति कर आत्म प्रकाश–भूमि के रूप में इस त्रिकोण की अभिव्यक्ति होती हैं। काम कला का जो साम्यभाव है, अर्थात् जिसको काम या सूर्य कहा जाता है, उसकी स्थिति खण्डित है। उसका साम्यभंग कथमपि नहीं होता है। वह महास्थितिस्वरूप है; परन्तु कामकला का जो वैषम्यभाव है, उस तरफ निरन्तर सृष्टि–संहार को खेल चल रहा है। सृष्टि तथा संहार–चक्र के भीतर तथा संहार और सृष्टि–चक्र के भीतर आभास रूप से स्थित बिन्दु का पता चलता है अतएव सृष्टि, स्थिति और संहार निरन्तर ही चल रहे है, यह मानना पड़ेगा। भीतर प्रवेश करने पर प्रतीत होगा कि जो सृष्टि का मूल है। और संहार का अवसान है, वहाँ भी निरन्तर यह प्रक्रिया चल रही है, अर्थात् तिरोधान या निग्रह शक्ति का खेल तथा अनुग्रह शक्ति का खेल विश्व की पृष्ठभूमि में निरन्तर स्वाभाविक रूप से चल रहा है। यह एक का तिरोभाव है, जिससे नानात्व का अविर्भाव होता है। प्राचीन वेदान्त के दृष्टिकोण से मूल अविधा के आवरण तथा विक्षेप का केन्द्र इस स्थान में है। जीव जब अपने मूल एकत्व रूप में प्रत्यावर्त करता है, तब समझना चाहिये कि यह अनुग्रह शक्ति का खेल है। बिना अनुग्रह शक्ति की क्रिया के जो संहार होता है, वह वास्तव में संहार नहीं है; क्योंकि उसमें संस्कार तथा जड़त्व में लौट आना पड़ता है। यह संहार वास्तव में आत्मस्वरूप में प्रत्यावर्तन नहीं है। यह केवल मात्र काल का खेल है।

सृष्टि के मूल में बिन्दु है। यही महाबिन्दु के नाम से प्रथित है। प्रकाश अथवा शिवांश और विमर्श अथवा शक्त्यंश जब समभाव में अथिष्ठित रहते है, तब बिन्दु नाम से अभिहित होते है। किन्तु उसके भीतर एक रहस्य यह है कि स्थूल सृष्टि–व्यापार के पूर्व चित्‌शक्ति का खेल विद्यामान रहता है। चित् शक्ति

अपने स्वरूप, अर्थात् आत्मा को भित्ति बनाकर उसी के ऊपर विश्व की रचना करती है, अर्थात् उसमें निहित अव्यक्त विश्व करे पहले परिस्फुट करती है, तदनन्तर उसे इंदरूपेण ग्रहण करती है। इस प्रकार से प्रकाश की भित्ति के ऊपर प्रकाशमान हे चित्ररूपी विशव का इदंरूपेण भान होने लगता है। जो विश्व पूर्ण अहं के भीतर अहंरूप से विद्यमान था, वही आभासरूप में इदम्प्रतीति का विषय बनकर चित्र रूपेण उन्मीलित होता है। स्थूल सृष्टि की इच्छा धनीभूत होने पर यह आभासरूपी विश्व स्थूल रूप मे परिणत होता है इसमें कियाशक्ति पर्यन्त कई शक्तियों का खेल रहता है। कियाशक्ति के व्यापार के बिना आभास धनीभूत साकार रूप मे परिणत नही हो सकता।

हम बिन्दु की बात कह चुके हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक ही बिन्दु त्रिधा विभक्त होकर तीन बिन्दुओं के रूप में आविर्भूत होता है अर्थात समष्टिरूप से स्थित एक ही बिन्दु व्यष्टि में तीन बिन्दुओं के रूप मे परिणत हो जाता है प्रकाशांश तथा विमर्शांश दोनों का मूल ही सृष्टि का मूल है। प्रकाशांश तथा विमर्शांश को 'शान्ता' नाम दिया जाता है अम्बिका वामा, ज्येष्ठा और रौद्री इन तीन शक्तियों के रूप में प्रकाशित होती है वैसे ही शान्ता भी इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया रूप में अभिव्यक्त होती होती है। जहाँ अम्बिका तथा शान्ता साम्यभाव में स्थित रहती है, उसका नाम है– मूल बिन्दू अथवा समष्टि बिन्दु तीन व्यष्टि बिन्दुओं को भी वैसे ही समझना चाहियें। इन तीन बिन्दुओं में जो पहला बिन्दु है वह वामा तथा इच्छा का समरूप है, द्वितीय बिन्दु ज्येष्ठा तथा ज्ञान का साम्यरूप है तृतीय बिन्दु रौद्री तथा क्रिया का साम्यरूप है कहना न होगा कि ये तीन बिन्दु ही मूल त्रिकोण के तीन बिन्दु है और जिसे मूल बिन्दु कहा गया है, वही मूल त्रिकोण का मध्य बिन्दु है अम्बिका में शान्ता का साम्य होने पर मूल

बिन्दु का आविर्भाव होता है इसी का नाम है परावाक। परमात्मा या सदाशिव इसी मूल बिन्दु के अवस्थाविशेष का नाम है।

इसी प्रकार वामा और इच्छा में साम्य से जिस बिन्दु का आविर्भाव होता है उसका नाम है पश्यन्ती, वाक्, ज्येष्ठा तथा ज्ञान के साम्य से जो बिन्दु प्रकट होता है। उसका नाम है मध्यमा वाक् एवं रौद्री तथा क्रिया के तादातम्य से जो बिन्दु प्रकट होता है उसका नाम है बैखरी वाक्। इस त्रिकोण के आविर्भाव को ही आदि अथवा मूल त्रिकोण समझना चाहिये। इसमें मध्यबिन्दु ही परामातृका है शेष तीन दिशाओं के तीन बिन्दुओं को पश्यन्ती, मध्यमा एवं बैखरी से अभिन्न समझना चाहिये। इस त्रिकोण की वामदिशा की वक्ररेखा पश्यन्ती वाक् का प्रसार है, ऊर्ध्व या सम्मुख की सरल रेखा मध्यमा वाक् का प्रसार है एवं दक्षिण दिशा की प्रत्यावर्त्तनमुखी रेखा वैखरी वाक् है यही योनिस्वरूप विश्वमातृका का सक्षिप्त परिचय है।

सृष्टि क्रम मे चिति शक्ति की सर्वात्मकता

सत्, चित्त, आनन्दरूपा शक्ति अपनी सर्वव्यापकता से सदा सर्वत्र एकरस विराजमान है। चिति शक्ति, चिच्छत्ति, चेतन शक्ति, दैवी शक्ति, परा शक्ति, ब्रम्हा एवं आत्मा सभी पर्याय शब्द है। उपनिषदों में इसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है यथा बहवृचोपनिषद में।

'हरिः ॐ देवी होकाग्र आसीत। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति। विज्ञायते.....तस्या एवं ब्रम्हा अजीजनत्। विष्णु रजीजनत्। रूद्रोजीजनत। सर्वे मरूदगणा अजीजनन .... सर्व शाक्तमजीजनत। अण्डजं स्वेदजमुदिभज्जं जरायुजं यत्किंचैतत प्राणिस्थावरंजगंमं मनुष्यमजीजनत। सैषा परा शक्तिः सैषा शाम्भवी

विद्या .... र्सव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य बहिरन्तवभास – यन्त्री ...
.... महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक चितिः। सैवा ततोन्यदसत्यमनात्मा।
अत एषा बहासंवित्तिर्भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिदाद्या द्वितीयब्रम्हा
संवितिः सच्चिदानन्लहरी.......... बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकेव विभति
यदस्ति सन्मात्रम। यद्विभाति चिन्मात्रम। यर्तप्रिय मानन्दं
तदेतत्सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वं चाहं च सर्व विश्व सर्व देवता।
इतरत सर्वं पर ब्रहम पश्चरूप परित्याममदस्वरूप प्रधणतः अधिष्ठानं
परः तत्वमेकं सच्छिष्यर्ते महदिति। प्रज्ञानं ब्रहोति वा अहं ब्रहास्मीति
वा भाष्यते। तत्वमसीत्येव अयमात्मा ब्रहास्मीति वा भाष्यर्ते।
तत्वमसीत्येव सम्भाष्यते। अयमात्मा ब्रहोति वा ब्रहोवाहमस्मीति वा
भाष्यर्ते सैषा षोडशी श्रीविद्या............ बालाम्बिकेति बगलेति वा
मातंगीति स्वंयव कल्याणीति भवनेश्वरीति .... वा
शुकश्यामेलेति वा प्रत्यगिरा धूमावती सावित्री सरस्वती ब्रहानन्द
कलेति। ॠणे अक्षरे परमे व्योमन। यस्मिन। देवा अध्विविश्व
निषेदुः।

इससे ज्ञात होता है कि सृष्टि के आदि में देवी ही थी। सैषा परा शक्तिः और इसी परा शक्ति भगवती से ब्रम्हा, विष्णु, महेश तथा सम्पूण स्थावर जगमात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई संसार मे जो कुछ है इसी से सन्निविष्ट है। भुवनेश्वरी प्रत्याडिरा, सावित्री, सरस्वती एवं ब्रहानन्दनकला आदि अनेक नाम इसी परा शक्ति के है। रामपूर्वतापनीय उपनिषद मे कहा गया है –

कारणत्वेन चिच्दकत्या रजस्सत्वतमोगुणैः।
यथैव वटबीजस्थः प्रकृतोयं महाद्रुमः।

वटबीज में जिस प्रकार महावृक्ष सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और उत्पन्न होकर एक महान वृक्ष के रूप मे परिणात हो जाता है वैसे ही यह प्राकृत ब्रह्माण्ड चिच्छक्ति से उत्पन्न हो जाता है।

श्रीनृसिंहोत्तरेतापनीयोपनिषद में यासरस्वती, या श्रीः या गौरी, या प्राकृतिः या विद्या इत्यादि नामों से उसी चितिशक्ति का निर्देश किया गया है इनका जय करने से अमृत की प्राप्ति होती है इस उपनिषद में अद्वय, शुद्व, बुद्य, मुक्त, आत्मा, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, अवयक्त, अगन्तव्य, अबोद्वव्य अनिन्द्रिय, भविष्य, आकरण, अलक्षण, असंग, अगुण, अविक्रिय, असत्व, अरजस्क अतमस्क, अभय, अलिंग आदि विशेषणाविशिष्ट यही शक्तितत्व है कठोपनिषद में इसी को 'सा काष्ठा सा परा गतिः कहा गया है अग्नि जिस प्रकार सर्वत्र व्यापक है, वैसे ही सम्पूर्ण जगत, चितिशक्ति से व्याप्त है।

जाबालोपनिषद मे शक्ति की महिमा का वर्णन इसी प्रकार से किया गया है–

आधारशकत्यावधृतः कालीग्निरयमूर्ध्वगः।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः।
विद्याशक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयर्ते।।

ऐतरेयोपनिषद मे भी कहा गया है कि सृष्टि से पहले आत्म शक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही था आत्मा का इदमेक एवाग्र आसीत नान्यत् किंचन मिषत्। प्रज्ञा प्रतिष्ठां। छान्दोग्यो पनिषद् भी इसी तत्व का प्रतिपादन करता है। यथा –

आसीदेवेदमग्र आसीत तत्समभवत्।

सृष्टि से पहले चिति शक्ति सूक्ष्म सत्ता से विराजमान रहती है और उसके अनन्तर स्थावर जंगम रूप से प्रकट होती है तैत्तिरीयोपनिषद मे कहा है–

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यन्त्यभिसंविशन्ति।आनन्दद्वेयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,, आनन्देन प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'।

आनन्दरूपा चित्ति शक्ति से सब भूत उत्पन्न होते है उसी से जीते एवं उसी मे लीन हो जाते है श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा है– 'य एको वर्णः शक्तियोगार्णाननेकान् निहितार्थो दधाति। लय में जो एक होकर भी शक्ति के योग से सृष्टि में अनेक हो जाता है। माण्डुक्योपनिषद में भी कहा गया है।

'प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम्' वह तत्व प्रपंच से परेशान्त, कल्याण रूप एवं आद्वैत है।

'यतो वाचो निवर्तर्न्ते अप्राप्य मनसा सह'।

जो तत्व मन, वाणी आदि इन्द्रियों के अगोचर है, वह चिति शक्ति है।

'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं न विद्युतो भान्ति कुतोमग्निः।

उसमें सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत आदि की पहुँच नही। पात×जल योग में भगवती चिति शक्ति का दर्शन इस प्रकार होता है –

'चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम। (यो० कै०)

'चितिशक्तिरपरिणामिनी अप्रतिसंक्रमादर्शितविषया शुद्धा। चानन्ता च। (अन्यत्र तथा) अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्ति – रप्रतिसंक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसकांन्तेव तदवृत्मिनुपतति। तस्याश्च प्राप्तचैतन्योपग्रह रूपाया बुद्धिवृत्तेरनुकारिमात्रतया।

बुद्धिवृत्तिराख्यायते। (व्या० भा०)

चिति शक्ति निज वास्तविक रूप से परिणाम और संचार रहित एवं शुद्ध तथा अनन्त है किन्तु सृष्टि दशा में यह परिणामिनी सी प्रतीत होती है यथा स्वच्छ जल में पड़े हुये किया रहित चन्द्रमा प्रतिबिम्ब से आकाशस्य अचंचल चन्द्र बिम्ब चंचल प्रतीत होता है इसी प्रकार सकिय बुद्धि वृत्ति में संकान्त कियारहित चिति का प्रतिबिम्ब निश्चल चिति को कियासहित कत्री, भोक्त्री प्रतीत कराता है।

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि चिति शक्ति जगत की लय दशा में संसार को अपने में लीन कर स्वयं शान्त, शिव, अद्वैत, निष्किय, विशुद्ध रूप से विराजमान रहती हैं। किन्तु सृष्टि दशा में 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्र० सू०) के निमित्त सोकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इस सिसृक्षा के अनन्तर ही संसार की रचना करती है। इसी सिसृक्षा, अर्थात्जलहिम के समान धनीभूत चिति शक्ति का नाम माया है। माया के संयोग से चिति शक्ति सृष्टि स्थिति मे ईश्वर, जीव और माया के व्यक्ताव्यक्त अनेक रूपों मे दर्शन देती है। जीव सृष्टि मे ब्रम्हा जी सर्वप्रथम है।

शक्ति के सात्विक, राजस एवं तामस स्वरूप।

महर्षि व्यास द्वारा प्रणीत मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती विविध पुरूषार्थ साधिका, कर्म भक्ति ज्ञानोत्म सिद्वान्त प्रतिपादिका, वेद वेदान्त–तत्वप्रकाशिका, सकलभक्ता भीष्ट–वरप्रदा, अभयदा एवं अशरणशरणदा है। इसमें जिस विशद, विमल चारित्रत्रय का वर्णन है[1] उसका समन्वक भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट उन्ही महर्षि भगवान वेदव्यास जी की विशाल बुद्धि की

---

[1] प्रथमध्यमोत्तमरित्राणि-कर्मयोग, उपासनायोग एवं ज्ञानयोग के उच्चतम सिद्वान्त की लालारूप हैं।

कृति श्रीमदभगवदगीता के काण्डत्रय से भलीभॉति होता है इसका मूल कारण यह है कि दोनों सप्तशतियों की भित्ति वेदोपनिषद ही है और मन्त्र ब्राम्हणों में परब्रम्ह परमेश्वर परमात्मा के नाम से तथा तन्त्रशास्त्र में परम भाव के नाम से एक ही परम तत्व का वर्णन है श्री कृष्ण और श्रीकृष्णा की लीलाओं के उद्देश्य में क्या अन्तर हो सकता है ?

ॠृग्वेद मे शक्तिरूप से परब्रहम का जो वर्णन है, उसका सारांश इस प्रकार है– 'ब्रहाद्वेषियों के संहारार्थ, श्री सग्रांम उत्पन्न करती है वह समस्त देश की स्वामिनी है उनके पास सब धन एकत्र है, उनके ज्ञान से परे कोई वस्तु नही है तथा जो यज्ञ के योग्य है, उनमें वह एक प्रधान है उनका वास समुद्र में है और वह त्रैलोक्य में व्याप्त है उक्त देवी ही विश्वेश्वरी (सारे विश्व की स्वामिनी), लक्ष्मी (समग्र धन सम्पन्ना) एवं सरस्वती (पराज्ञानशक्ति) आदि नामों से व्यपदिष्ट हुई है।

अस्त्र शस्त्र धारिणी भगवती के जिस युद्व का वर्णन वेद मे समास रूप से है, उसी को वेदव्यास जी जी ने अपने ज्ञानचक्षु द्वारा देखकर पुराणो में व्यास रूप में लिखा है वेद भगवान ने जिस शक्ति का वर्णन किया है और जिसको अध्यात्मवादियों[१] ने (हैमवती) ब्रहाविद्या रूप में वेदान्तियों[२] ने सृष्टि रचना के कारणभूत लीला रूप मे योगियों[३] ने चिति शक्ति के रूप में पूर्वमीमांसकों[४] ने धर्म

---

१. देवी विष्णुशिवादीनामेकत्वं परिचिन्तयेत।
भेदकुन्नरकं याति रौरवं नात्र संशयः।। (मुण्डमालाः)
२. 'प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाक्यात्ममायया' से स्पष्ट है कि अममाया से अवतरित परब्रम्हा ही श्रीकृष्ण है।
३. ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धर्मायै सततं नमः।।
तस्या विनिर्गतायां तु कुष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।। (दुर्गा. ५,१२, ८८)
प्रकृति, पुरूष त्र ब्रम्हा के सयोंग से कार्य प्रकृति करती हैं। अतएव ब्रहा, माया त्र प्रकृति, पुरूष त्र कृष्ण त्र कुष्णा (दुर्गा) है। अतः यहॉं गीता सांख्य - सिद्वान्त एक ही है।
४. स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैववर्ती तां होवाच किमेतद्यक्षरमिति। सा ब्रहेति हो वचा। (केनोपनिषद - ३,१२,४.५)
५. लोकवस्तु लीलाकैवल्यम् (ब्र. सू. २.१.३३), लीलान्यायेन पुरूषनिः श्वासवधस्मान्महतो भूताद्योनेः सम्भवः। (शं. भा. १.१.३)
६. पुरूषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। (यो. द.पा. ४४.३४)
७. अथातों धर्मजिज्ञासा ।।१।। चोदनालक्षणोर्थो धर्मः ।।२।। स एव ब्रहा धर्मः एच धर्म्यभिन्न एव 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इति श्रुतेः तस्यैव धर्म - त्वाच्छक्तिरिति संज्ञा।

तथा मन्त्र के रूप मे, नैयायिकों[५] ने नित्यता को परमाणु के रूप मे तथा सांख्यदर्शनाचार्यो[६] ने सृष्टिकर्तृत्व के रूप में, वैष्णव भक्तों[७] ने श्री राधिका जी के स्वरूप मे कविकुल चूडामणि कालिदास जी[१] ने परमेश्वर के साथ सम्प्रक्त रूप में गौस्वामी तुलसीदास जी[२] ने अभिन्न भाव से सीताराम के रूप मे और श्रीमद्वभागवतगीता[३] मे भगवान श्री कृष्ण ने माता रूप में वर्णन किया है उसी परमा परमेश्वरी को विनीत भाव से प्रणाम करते हुये उसके रहस्मय चरित्रय के अन्तर्गत सात्विक राजस एवं तामस स्वरूपों का निरूपण करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रथम चरित्र – द्वितीय मनु के राज्याधिकार मे सुरथ नामक चैत्रवंशोदमव राजा क्षितिमण्डल का अधिपति हुआ। शत्रुओं तथा दुष्ट मन्त्रियों के कारण उसका राज्य कोषादि उसके हाथ से निकल गया। फिर वह मेधा नामक ऋृषि के आश्रम मे पहुँचा और वहॉ भी मोहवश प्रजा, पुर, शूर, हस्ती, धन, कोष और दासों की अर्थात अल्प नाशवान[४] पदार्थो की चिन्ता मे लगकर दुखी हुआ। केवल आत्मज्ञ पुरूष ही स्वराट[५] होता है। सुरथ की वही दशा हुई जो भगवतभक्तिविहीन पुरूषों की होती है।

इसी आश्रम में समाधि नामक वैश्य से राजा सुरथ की भेंट हुई। यद्यपि यह वैश्य अपने धन लोलुप स्त्री पुत्रों द्वारा घर से बहिष्कृत कर दिया गया था, तब भी

---

१. सर्व नित्य पंचभूतनित्यत्वात। जलादि परमाणु रूपस्य नित्यत्वम। (न्याय ४.१.२६)
२. सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान। (सा.सू. १.६१)
मूले मूलाभावादमूलं मूलेभावादमूलं मूलम। (सां. सू. १.६६)
३. आह्वनादिनी शक्तिः । राधा रासेश्वरी ससवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णामांशसम्भूता परामानन्दनरूपिणी।।
४. वागर्थविव सम्पुक्तौ वागर्थपतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे वार्पतीपरमेश्वरी।। (रघु. १.१)
५. गिरा अरथ जलवीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बन्दउ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय बिन्न।। (रामचरित्रमानस)
६. पिताहमस्य जगतो मता धाता पितामहः (गीता – ७.१.७)
७. गो – अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हिस्तहिरण्यं दासभाय क्षेत्राण्यायतननीति नाहमेवं ब्रवीमि होवाचान्यो हान्यास्मि प्रतिष्ठित इति। (छा. उप. ७.२४.२)
८. आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराडू भवति। (छा. उप. ७.२५.२)

उनके दुर्व्यवहार को विस्मृत कर उनके वियोग मे दुखी था। इस प्रकार यह दोनों दुखी होकर मेधा ऋृषि के समीप पहुचें। वहाँ दोनों शास्त्रानुसार सम्भाषण करके बैठ गये। राजा ने ऋृषि से कहा– 'जिस विषय में हम दोनों को दोष दिखाई देता है, उसकी ओर भी ममतावश हमारा मन जाता है। मुनिवर यह क्या बात है कि ज्ञानी पुरूषों को भी मोह होता है ?

महर्षि उनको मोह का कारण बतलाते हुये कहते है –

'ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हिसा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। (दुर्गा० १.५५)

अर्थात इसमें कुछ आश्चर्य नही कि ज्ञानियों को भी मोह होता है, क्योंकि महामाया भगवती अर्थात भगवान विष्णु की योगनिन्द्रा (तमोगुणप्रधान शक्ति) ज्ञानी पुरूषों के चित्र को भी बलपूर्वक खीचकर मोहयुक्त कर देती है। वही भक्तों को वर प्रदान करती है और वही परमा अर्थात ब्रम्हाज्ञान रूपा है।

राजा ने भगवती की ऐसी महिमा सुनकर निम्नलिखित तीन प्रश्न किये –

1. वह महामाया देवी कौन है ?[२] वह कैसे उत्पन्न हुई ? और

3. उसका कर्म तथा प्रभाव क्या है ? मुनि ने उत्तर दिया –

---

१. तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस मे भी कहा है –
बोले बिहिस महेस तब ग्यानी मूढ न कोई।
जेहि जस रघुपति करहि जब सो तस तोहि छन होई।।

२. 'परमा' शब्द वे मे शक्ति के वर्णन मे है। यथा –
'विश्वकर्मा विमला आद्विहाया धाता विधात परमोत संदृक।
(दृष्टव्य – पं. राजारामकृत वेदोपदेश, पृ. ६२)

'नित्यमैव सा जग्न्मूर्तिस्त्या सर्वमिदं ततम्। (दुर्गा. १.६४)

अर्थात वह जगन्मूर्ति नित्या है और उसी से यह सब व्याप्त है। तब भी उसकी उत्पत्ति देवताओं की कार्यसिद्वि के लिये कही जाती है। दुर्गासप्तशती के चरित्रय का प्रतिपा विषय ब्रहमविद्या है जिस प्रकार ब्रम्हा, विष्णु, महेश – रज, सत्व और तमः प्रधान है, उसी प्रकार चितिशक्ति के ये तीनों रूप भी सत्व, रज, तम आदि गुणों की अधिवक्ता के अनुसार वेश धारण करते हुये ततदगुणानुरूप कार्य करते है चितिशक्ति के तमः प्रधान रौद्ररूप को महाकाली कहते है, जो प्रधानतया दुष्टों का संहार करती है तमोगुणप्रधान महाकाली की उत्पत्ति कथा दुर्गा सत्पशती के प्रथम चरित्र के रूप मे इस प्रकार है –

जब प्रलय के उपरान्त भगवान विष्णु शेषशय्या पर योगनिन्द्रा में निमग्न हुये, तब उनके कर्ण मल से मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न होकर भगवान के नाभि कमल स्थित ब्रहमा जी को ग्रसने चले, तब ब्रहमा जी भगवान की योगनिन्दा की षटतुरीया शक्ति के रूप मे सुन्दर, सरस, स्तुति परम प्रेमपूर्वक करने लगे और उसमे उन्होने निम्न तीन प्रार्थनायें की –

1. भगवान विष्णु का जगा दीजिये।
2. उन्हे असुर द्वय के संहारार्थ उद्यत कीजिये।
3. असुरों को विमोहित करके भगवान द्वारा उनका नाश कराइये।

---

१. मया ततमिदं सर्व जगदव्यक्तमूर्तिना। (गीतता - ७.४)
प्रकृतिपुरूषयोरन्यर्त्वमनित्यम्। (सा. द. ५.७२)

२. तुरीय चैतन्य की छः शक्तियाँ है – ज्ञान, इच्छा, क्रिया, मातृका, कुण्डलिनी और परा।
'व्यष्टि समिष्टि भेदेन संबा अनन्तास्तत्रान्तरावगन्तव्याः त्रितयसमिष्टत्वादेवैषा तुरीयेति शक्तिर्निदिश्यते'। (गुप्तकलीटीकायाम्) यथा –

श्री भगवती ने स्तुति से प्रसन्न होकर ब्रम्हा जी को दर्शन दिये उससे (योगनिद्रा से) मुक्त होकर श्री भगवान उठे और असुरों से युद्ध करने लगे। तदनन्तर असुर योगनिद्रा से मोहित हुये और उन्होनें भगवान से वरदान मांगने को कहा। अन्त मे उसी वरदान के अनुसार वे भगवान के हाथों मारे गये। इस कथा से तीन बातों का निष्कर्ष निकलता है।– ब्रम्हा को गुणत्रय से परे परमभाव– परमाशक्ति का ज्ञान। २. प्रकृति के गुणत्रय का कार्य, उसके कर्तव्य का भाव और ब्रम्हा का अपने सृष्टिकर्तव्य में–

1. ज्ञान– 'महाविद्या महामया मा ह्ममेघा महास्मृतिः'। (दुर्गा. १.७७)
2. इच्छा– 'प्रकृति स्त्वच्च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी'। (दुर्गा. १.७८)
3. किया– 'त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यतें जगत्। (त्वयैत्याल्यते.........'। (दुर्गा १.७५)
4. मातृका – 'सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रत्मिका स्थिता। अर्धमात्रस्थिता नित्या ....'। इत्यादि। (दुर्गा. १.७४)
5. कुण्डलिनी– 'सोडपि निन्द्रा नीतः ....कस्तवां स्तोतुमिहेश्वरः (दुर्गा. १८४)
6. परा– 'परापराणां परमा'। (दुर्गा. १८२)
3. वास्तव में प्रकृति गुणों के यही कार्य है। इस विषय मे गीता और सांख्यदर्शन का मतैक्य है। १. ज्ञान करना सत्वगुण का कार्य है। २. उद्यत करना, कर्मारम्भ, प्रवृत्ति आदि रजोगुण का कार्य है। और ३. मोहन करना तमोगुण का कृत्य है। (द्रष्टव्य– श्रीमद्भभागवतगीता– १४.८, ११–१२) निरहाकारत्व और ३. मधु[1] कैटभ[2] अर्थात सुकृत दुष्टकृत मे निर्ममत्व तथा

---

१. मधु मिष्टं कर्मफलम' । (कठोपनिषदाष्य - २.१)
२. 'अथय एतौ पन्थानौ न विदस्ते कीटाः पतंगा यदिदं दन्दशूकम। (बृहदारण्यक - २.६.१५) तथा प्रलीनस्तमसि मूयनोनिषु जायेते। (गीता - १४.१५)

उसके निर्मूलन का प्रयत्त। इस कथा से ब्रह्मा जी ने यह उपदेश दिया कि जो भगवती की आराधना करते हैं एवं कर्त्तव्य के अभिमान तथा सृकृत-दृष्टकृतरूपी कार्यफल को त्यागकर अपने निहित कर्म में प्रवृत्त रहते हैं उनका जीवन शान्ति पूर्ण त्यागकर रूप से व्यतीत होता है यही ब्राह्मी स्थिति है[1] जिसे प्राप्त कर मनुष्य मोहग्रस्त नही होता। महर्षि मेधा सुरथ तथा समाधि दोनों जिज्ञासुवों के मोह के निराकरणार्थ कार्य के उच्चतम सिद्वान्त का निरूपण करके उपासना तथा ज्ञानयोग के तत्व के भगवती के अन्याय प्रभावों द्वारा निरूपित करने लगे।

मध्यम चरित्र चिति शक्ति के सत्तव प्रधान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी कहते है जो जगत का पालन करती हैं। इस सत्व प्रधान महालक्ष्मी की उत्पत्ति एवं पराकम की कथा दुर्गा सप्तशती के मध्यम चरित्र के रूप में मार्कण्डयें पुराणों में वर्णित है इस कथा में महर्षि मेधा ने राजा सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य के प्रति मोहजनित सकामोपासना द्वारा अर्जित फलोपभोग के निराकरण के लिये निषकामोपासना का उददेश किया हैं।

प्राचीन काल में महिष नामक एक अतिबलवान असुर ने जन्म लिया। वह अपनी शक्ति से इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वरूण, अग्नि, वायु तथा अन्य देवताओं को हराकर स्वयं इन्द्र बन गया। उसने समस्त देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया अपने स्वर्ग सुख एवं भोगैश्वर्य से वचिंत होकर दुखी देवगण साधारण मनुष्य की भॉति मर्त्यलोक में भटकने लगें। अन्त में व्याकुल होकर वे ब्रम्हा जी के साथ भगवान विष्णु एवं शिवजी के पास गए और उनके शरणागत होकर उन्होंने अपनी कष्ट कथा कही।

---

१. यहॉं ब्राहमी मे श्लेष है। ज्ञानयोग में ब्रहमणि भावा इयं स्थिति और कर्मयोग में ब्राहमण (ब्रहमा की) स्थिति ऐसा अर्थ है।
कर्मठयेवाधिकारस्ते मा फलेषु रूदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तें सङ्गोंडस्त्वकर्मणि ।। (गीता - २.४७)

देवताओं की करूण कथा सुनकर भगवान विष्णु तथा भगवान शिव के मुख से महातेज प्रकट हुआ। इसके पश्चात् ब्रम्हा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यमादि देवताओं के शरीर से भी तेज निकला। यह सब एक होकर तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाली एक दिव्य देवी के रूप मे परिणत हो गया। विष्णु शिव तथा ब्रम्हा आदि देवों ने अपने अपने अस्त्र शस्त्रों मे से उस दिव्य प्रकाशमयी तेजो मूर्ति को अमोध अस्त्र शस्त्र प्रदान किया। तब भगवती अट्हास करने लगी। उनके अट्हास से समस्त लोक कम्पायमान हो गये। तब असुर महिष[1] ने कहा आह यह क्या है इस प्रकार कहता हुआ समग्र असुरों के साथ उस शब्द की ओर दौड़ा वहाँ पहुँचकर उसने उस महाशक्ति देवी को देखा जिसकी कान्ति त्रैलोक्य मे फैली है। और जो अपनी सहस्त्र भुजाओं से दिशाओं के चारो तरफ फैलकर स्थित है। इसके बाद असुर देवी से युद्ध करने लगें। श्री भगवती एवं उनके वाहन सिंह[2] ने कई कोटि असुर सैन्य का विनाश किया। तत्पश्चात श्री भगवती के द्वारा चिक्षुर, चामर, उदग्र,[3] कराल, बाष्कल, ताम्र, अन्धक, अतिलोम, उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु, विडालास्य, महासुर दुर्धर एवं दुर्मुख नामक चौदह असुर सेनानी मारे गये। अन्त मे महिषासुर महिष, हस्ती मनुष्यादि के रूप धारण करके श्री भगवती से युद्ध करने लगा और अन्ततः मारा गया। महिषासुर के मारे जाने के अनन्तर आहलादित देवताओं ने आधा शक्ति की स्तुति की और वर माँगा कि–

'संस्मृता संस्मृता त्व ंनो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने।।

१. देवता काम से पूजा जाते है यथा निरूक्ते - यत्काम ऋृषिर्यस्यां देवताया - यर्थप्तमिच्छन स्तुति प्रयुडक्ते तछैवतः सा मन्त्रों भवति और स्वर्ग के भोगैश्वर्य प्रसक्त देवगण काम के वेश मे है यही काम महिष रूप क्योकि महंयति पूजयति देवाननेनति महिषः काम इति कोषः यथा दृष्टव्य श्रीमदभगवतगीता - २.४३- ४४)
२. मध्यम तथा उत्तम चरित्र मे श्री भगवती का वाहन जो सिंह है वह धर्म है यथा - सिंह समग्र धर्ममीश्वरम (दुर्गासप्तशती, वैकृतिक - रहस्य)
३. इन चौदह इन्द्धों मे उदग्र, उगास्य बाष्कलादि सात सुख दुख द्वन्द्व है। उदग्र माम, दुर्मुख अपमानादि का अर्थ सक्षेंपतः गीता के सप्तद्वान्द्धों से मिलता जुलता है।

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके। (दुर्गा. ४/३६-३७)

अर्थात जब जब हम लोग विपदग्रस्त हों, तब तब हमें आपदाओं से विमुक्त करें और जो मनुष्य आपके इस पवित्र चरित्र को प्रेमपूर्वक पढ़े, या सुनें वे सम्पूर्ण सुख एवं ऐश्वर्या से सम्पन्न हों।

श्री भगवती देवताओं को ईप्सित वरदान देकर अन्तर्धान हो गयी। इस चरित्र मे मेधा ऋषि ने इन्द्रादि देवगण के राज्याधिकार का अपहरण आत्मशक्ति द्वारा उनके दुखों का निराकरण तथा पुनः स्वराज्य प्राप्ति का वर्णन करके सुरथ राजा के शोक मोह के निवारण के लिये उसी आत्मशक्ति की भक्ति का उपदेश किया है।

<u>उत्तम चरित्र</u> – चिति शक्ति की रजः प्रधान ब्राहमी शक्ति को सरस्वती कहते है। जो प्रधानतया जगत की उत्पत्ति और उसमें ज्ञान का संचार करती है। चिति शक्ति के रजः प्रधान इस सरस्वती स्वरूप की उत्पत्ति एवं पराकम प्रभूति की कथा दुर्गासप्तशती के उत्तम चरित्र के रूप में मार्कण्डेय पुराण मे वर्णित है। मध्यम चरित्र में मोह का कारण कर्म फलासक्त देवों द्वारा दिखाया जाकर उत्तम चरित्र में परानिष्ठा ज्ञान को बाधक आत्ममोहन अंहकारादि के निराकरण का वर्णन किया गया है। यथा –

प्राचीनकाल में शुम्भ एवं निशुम्भ नामक दो महापराकमी असुर हुये उन्होंने इन्द्र का त्रैलोक्य का राज्य और यज्ञों का भाग छीन लिया। वे दोनों ही सूर्य, चन्द्र कुबेर, यम, वरूण, पवन एवं अग्नि के अधिकारों के अधिपति बन बैठे और उन्होंने देवगण को स्वर्ग से निकाल दिया। तब सशोक अमर्त्य मर्त्यलोक में आये। बारम्बार दुःसह दुख से दयनीय दशा को प्राप्त त्रिदेशों को दर्पादि दुदन्ति

दानवों के नितान्त दमन का कार्य अनिवार्य प्रतीत हुआ और वे हिमालय पर जाकर दयार्दहृदया श्री दुर्गादेवी के पादप की दिव्य ज्ञानमयी वन्दना करने लगें। श्रीभगवती (महासरस्वती) अपने वचनानुसार पर्वत पर गंगाजी के किनारे प्रकट हुई और उन्होंने देवताओं से पूछा –

'साब्रवीत्तान् सुरान, सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भभूताऽब्रवीच्छिवा।।
स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समस्तैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ।। (दुर्गा ५. ८५-८६)

अर्थात 'तुम सब किसकी स्तुति कर रहे हो ? उनके इतना कहते ही उनके शरीर से निकलकर शिवा कहने लगी – ये शुम्भ निशुम्भ से रण में समस्त निरस्तशासन पाकशासनादि मेरी स्तुति कर रहें हैं

पार्वती के शरीर से अम्बिका उत्पन्न हुई, अतः ये कौशिकी नाम से प्रसिद्ध है और भगवती पार्वती के शरीर से शिवा को निकल जाने पर उनका वर्ण कृष्ण हो गया, अतः ये कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमाद्रि पर रहने लगीं। तदनन्तर परम सुन्दरी अम्बिका के शुम्भ निशुम्भ के भृत्य चण्ड मुण्ड ने देखा और उन दोनो के शुम्भ से जाकर उनके अतुल सौन्दर्य की प्रंशसा की उसने अपने भृत्यो की बात सुनकर सुग्रीव नामक असुर को अम्बिका को ले जाने के लियें भेजा। सुग्रीव ने भगवती के पास पहुँचकर शुम्भ निशुम्भ से बलैश्वर्य की बड़ी प्रंशसा की और उससे परिग्रह की बात कही।

भगवती ने उत्तर दिया कि जो मुझे युद्ध में परास्त करके मेरे बलदर्प को नष्ट करेगा, उसी को मै पतिरूप में स्वीकार करूँगीं, यही मेरी अटल प्रतिज्ञा हैं। सुग्रीव ने शुम्भ निशुम्भ के पास वापस जाकर भगवती अम्बिका की प्रतिज्ञा

सुनाई। असुरेन्द्रों ने कुपित होकर धूम्रलोचन नाम असुर को भेजा। भगवती ने धूम्रलोचन को अपने अहंकार से ही भस्म कर दिया। अथ च भगवती अम्बिका तथा उनके वाहन सिंह ने असुर सेना का विनाश किया। तदनन्तर असुरराज शुम्भ ने चण्ड मुण्ड नामक दो असुरों को बडी सेना के साथ भगवती कौशिकी को पकड़ लाने अथवा मार डालने के लिये भेजा। वे सब हिमालय पर जाकर भगवती को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। तब अम्बिका ने शत्रुओं पर अत्यन्त कोप किया और उनके ललाट से एक भयानक काली देवी प्रकट हुई उन्होने असुर सेना का विनाश किया और चण्ड मुण्ड का सिर काटकर अम्बिका के पास लें गयी। इसी कारण उनका नाम चामुण्डा पडा।

चण्ड मुण्ड के वध का समाचार पाकर शुम्भ निशुम्भ ने सात सेनानायकों के नेतृत्व में एक विशाल सेना भगवती से युद्व करने के लिये भेजी उस समय ब्रम्हा विष्णु, महेश, इन्द्र, महावराह, नृसिंह एवं स्वामिकार्तिक, इन सात देवों की दिव्य शक्तियाँ असुर सेना से युद्व करने के लिये आयी। तत्पश्चात भगवती अम्बिका के शरीर से अत्यन्त भयंकर शक्ति निकली और भगवती ने शुम्भ निशुम्भ के पास शिवजी को दूतरूप में भेजकर उनसे कहलाया।

सा चाह धूम्र जटिल मीशानम/ दूत त्वं गच्छ
भगवन पार्श्व शुम्भनिशुम्भयोः| ब्रूहि शुम्भ निशुम्भ च
दानावावतिगर्वितौ |ये चान्यें दानवास्तय युद्वाय
समुपस्थिताः| त्रैलोक्यानिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु :
हविभुजः |यूयं प्रयात पातालं यदि
जीवितुमिच्छ्थ। बलाबलेपादथ चेद्रवन्तों।
तदागच्छत तृत्यन्तु मच्छिवाः।

पशितेन वः ।। (दुर्गा च २४ - २६) अर्थात ' यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो देवताओं को उनके छीने हुये लोक एवं यज्ञाधिकार लौटा दो और पाताल में जाकर रहो '। बल से उन्मत्त शुम्भ निशुम्भ ने देवी की बात नहीं मानी और युद्ध स्थल मे सेना सहित उपस्थित हुये भगवती ने देवशक्तियों की सहायता से असुर सेना का संहार करना प्रारम्भ किया तथा असुरद्वय का रक्त बीज नामक एक सेनानायक भगवती एवं देव शक्तियों से युद्ध करने लगा। उसके शरीर से शोणित के जितने बिन्दु गिरते थे उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। अन्त मे देवी ने चामुण्डा को आज्ञा दी कि वह अपने मुख का विस्तार करके रक्त बीज के शरीर के रक्त को अपने मुख में ले तथा उससे उत्पन्न असुरों का भक्षण करें। चामुण्डा ने ऐसा ही किया और भगवती से युद्ध करने लगा और मारा गया। तत्पश्चात शुम्भ ने कोधित होकर कहा – 'तू दूसरों के बल का सहारा लेकर अभिमान करती है'।

श्री भगवती ने उत्तर दिया –

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मयैव मद विभूतयः।
ततः समस्तास्ता देव्यों ब्रहाणी प्रमुखा लयम्।
तस्या समस्तास्ता जग्मुरेकैवा सीत्तदाम्बिका।। (दुर्गा 10 5–6)

अर्थात 'संसार में मै एक ही हूँ। ये समस्त विभूतियॉ मेरी रूपान्तर मात्र है। ये मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मुझमें ही विलुप्त हो जायेगी'। इसके बाद सातों शक्तियॉ, जो देवी के शरीर से निकली थीं, उसी में प्रविष्ट हो गयीं, और शुम्भ भी देवी के युद्ध कौशल से मारा गया। देवगण ने हर्षित होकर अम्बिका की स्तुति की। अन्त में भगवती आद्याशक्ति भविष्य मे सात बार भक्त रक्षणार्थ

अवतार लेने की कथा तथा दुर्गाचरित्र के पाठ का महात्म्य वर्णन करके अन्तर्ध्यान हो गयी। इस प्रकार जगन्नियन्ता परमात्मा की चिति शक्ति के इन तमः प्रधान, सत्त एवं रजः प्रधान तीनों स्वरूपों का विस्तृत निरूपण महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के रूप में मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती मे किया गया है।

शक्ति का पालक एवं रक्षक रूप –

देवि प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचस्य।।

इस चराचरात्मक प्रकृति नटी के रगमंच की सुषमा नितान्त अनिवर्चनीय है, जिसको सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी त्रिविध शक्ति ने अपना रखा है। भारतीय प्राचीन दार्शनिकों ने शक्ति को संसार का कारण माना है, जो वस्तुतः तथ्य ही है। तन्त्र शास्त्र मे प्रधानतः आठ शक्तियों को मान्यता प्राप्त है – १. ब्राम्ही, २. माहेश्वरी, ३. कौमरी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. नारसिंहीं, ७. ऐन्द्री एवं ८. चामुण्डा।

इन आठ शक्तियों में प्रथम शक्ति से सृष्टि किया प्रकाशित है उसी चैतन्यांश का नाम ब्रम्हा है अर्थात जहाँ सृष्टि किया का अभिमान करें, उसे ब्रम्हा कहते हैं और चेतनाधिष्ठान से जो कियाशक्ति प्रकाशित हो, वही 'ब्रहमी' है। इसका वाहन हंस है। हंस जीव को कहते है। व्यष्टि मन समष्टि मन का अंशमात्र होने के कारण समिष्ट विराट मन है। इसी में सृष्टिकिया प्रकाशित होती है। मन का धर्म कल्पना है एवं कल्पना है एवं कल्पना शक्ति रूप है। इसी को क्रिया शक्ति कहते है, जो ब्राम्ही नामक है।

द्वितीय शक्ति माहेश्वरी है माहेश्वरी लयशक्ति को कहते है अखण्ड चैतन्य समुद्र के जिस अंश मे प्रलय भव का प्रकाश हो, एस चैतन्यांश का नाम महेश्वर है, अर्थात आत्मा जहाँ पर प्रलय किया का अभिमान करें उस स्थान में वह महेश्वर नाम से पुकारा जाता है उस चेतनाधिष्ठान से जो प्रलय रूप कियाशक्ति प्रकाशित होती है, वही माहेश्वरी शक्ति है इसका वाहन वृष (बैल) है 'वृष' शब्द का अर्थ धर्म होता है। इसके तप, शौच दया, दान – ये चार चरण है। धर्म सत्तवगुण से उत्पन्न होता है। और सत्तव शुभ्र वर्ण है। इस कारण –

'कारण गुणाः कार्यगुणनारभन्ते'।

इस नियम से धर्म भी श्वतेवर्ण ही हो सकता है, यही कारण है कि धर्म को वृष की उपाधि शास्त्राकरों ने दी है।

तृतीय शक्ति कौमारी है, जो असुरविजायिन शक्ति आसुरिक वृत्तिपुंजों का दमन करती हुई देव शक्तिसमूहों का परिचालन करे वही कौमारी शक्ति है। उससे अधिष्ठित चैतन्य शक्ति ही कुमार है इसका वाहन मयूर है मयूर सांप का भक्षण करने वाला पक्षी है। टेढ़ी चाल वाले सर्प को कहते है साधारणतः इन्द्रि वृत्ति समूह विषयाभिमुख विसर्पित भाव से वकगति से परिचालित होता है जब कोई साधक उनके विलय के लिये बल या सामर्थ्य का अर्जन करता ह तो वह मयूर धर्मी होता है आत्मा का जो अंश देव भाव समूह के आसुरी भावों का विमर्दन करता हुआ परिचालित कता है, उस अंश को कुमार एवं उस अधिष्ठान चेतना का आवलम्बन कर जो शक्ति देव भावों को परिचालित करती है, वह कौमारी शक्ति है।

चतुर्थ शक्ति वैष्णवी है। जो चैतन्य सत्ता स्थिति शक्ति से अभिमान करें वही विष्णु है उसी अधिष्ठान चैतन्य का आश्रय लेकर जो शक्ति जगत की स्थिति का पालन करें वही वैष्णवी शक्ति है। इसका वाहन गरूड़ है श्रीमदभागवत के द्वादश स्कन्द मे उल्लिखित है –

'त्रिवृद्वेदः सपुर्णस्तु यज्ञं वहित पुरूषम्'।

त्रिवृत वेदरूपी गरूड़ यज्ञपुरूष विष्णु को ढोता है इस गरूड़ पक्षी के ज्ञान और कर्म ये दो पंख है योगवशिष्ठ में उल्लिखित है। –

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम।।
केवलात कर्मणों ज्ञानान्नहि मोक्षो भिजायर्ते।
किन्तु ताभ्यां भवेन्मोक्षः। साधंन तूभांय विदुः।।

अर्थात जिस प्रकार प्रशिक्षण दोनों पखों को सहारे आकाश मे भ्रमण करने मे समर्थ होते है उसी प्रकार साधक ज्ञान एवं कर्म साधक से विष्णु के परम पद को पाते है।

जीव जब वेदोक्त कर्मकाण्ड के ज्ञानमय अनुष्ठाओं में तत्पर होता है, तब वह पक्षी होता है वेद प्रतिपादित कर्म एवं ज्ञान ही गरूड़ के दो पक्ष है इसके अतिरिक्त गरूड़ का एक और धर्म पन्नगाश्नत्व है। कर्मसमूह जितना ही ज्ञानमय होता है, उतना ही संसारसक्त देहात्म बोधरूपी कुटिल गति सर्प विलय को पाता है, यही इस गरूड़ का भक्ष्य सर्प है। मनुष्य जब इस प्रकार गरूड़ भाव का सर्वतोभावेन लाभ करता है, तब देख पाता है कि जगयापक वैष्णवी शक्ति उस पर ही आसीन है।

पंचम शक्ति वाराही है। वाराह शब्द का अर्थ एक कल्पपरिमित काल है क्योकि वर शब्द का अर्थ श्रेष्ठ अर्थात आत्मा है उसे आहत अर्थात आवृत करें उसी का नाम वराह है कालसत्ता ही सर्वप्रथम आत्मा को आवृत्त करती है इसी कारण काल शक्ति का नाम है वराह यही पृथ्वी का पाताल से दांतों द्वारा निकालता है। उस अधिष्ठान चैतन्य के आधार पर जो आधार शक्ति निर्भर है वही वाराही शक्ति है इसका कोई वाहन नही है, क्योंकि वह किसी आधार पर प्रकाशित नही होती।

षष्ठ शक्ति नारसिंही है नृसिंह स्वरूप ज्ञान का कहते है। क्योंकि आत्मस्वरूप विषयक ज्ञान का उदय होने से ही मनुष्य श्रेष्ठत्व लाभ करता है नृ शब्द का अर्थ मनुष्य तथा सिंह शब्द श्रेष्ठार्थवाचक है इसलिये नृसिंह स्वरूप ज्ञान को कहा जाता है यही हिरण्यकशिपु का मारना है हिरण्य का शब्दार्थ आत्मा है जो हिरण्य अर्थात निर्विकल्प परमात्मा को कथित अर्थात विषयाभिमान रूप से प्रकाशित करें, वही हिरण्यकशिपु है। इस असुर को एकमात्र आत्मस्वरूप विषयक यथार्थ ज्ञान ही विनय कर सकता है यह ज्ञानवान होता है यह भी किसी आधार पर प्रकाशित नही होती इसलिये यह भी वाहन विहीन है।

सप्तम शक्ति ऐन्द्री है। हस्तेन्द्रिय के अधिपति का नाम इन्द्र है इसलिये इन्द्रियाधिष्ठत चैतन्यवर्ग के अधिपति को इन्द्र कह सकते है। इनकी शक्ति को ऐन्द्री कहते है इसका वाहन गजराज ऐरावत है ईर धातु का अर्थ गति या वेग है, अतः रावान् शब्द का अर्थ गतिविशिष्ठ होता है। रावान् सम्बन्धी वस्तु को ऐरावत कहते है यह ऐरावत ऐन्द्री का वाहन है इन्द्र की शक्ति तड़ित शक्ति है इसलिये तड़ित शक्ति ही ऐन्द्री है और ऐरावत इसका परि चालक है जिस स्थूल

गमनशील पदार्थ का अवलम्बन कर तड़ित शक्ति परिचालक है उसी का नाम ऐरावत है।

अष्टम शक्ति चामुण्डा है प्रकृति का नाम चण्ड एवं निवृत्ति का नाम मुण्ड है ये आपस मे सहोदर भाई है। इनका विनाश करने वाली प्रलय शक्ति को ही चामुण्डा कहते है। चण्ड मुण्ड शब्द को अनन्तर हननार्थबोधक आ धातु से चण्ड मुण्डा शब्द बनता है और पृषोदरिदत्वात चामुण्डा बन जाता है। चामुण्डा किसी अवलम्ब को लेकर प्रकाशित नही होती, किन्तु स्वप्रकाश है इसलिये शास्त्रकारों ने इसके वाहन का कोई उल्लेख नही किया है।

सृष्टि के लिये उत्पत्ति स्थिति और प्रलय सभी आवश्यक है और उपयोग भी यह बात एक वैज्ञानिक भली भॉति जानता है परन्तु साधारण संसारी जीवन इन भिन्न भिन्न दशाओं में एकरूपता का अनुभव नही करता वह उत्पत्ति को बहुत चाहता है स्थिति भी उसे अच्छी लगती है परन्तु प्रलय से तो वह घबराता है विज्ञान चक्षु वाले लिये ब्रम्हा, विष्णु एवं महेश के उपयुक्त कार्य एक दूसरे के पूरक है विरोधी कदापि नही। शाक्त, वैष्णव एवं शैव का भेद हमारे धार्मिक भावों की सकीर्णता है अन्यथा शक्ति के एक रूप के उपासक के प्रति दूसरे रूप के उपासक के प्रति स्नेह श्रद्वा का व्यवहार करना चाहियें शक्ति सौम्य हो या उग्र हिंसक हो या अहिंसक, देश काल के अनुसार प्रत्येक अपने अपने प्रंसग मे कल्याणकारी हो सकती है और होती भी है मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत श्री दुर्गा सप्तशती मे शक्ति के पालक एवं रक्षक की स्पष्ट दृष्टि देवगणों द्वारा की गयी स्तुतियों मे प्राप्त होती है यथा –

त्वं तत्पाल्यते देवी त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थिति रूपा च पालने।।

इत्यादि (दुर्गा. १.७६) अथ च –

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा

यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।

दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये

तत्र स्थिता त्व परिपासि विश्रवम्।

विश्वेश्वरं त्वं परिपासि विश्वं

विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम।

विश्वेशवन्धा भवती भवन्ति

विश्रवाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः।।

देवी प्रसीद परिपालय नोडरिभीते –

र्नित्यं यथासुखधादधुनैव सद्यः।

पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु

उत्पात पाकजनितांश्च महोपसर्गान।।

(दुर्गा. ११. ३२-३४)

उपनिषदों मे शक्ति का क्षर अक्षर रूप

हे माँ शक्ति, तुम अक्षर परब्रम्हास्वरूपिणी, जन्मनाशराहिता, द्योतनात्मिका हो। माँ, तुम प्रणव या ओंकार या परम ब्रह्म हों, इस कारण तुम अक्षरा हों। 'अक्षरं ब्रम्हा परम्' और सदा अपने भाव मे स्थिर रहती हो, इस कारण भी तुम अक्षरा हो –

क्षरिता सच्चलतीति क्षरम। न क्षरम अक्षरं ध्रुवम, अक्षरा ध्रुवा। 'अक्षरं

वर्णनिर्माणं वर्णमप्यक्षरं विदुः। अक्षरं न क्षरं विद्यादक्षरं श्रुतिक्तषर्योः'।।

माँ तुम महाप्रलय मे निखल सृष्टि का भक्षण कर जाती हो, अर्थात् अपने मे खींच लेती हो इसलिये भी तुम अक्षरा हो।

'अशनाति गीन लोकान भुडक्ते भूतात्मत्वाद अक्षरा'।

माँ एकमात्र सत्य वस्तु तुम ही हो। तुमसे अतिरिक्त जो कुछ भी है वह असत है। निखिल वस्तुओं के ही उपचय अपचय परिणाम हो रहे है मात्र तुम ही एक भाव से एक रस से चिरकाल तक रही हो इसलिये तुम नित्या हो सन्मात्र हो जन्म नाश रहिता हो। माँ तुम सुधा अमृत रूप अखिल ज्ञानों का फल हों, देवताओं का अन्न, प्राण, आत्मा तुम्ही हों। अकारादि वर्णो में हस्व दीर्घ प्लुत रूप तीनों मात्रा से अकार उकार मकार नाम से जाग्रत स्वप्न सुषुटित के अभिमारी विश्रवचैतन्य तैजस चैतन्य प्राज्ञ चैतन्य रूप तीनो मात्रा से ऋृग युजः साम इन तीन वेद रूप तीनों मात्र से गार्ह पत्य आहवीनय दक्षिण इन तीन अग्नि रूप तीनों मात्रा से भूलोक– भुवर्लोक स्वर्लोक इन तीनों मात्र रूप से है माँ शक्ति तुम्ही विराज रही हो–

'सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता। (दुर्गा. १.७४)

ॐ = अ + उ + म। अ + उ = ओ, इसमे मकार सयुक्त करने पर ओम बनता है। ओंकार के सात अंग है – पूर्वार्द्व में अ, उ, म और उत्तराद्व मे नाद, बिन्दु कला या अंश या शक्ति शान्त या कलातीत भाग है –

'ओमकरार्द्धोऽर्द्धमात्रान्तः शान्ति निः विशेष मानसः।
(योगवसिष्ठ, निर्वाण, उत्तरखण्ड – ६१.२)

में शक्ति ही ओकाररूपिणी शब्द ब्रहम है। शब्द ब्रहम के आकार का रजोगुण ब्रहमा, उकार द्वारा सत्तवगुण विष्णु एवं मकार द्वारा तमोगुण शिव लक्षित होते है नाद सात्विक शक्ति, राजसिक ज्येष्ठा शक्ति तथा तामसिंक रौद्री शक्ति ये तीन शक्तियॉ है। बिन्दु सात्विक एवं तामसिक अंहकार समिष्ट है। सांख्य दर्शन में इसी बिन्दु के अहंकार कहा गया है।

इस बिन्दुत्रय से ब्रहमा, विष्णु एवं रूद्र है रूद्र तामसिक बिन्दु से उत्पन्न शब्द स्पर्श, रूप, रस, रस, गन्ध यह प×चतन्मात्रायें तथा उनसे उत्पन्न आकाश, वायु, जल, तेज एवं पृथ्वी से प×चभूत, ब्रहमारूप्प राजसिक बिन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध यह शक्ति प×चक तथा वाक, प्राणि, पाद, वायु एवं एपस्थ ये पाच्वभौतिक कर्मेन्द्रिय तथा विष्णुरूप सात्विक बिन्दु से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप , रस गन्ध विषयक ज्ञान तथा श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिहवा और ध्राण ये पा×चभौतिक ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्दि चित्त और अहंकार ये चारों अन्तः करण कला शब्द से कहे जाते है कलातीत इन सबमें अनुप्रविष्ट अधिष्ठान–चैतन्य है। इस तरह ओंकार से सात अंग है।

ओंकार के चतुष्पाद है – विश्रव, तेजस, प्राज्ञ तथा तुरीय अथवा अविधा–पद, विद्या– पाद, आनन्द पाद और तुरीय– पाद। स्थूल इन्द्रियों से ग्राहय पदार्थो के स्थूलपाद या अविधावाद या विश्व कहा जाता है जो पदार्थ स्थलेन्द्रिय से ग्राहय नही है परन्तु अन्तरिन्द्रिय ग्राहय होते है उनको सूक्षम पाद या विधवा पाद या तैजस कहा जाता है गुणमात्र रूप से स्थित पदार्थ बीज का आनन्द पाद या प्राज्ञ नाम से कहे जाते हैं। गुणातीत अवस्था साक्षी या तुरीय नाम से अभिहित है।

ओंकार के तीन स्थान है– जागरित स्थान, स्वप्न– स्थान एवं सुषुप्ति स्थान यहाँ स्थान शब्द के अर्थ है अभिमान के विषय। इनमें किसी प्रकार काचलन या गतागति नहीं है। जागरित स्थान, स्वप्न स्थान तथा सुषुप्ति स्थान इनमे ओंकार अभिमान करते है। किसी प्रकार चलन या गतागति कनही है। जागृतवस्था स्वप्न स्थान तथा सुषुप्ति स्थान इनमें ओंकार अभिमान करते है। जाग्रवस्था में परिदृश्यमान जगत (विश्व) तथा जगृदाभिमानी पुरूष (विराट्) प्रथम स्थान है। स्वप्नावस्था मे परिदृश्यमान जगत (तैजस) तथा स्वप्नाभिमानी पुरूष (हिरण्यगर्भ) द्वितीय स्थान है। सुषुप्ति अवस्था में अनुभूयमान अज्ञानाधिकृत आनन्द (अव्याकृत) तथा सुषृप्ति– अभिमानी (प्राज्ञ) तृतीय स्थान हैं अर्थात जीव की समष्टि एवं व्यष्टि जाग्रत, स्वप्न तथा सुष्प्ति यें तीन अवस्थायें ही शब्द ब्रम्ह रूप ओंकार के तीन स्थान है।

ओंकार प×चदेवतामय है। अथर्वशिखोपनिषद में कहा गया है। कि ओंकार ब्रम्हा, विष्णु, रूद्र, ईश्वर एवं शिव (महेश्वर) पंचम देवमय है –

'ब्रहमा विष्णुश्च रूद्रश्च ईश्वरः शिव एव च।
पच्वधा पच्वदैवत्यः प्रणवः परिपण्यते'।।

ब्राम्हणों के समस्त कर्मो में ओंकार का विनियोग अत्यावश्यक है ओंकार को जानना ही ब्राह्मणों का कर्तव्य है। ओंकार को न जानने से ब्राह्मणों के समस्त कर्म निष्फल हो जाते है। निष्फल कर्म ब्राह्मणों की शक्ति तथा तेजहीन और निष्प्रभ हो जाने के कारण ही ब्रहमणत्व से च्युत होकर ब्राहम्ण नाम के अनाधिकारी तथा अयोग्य रहकर दुख पूर्ण जीवन यापन के लिये बाध्य हो जाते है। अतएव कहा गया है कि सप्त अंग चतुष्पाद तथा स्थानत्रयविशिष्ट एवं

प×चदेवतास्वरूप ओंकार को हे माँ जो ब्राम्हण नही जानता वह कैसे ब्राम्हण हो सकता है ?

'सप्तांग च चतुष्पादं पच्चदेवतम्
ओंकार येन जानाति कथं सा ब्राहम्णों भवेत'।।

माँ तुम केवल त्रिधा मात्र स्थिता ओंकाररूपिणी ही नही हो, अर्द्धमात्रा तूरीय ब्रहम भी तुम्ही हो, अर्थात चित शक्ति परम पद भी तुम्ही हो –

'मात्रा तृतीय चिच्छक्तिरर्द्धमात्रां परं पदम्'।

नाद, बिन्दु काला और कलातीत ये सभी परमपद के अर्न्तगत हैं स्वरूप में ओंकार रूपिणी मॉ परमपद परम व्योम है।

'यस्मिन् देव अधिविश्वे निषेदुः'– निखिल देवगण इसी माँ शक्ति में ही वास करते हैं। माँ परब्रहम हैं, परन्तु तटस्थ भाव से सृष्टि–स्थिति–लयकारिणी है। सृष्टि न भसाने तक माँ अर्द्धमात्रा निगुर्ण ब्रह्म है और सृष्टि भासने के अनन्तर माँ समष्टि भाव से सगुण विश्वरूप तथा व्यष्टि भाव से जीव–जीव में आत्मा है और सृष्टि के विपर्यम काल में युग–युग में माँ अवतार रूप से प्रकट होती है।

जिसका जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है, वह नित्या है। जन्म मृत्यु–रहित वस्तु क्या है? आत्म ही है– 'न जायेत म्रियते वा कदाचित्'। शक्ति ही आत्मा है– 'आत्मा एवासि मातः'। वाह, कैसे सुन्दर सिद्धान्त है! जीव देह नहीं है, जीव आत्मा है– जीव ही शक्ति है– जीव का जन्म भी नहीं है– मृत्यु भी नहीं है। जीव! तुम्हारा शोक, मोह, रोग, मृत्यु– ये सब भ्रममात्र हैं। आत्मारूपिणी माँ शक्ति की भावना से जीव, तुम्हारे सम्पूर्ण मोह का लय अवश्य हो जाएगा।

माँ नित्या है– ब्राह्ममयी है। माँ शक्ति, तुम्हारे ब्रह्ममयी होने से स्पष्ट शब्द से तुम्हे कैसे उच्चारण किया जाएगा? अर्द्धमात्रा का स्पष्ट भाव से उच्चारण नहीं किया जा सकता। निर्गुण ब्रह्म तो धारणा का ही अतीत है, फिर उसका उच्चारण कैसे किया जाय? श्रुति कहती है –

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'।

स्वर–संयोग के बिना अनुच्चरणीय जो अर्द्धमात्रा है, वह व्यंजन वर्ण रूप से जो विराजमान है, वह तुम्हीं हो, तुम अव्यक्ता हो–

'अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः' (दुर्गा. १.७४)

माँ शक्ति, व्यक्त, अव्यक्त रूप ही तुम्हारा है। तुम्हीं सम्पूर्ण विश्व हो और सम्पूर्ण विश्व को तुमने ही धारण कर रखा है। सृष्टि, स्थिति, लय तुम्हारा विलास है। जगत् में जहाँ जो कुछ कार्य हो रहा है, माँ तुम्ही कर रही हो। विद्यारूपिणी भी तुम्ही, हो, अविधारूपिणी भी तुम्ही हो। मनुष्य को ज्ञान (आनन्द) देकर माया मुक्त तुम्ही करती हो, फिर अज्ञान देकर मोहयुक्त भी तुम्ही करती हो–

'सा विद्या परमा मुक्तहेतु भूता सनातनी।
संसारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरी'।। (दुर्गा १, ५६-५८)
'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ठो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानममोहनच्च'। (गीत)

तुम जगत की माता हो। साधारण जननी स्वचित कदाचित किञ्चित जन्म देती है, पर तुम क्षण क्षण में, पल पल मे अनन्त कोटि ब्राह्मणों का सृजन करती हो। तुम्हारा कार्य, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी करूणा के वर्णन मे कौन समर्थ है ?

देवगण एवं पितृगणों की तृप्ति हेतु स्वाहा, स्वधा, मन्त्रादि से शास्त्र विहित कर्मो का अनुष्ठान किया जाता है। परन्तु निखिल तृप्ति का आधार जगजननी मॉ अम्बिका है। यह आनन्दरूपिणी शक्ति की समग्र आनन्द की समष्टि है, जिस प्रकार जल की समष्टि समुद्र है धृत भक्षण से आयु की वृद्धि होती है। इस कारण धृत को आयु कहा जाता है– 'आयुर्वे घृतम'। अन्न भक्षण से जीवन रक्षा होने के कारण अन्न को ही जीवन कहा जाता है– 'अन्नं वै जीवनम्'। उसी प्रकार स्वाहा स्वधा मन्त्रों से देवलोक तथा पितृलोक की तृप्ति होने के कारण स्वाहा स्वधा को तृप्ति रूप जगदम्बिका कहते है।

माँ तुम स्वाहा देवताओं की तृप्तिकारी देवताओं के लिये तृप्ति रूपा होकर चिरकाल तक रहने की प्रतिज्ञा करने के कारण देव हविर्दान मन्त्ररूपा हो। तुम स्वधा पितरों की तृप्तिकारी पितृ लोक के उददेश्य मे दीपमान द्रव्यजनित तृप्ति पितदानरूप मन्त्र भी तुम्ही हो। तुम वष्टकार देवता आवाहन की जन्मरूपिणी हो। स्वरात्मिका उदात्तादि स्वरूप भी तुम हो– अथवा समस्त देवकर्म या पितृकर्म की फलरूपा स्वर्ग भी तुम हो–

'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हिवषट्कारः स्वरात्मिका'। (दुर्गा,१,७३)

माँ शक्ति, शब्दरूप से तुम प्रथमतः आत्म प्रकाश करती हो, शब्द ब्रहम भी तुम्हीं हो और शब्द ही जगत का प्राण है तथा जगत की उपादानभूत प्रकृति भी शब्द का ही कार्य है प्रकृति भी तुम्हीं हो।

'आनन्दघन सन्दोहः प्रभुः प्रकृतिरूपधृक'।

माँ तुम्हीं चैतन्यरूपिणी हो और सर्वशक्ति भी तुम्ही हो। मन्त्र समूह शब्द ही है और मन्त्र ही चैतन्यरूपी ब्रहम का प्रत्यय है। अग्नि और रूद्र एक ही है। अग्नि समस्त वस्तु के उपादान पृथक करके ध्वंस करती है और रूद्र भी विनाश का कर्ता है इस कारण रूद्र ही अग्नि है, स्वाहा महादेव पत्नी है।

सविता जगत प्रसविता की अधिष्ठात्री देवता गायत्री है और जिस समय वेदमाता गायत्री 'भूर्भवः स्वः' समेट कर स्वयं निर्गुण रहती है, तब वही सावित्री कहलाती है सावित्री ही समकाल में निर्गुणा, सगुणा, आत्मा और अवतार रूपों से लीला करती है माँ तुम आदि कारण होने से सर्वोत्कृष्टा, द्योतनशीला–प्रकाशरूपा जननी हो –

'त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा'। (दुर्गा. १.७५)

मेरी माँ शक्ति रूपिणी और सर्वशक्तिमयी है। चन्द्र, सूर्य, आकाश, समुद्र, प्रकृति सब कुछ माँ ही धारणा कर रही है। शक्तिभिन्न शिवचैतन्य तो शवमात्र है। माँ के धारण न करने पर विश्व कहाँ रह सकता है ? सर्वशक्ति माँ की सृजनशक्ति की मूर्ति है, ब्रम्हा रक्षाशक्ति की मूर्ति है विष्णु एवं लयशक्ति की मूर्ति है रूद्र शक्ति से धारण कर सृष्टि स्थिति संहार की लीला सदैव कर रही है। संहार मे भी माँ आनन्द रूपिणी ही है।

'पार्याद्वो वन्धमानः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्रया'।
(योगवसिष्ठ, नि.ए ८१.१०२)

वशिष्ठ प्रार्थना कर रहे है– प्रलय मे जगद भक्षण करके काल रात्रि स्वरूपिणी प्रसन्ना आनन्द विह्वल जो देवी नृत्य करती हुई यहाँ भैरव की अर्चना

कर रही है, कालरात्रि से वन्धमान वह कलपान्त भैरव हे भक्तवर्ग तुम्हारे विघ्नों का विनाश कर तुम्हारी रक्षा करें।

त्वयैतद्धार्यते विश्वँ त्वयैतत् सृज्यते जगत।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।।
विसृष्टौ सृष्टि रूप त्वं स्थिति रूपा च पालने।
तथा संहतिरूपानते जगतोडस्य जगन्मये'।। (दुर्गा . १, ७५-७७)

मै देह हूँ इस प्रकार की बुद्धि अविद्या कही जाती है। मै देह नही हूँ, मै चिदात्मा हूँ ऐसी बुद्वि का नाम है अविद्या से जीवन संसार में बँध जाते हैं और विद्या जीवों को माया बन्धन से मुक्त कर देती है। इस कारण जो लोग माया के बन्धन से मुक्ति चाहते है, उन्हे सर्वदा विद्या का अभ्यास करना चाहिये। यथा

'देही हमिति या बुद्धिरविद्या या प्रकीर्तिता।
नांहँ देहश्चिदात्मेति बुद्धि र्विद्येति भाष्यते।।
अविधा संस्ततृेहेतुर्विधा तस्या निवर्त्तिका।
तस्यामाद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभि' ।।
'महती विद्या परहगोचर ज्ञान रूपा तत्वमसि अहं ब्रहमास्मि
इत्यादि महावाक्य ज्ञानजन्या विद्या महाविद्या'।

श्री गुरूमुख से तत् त्व असि' तुम ही ब्रहम हो– इस महाकाव्य का श्रवण करके विचार द्वारा 'अहं ब्रहमास्मि' मै ही ब्रहम हूँ, 'सोऽ हम् मै ही वह हूँ इत्यादि महावाक्य विचार जनित ज्ञान मे जब स्थिति होती है तब महाविद्या का नाम होता है इस प्रकार ज्ञान मे स्थिति होने पर जीव का अहं सच्चिदान्नद परब्रहम मे विलीन होकर सच्चिदानन्द परब्रहम होकर ही जो स्थिति होती है, वही महाविद्या माँ शक्ति है। स्थिति ही शक्ति है।

शक्ति महाज्ञान स्वरूपा है, ब्राहमज्ञान मे स्थिति रूपा है एवं प्रपच्वज्ञान रूपा अविधा भी है –

'महती सर्वविषया मुक्तिपर्यन्तावसाना माया, अन्यत्र अन्याकारावभासिनी शक्तिर्महामाया। महती सुदृढ अनात्मेति आत्मेति बुद्धिः एवम आत्मनि अपि अनात्मेति बुद्धिर्माया महामाया। महती मूला सच्विदानन्दे अत्मनि संसारित्व रूपानर्थवभास हेतुरविद्या माया मूला अविधा।। महती ब्रहादिमोहिका माया अविद्या शक्तिर्महामाया

ब्रम्ह मे जगत दिखलाना, आत्मा में आत्मबुद्वि और आत्मा में अनात्मबुद्वि, असंसारी आत्मा को संसारी बनाना, ब्रहादि देवगणों के भी मोह में गिराना ये सब महामाया के कार्य है इसलिये कहा गया है –

'तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिदा जगत्थतेः।
महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्मते जगत'।। (दुर्गा. १.५४)

इस मोह के विषय में विस्मय नही मानना चाहिये जगत्पति श्री हरि योगत्पति श्री हरि योगनिद्रारूपा यह महामाया जगत को सम्मोहित करती है।

'ज्ञानिनामपि चेतासि देवी भगवती हिसा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति'।। (दुर्गा. १.५६)

स्वप्रकाशरूप सर्वेश्रवर्यमयी महामाया अपनी आज्ञा और निषेध लंघनकारी ज्ञानियों का चित्त भी बलपूर्वक विवेक से खींचकर मोह में गिरती है। उस समय प्रेममयी दयारूपिणी शक्ति ही 'महद्रयं वज्रमद्यतम्' उद्यत वज्र महाभंकारी रूप से दण्ड भी देती है शक्ति ही सत्तवरजस्तमः गुणों से स्थावर जंगम पूर्ण विश्व को रचती है और रचने के अनन्तर सन्तानों को छोडकर चली नही जाती है, किन्तु सदैव सब की रक्षा भी करती है। इसके आज्ञा निषेध के पालन में चेष्टा करने पर यह प्रसन्नता होकर सबकी अभीष्ट दात्री तथा मुक्ति का भी कारण होती है।

शक्ति ही ब्रम्हाविद्यारूपा है, समस्त पुरूषार्थसाधिका परमा है सनातनी नित्या है, मुक्ति का हेतु है और यही ब्रम्हा, विष्णु, महेशादि ईश्वरों की भी ईश्वरी है तथा संसार बन्धन का कारण भी यही शक्ति ही है –

'तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम।
सैषा प्रसन्नावरदा नृणां भवति मुक्तयें।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु भूता सनातनी।
संसारबन्ध हेतुश्च सेंव सर्वेश्वरेश्वरी'।। (दुर्गा१/४७-५८)

बुद्वि शक्ति का नाम मेधा है। जिस शक्ति के द्वारा सभी आत्मा रूप से अनुभूत होते है, उसी बुद्वि शक्ति को महामेधा कहते है। जगज्जनी की सर्वज्ञत्व शक्ति की महामेघा हैं। निखिल वेदो में जो कुछ है, उसका स्मरण महास्मृति है। विधाता। ब्रम्हा सृष्टि करने के समय अतीत कल्प का स्मरण करके 'यथापूर्वमकल्पयम्' अतीत कल्प में जिस प्रकार थी, उसी प्रकार की सृष्टि रचते है। जो कुछ सृष्ट हुआ है जो कुछ सृष्ट हुआ था और जो कुछ सृष्ट हो सकता है– इन सब का ज्ञान ही वेद है। वेद का यह स्मरण भी शक्ति ही है। स्मृति रूप शक्ति से व्यतिरक्त ब्रम्हा अतीत कल्प का निखिल वस्तु का स्मरण नही कर सकता।

संसार का मूल कारण है राग या आसक्ति या तृष्णा या भोगेच्छा। शक्ति के विधि निषेध पालन में सचेष्ट न रहने पर शक्ति ही महामाया रूप से जीव का विनाश करती है शक्ति ही अपने आज्ञा लंघनकारी को महामोह, महाममता देकर बार बार जनन मरण प्रवाह में डुबाती है। वह समस्त देवशक्ति रूपा सात्तिव की शक्ति है, फिर समस्त असुर शक्तिरूपा राजसी शक्ति भी है –

'महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
म्हामोहा च भवती महादेवी महासुरी'।।

शक्ति और शक्तिमान का अभेद होने के कारण शैवागम में कहा गया है– 'आनन्दध सन्दोहः प्रभुः प्रकृति रूपधृक'। आनन्दघनमूत्रि प्रभु परमेश्वर ही प्रकृति रूप भी धारण करता है। प्रकृति का गुण है सत्तव, रज, तम। सत्वगुण ज्ञान और सुख हेतु है रजोगुण रागात्मक दुख का हेतु और तमोगुण आवरक मोह या अज्ञान का हेतु है। ये तीनों जिस समय समान अवस्था में रहते है, तब प्रकृति का नाम होता है अव्यक्त।

शक्ति चैतन्यकारिणी है। चैतन्य से अतिरिक्त सब कुछ का मूल कारण या प्रकृति भी शक्ति ही है और इन तीनों गुणों को पृथक कर जगद्रूप से स्थापना करना भी शक्ति का ही कृत्य है। इस कारण शक्ति गुणत्रयाविभाविनी है। कालरात्रि मरणरात्रि कल्पान्तरात्रि जगतलय रूप रात्रि (रात्रि अभिमानिनी देवता) शक्ति ही है। महारात्रि ब्रम्हणों रात्रि चतुर्मुख ब्रम्हा भी प्रलय रात्रि मुक्तिरात्रि और मोहरात्रि ममतावर्त मोहगर्त पातिनी महामायाख्या संहारकत्री मानुषी रात्रि भी शक्ति ही है, इस कारण शकित दारूणा अनतिकमणीया दुष्परिहरा है –

> 'प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयवि भाविनी।
> कलरात्रिर्महा रात्रिर्मोहरात्रिश्च दारूणा'।। (दुर्गा. १.७७)

माँ शक्ति लक्ष्मी धनरत्नादि की अधिष्ठात्री चैतन्यरूपिणी है अर्थप्राप्ति के लिये भी जो लोग शक्ति के आज्ञा निषेध का पालन करते हुये जगजननी के शरणापन्न होते हैं उनकी अर्थकामना भी जगदम्बा पूर्ण करती है। अथार्थी भक्तों के ऊपर कृपा करना भी जगदम्बा का स्वभाव है। वही सब के हृदय में बैठकर सब को चला रही है, इस कारण से वही ईश्वरी है। वह कार्य मे घृणा रूप से हृदय में रहने के कारण कुकर्म करने में लोक लाज बाधा देती है। वह

निश्चयतालिका बुद्विरूपा चिन्मात्र बोधात्मिका अर्थात निश्चयात्मिका बुद्वि या विचारशक्ति भी है। लज्जा रूपिणी माँ शक्ति ही हमारी पाप पथ से सर्वदा रक्षा करती है। भक्त अन्नों का परिपाक कर हमें पोषण करती है हमारे अंगों को सोष्ठव प्रदान करती है। वैश्वानर अग्निरूप से पाककारिणी तथा अंगो की उपयचकारिणी शक्ति ही है।

यदृच्छा लाभ में सन्तोष भी शक्ति ही है। जिसके हृदय में शक्ति निवास है उसको फिर असन्तोष कहाँ से आयेगा। जो होना है, हम दो मंगलरूपिणी मॉ शक्ति मेरे उपकार के निमित्त ही मुझे सुख देती है। फिर भी विपत्ति देकर भी कर्मक्षय कराती है। सन्तोषरूपिणी शक्ति ही मुझे कल्याण मार्ग मे चला रही है। आनन्द रूपिणी शक्ति ही शान्ति है विषय सुख का अनुसन्धान न कर आनन्दकारिणी शक्ति की ओर देखने से ही शान्ति मिलती है। शक्ति से पृथक क्षण ध्वंसी विषय लेकर विव्रत रहने से शान्ति कैसे मिलेगी ?

आभ्यन्तर एवं बाहय दोनों में शक्ति का ही वास है – इसे विश्वास करके आज्ञापालन मे श्रद्वा करनी चाहिये। श्रद्वा पकने से ज्ञान का उदय होगा और तब तत्परतपूर्वक शक्ति का एकनिष्ठ भक्त बनकर अपने हृदय को भरित किया जा सकता है उसके बाद मेरी आत्मा की शक्ति है। इस ज्ञान का उदय होगा। इस अभेद ज्ञान से अचिर में ही शान्ति लाभ होगा –

श्रद्वावान लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय :।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिभचिरेणधिगच्छति।।

अपकारकर्ता का अपकार न करने की इच्छा का नाम क्षान्ति या क्षमा है – यह सहन शक्ति है। जो सर्वदा भीतर – बाहर प्रणाम करते करते शक्ति स्मरण का

अभ्यास करता है– सब कुछ सहन करने की शक्ति रूप से प्रकट होकर जगन्माता ही उसे कृतार्थ करती है। वही क्षान्ति भी है–

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिबोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्तवं शान्तिः क्षान्तिरेव चा।। (दुर्गा. १.८०)

प्रतिदिन प्रथमतः इसी अमूर्त शक्ति का स्मरण करना अत्यावश्यक है, तदनन्तर शक्ति के मूर्तरूप का स्मरण करना चाहिये। मूर्तरूप किसी भी रूप से हृदय में ले आकर शक्ति के निराकार भाव का चिन्तन करना होता है–

'साकारेण महादेवि निराकारं च भावयेत्'।

माँ शक्ति अपने दश हाथों मे दश आयुध (अस्त्र) लेकर दशभुजा महाकाली रूप से विराजमान होती है। जगजननी, तुम खड़गिनी– खड़गधारिणी, शूलिनी–शूलधारिणी, घोरा–तुम हाथ से छिन्न मुण्ड धारण करके अतिभंयकारी, गदिनी गदाधारिणी, चक्रिणी चक्रधरिणी, शंखधारिणी, चापिनी– धनुधारिणी, बाणधारिणी, लौक–कण्टकावृत क्रमोन्नत यष्टिधारिणी तथा लौह मुदग्रधारिणी हो ये सब अस्त्र तुम्हारे दश हाथों में शोभा पा रहें है। असुर नाशिनी, अभक्त भंयकर शक्ति के दश हाथों में यद्यपि दश प्रहरण है, श्रवण युगल में मृत– शिशु युगल शोभा पाते है, कटि देश बालको के हाथों मे सुशोभित हो रहा है, सद्यश्छिन्न नरमुण्डल एक हाथ में देखा जाता है– यह मूर्ति यद्यपि अभक्त के लिये घोरा है, भयंकारी है, तथापि भक्त देख पाता है कि जगज्जननी माँ सौम्या, प्रसन्नवदना, सुन्दरी सौम्यारा (सुन्दरी से भी अधिक सुन्दरी) और निखिल सुन्दर वस्तुओं से भी सौन्दर्यशालिनी, अत्यन्त आÐलादिका है और वह ब्रम्हा, इन्द्र प्रभृति देव गणों की भी नियन्त्री है, इसलिये अतिशय श्रेष्ठा परमेश्वरी है–

'खडगिनी शूलिनी धोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शंखनी चापिनी बाण – भुशुण्डी – परिघायुधा।।
सौम्या सौम्यतराशेष सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी'।। (दुर्गा. १.८१.-८२)

जगत् से सत् तथा असत् कितनी वस्तुयें है, उनकी संख्या कौन बता सकता है? हे आखिलामत्मिके, हे सर्वस्वरूपें ! उन सबकी जो शक्ति है, वही जब तुम हो, तो सर्वशक्ति स्वरूपा तुम्हारा स्तव किस प्रकार किया जा सकता है?

'यच्च किच्वित कवचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा' ।। (दुर्गा१,८३)

जो इस जगत का सृष्टि कर्ता है, जो इसका पालन कर्ता है और जो इसका लयकर्ता है, उन महाशक्तिधरों को भी तुम है जगजननी माँ, निद्रा से आच्छन्न करती हो, तो सीमाशून्या शक्तिशालिनी तुम्हारा सत्व करने मे किसका सामर्थ्य है – किसी का भी नही है –

''यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यति यो जगत्।
सोडपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमि हेश्वरः'।। (दुर्गा १. ८४)

जगत्पालक विष्णु, जगत्स्रष्टा ब्रम्हा तथा जगत संहारक महेश्वर को भी तुम शरीर धारण कराती हो। इस प्रकार महाशक्तिशालिनी तुम्हारा स्तव करने में इस जगत में कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात कोई नहीं हो सकता –

'विष्णु शरीर ग्रहण मीशान एव च।
कारितास्ते यातेडतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्'।। (दुर्गा. १.८५)

जब पूर्णभाव से शक्ति का स्तव करने मे असमर्थ ब्रम्हा भी येन प्रकारेण जिस किसी भाव से जिस किसी भी रूप से अपने मन की बात आद्य शक्ति को

निवेदित करके उसकी महती कृपा का लाभ कर लेते है, तो कातर हृदय से दुख दूर करने के लिये जिस किसी भाव से पुकारने पर ही जगजननी अवश्यमेव दुख दूर कर देगी। इस प्रकार सहाय रहने पर भी मनुष्य किस कारण सारी आशा त्यागकर कर निराश होकर दुखों से म्रियमाण होते है ? धैर्य के साथ विश्वास पूर्ण हृदय से पुकारते रहना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुसार कातर हृदय से जगजननी को अपने दुख सूचित करो – दुख प्रतीकार के लिये शक्ति की स्वरूप चिन्ता, शक्ति को स्वभाव की चिन्ता करके कल्पना मे भी जगदम्बिका की मूर्ति जितनी हो से, स्मरण करके और शक्ति ही सज धजकर सामने खडी है – भावना करके दुख दूर करने के लिये माँ जगदम्बा से प्रार्थना करों – इससे निश्चय ही तुम्हारी ज्वाला माला मिट जायेगी।

आद्यशक्ति जो सर्वशक्ति रूपिनी, दरिद्रदुखभयहारिणी, सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता, करूणावरूणालया, दयमानदीर्धनयना, नित्य नव नवाकरण प्रदर्शन में परिपूर्ण वारभय प्रायदयनी जगजननी है। माँ कभी सन्तान की उपेक्षा नही करती'–'नाहि माता समुपेक्षते सुतम्। वाराभयदायिनी जगदम्बा के अभय श्री पादपओं मे जिसका चित्त लग्न हो गया है, वह तो सर्वभय, सर्व व्याकुलता, सर्व द्वन्द्वों से चिरमुक्त होकर अभय पद मे सुस्थित हो गया है। परमत्व का ही नाम है – ऊँ, ब्रम्हा, आत्मा, माँ शक्ति।

करूणा करना ही जगदाधिष्ठात्री शक्ति का स्वभाव है। दुष्ट का संहार करके भी यह माँ दुष्ट के प्रति करूणा ही करती है। विद्या, मात्रा, बुद्धि, स्मृति, सम्पूर्ण दैवी शक्ति, समस्त आसुरी सम्पत् – सब कुछ यही जगजननी है। जगत में इनसे अतिरिक्त और कुछ भी नही है। जब सकल कार्यो में, सकल वाक्यों में, समस्त भावना मे इसी जगजननी की सेवा विस्मृत न कर मनुष्य जीवन बिता

सकता है, तभी वह समस्त कार्यक्षय करके माँ को लेकर ही माँ का होकर ही रहता है। यही जीव की संसार से मुक्ति है।

शक्ति का पराक्रमी एवं भक्ति स्वरूप

सृष्टि के आदिकाल से मातृशक्ति की पूजा चली आ रही है। जीवन के उदगम एवं विकास का कोई भी अंग ऐसा नही है, जो मातृभक्ति द्वारा उद्भासित न हुआ हो। वह माता के रूप में मानव की उत्पत्ति एवं संवर्द्धन के लिये सदैव आवश्यक रही है। भारतीय दर्शन की आद्याशक्ति को जगत मे प्रमुख स्थान दिया गया है। यही से माँ की पूजा का आरम्भ हुआ है आगे चलकर मातृशक्ति की आराधना शक्तिपूजा के रूप मे परिवर्तित हो गयी। शक्ति उपासना की परम्परा केवल भारत मे ही नही, प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व में हैं भारत ने तो मातृशक्ति को सर्वोपरि महत्ता दी है।

'सर्वदेवमयी देवी सर्वदेवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपा त्वां नमामि परमेश्वरीम्'।।

प्राचीन भारत की सभ्यता के केन्द्रों मोहन जोदड़ो, हडप्पा आदि स्थलों से प्राप्त मृण्मय स्त्री मूर्तियों की ही प्रधानता है, जो मातृ देवी की है। वैदिक युग में देवताओं का महत्व देवियों से अधिक जान पड़ता है। वैदिक धर्म से उषा की कल्पना देवी के रूप मे की गयी है[1]।

ऋग्वेद के वाकसूक्त[2] देवीसूक्त[3] तथा रात्रिसूक्त[4] के अन्तर्गत वाक्, पृथ्वी तथा रात्रि देवी की कल्पना की गयी है और उनकी स्तुति में मन्त्रों की रचना की गयी।

ऋ. सं. २. १८१

१. ऋ. सं. १०. १२३
२. ऋ. सं. १०. ११५

ऋग्वेद मे अदिति को चराचर की माता कहा गया है और पृथ्वी को माता मानकर पृथ्वी के मनुष्य की माता मानकर जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं है, जिसका उसे अधिष्ठात्री देवी न माना गया हो। अथर्ववेद मे विराज नामक एक देवी का उल्लेख मिलता है, जिसे तीनों लोकों की माता कहा गया है।[२] इसी वेद मे उसका तादात्म्य दिती से स्थापित किया गया है[३] और उसे स्वाहा नाम से पुकारा गया है[४]।

वैदिक वा³मय का आगे चलकर मातृशक्ति की उपासना में महत्वपूर्ण योगदान हुआ। उत्तर वैदिककालीन ग्रन्थों मे अम्बिका, उमा, दुर्गा काली आदि नामों का उल्लेख किया गया है, जो शाक्त धर्म से सम्बद्ध है।

दुर्गा काली आदि नामों का उल्लेख किया गया है जो शाक्त धर्म से सम्बद्ध है[५]। वाजसनेयि– संहिता[६] एवं तैत्तिरीय ब्राम्हण[७] मे अम्बिका को रूद्र की बहन बतलाया गया है। तैत्तिरीय– आरण्यक[८] मे उसे रूद्र की पत्नी कहा गया है। केनोपनिष्द्[९] में उमा को समस्त ब्रहम विद्या का रूप कहा गया है मुण्ड कोपनिषद[१०] मे अग्नि की सात जिहवा बतलायी गयी है– काली, कराली, मनोजवा, सुलोलित, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिगंनी और विश्वरूति शाक्त साहित्य मे सर्वप्रथम दुर्गा का नाम मिलता है, जो रूद्र पत्नी के रूप मे वर्णित है। गृहयसूत्रों मे दुर्गा, भद्रकाली एवं भवानी आदि नामों चर्चा है। ये सभी एक ही देवी दुर्गा के नाम है। शाक्त सम्प्रदाय के

---

१. ऋ. सं. १०. १२७
२. अथर्व – सं. ८. ७. २१
३. अ. सं.ण ८. ७. २२
४. अ. सं. ८.१०. ११ – १३
५. द्रष्टव्य – भारतीय भारतीय प्रतिमा किताब, ले० बृजभूषण लाल श्रीवास्तव पृ. १११
६. वाजसनेयि – सहिता – ५.५७।
७. तैत्तिरीय – ब्राम्हण – १.६.१०. ४–५।
८. तै. आ. १०.१८–१७ ।
९. केन. उप. ३.२५।
१०. मुण्ड. १.२.४ ।

महान स्वरूप का चित्रण महाभारत के दुर्गा स्त्रोत्र एवं हरिवशंपुराण के आर्या– सत्वन[२] मे प्राप्त होता है। इसके अध्ययन से विदित होता है कि देवी के इस विराट रूप मे एक और वैदिक तत्व है, तो दूसरी और वैदिकोत्तर तत्व भी विद्यमान है। आर्या, कौषीतकि और कात्यायनी नाम वैदिक परम्परा की ओर संकेत करते है तो दूसरी ओर देवी की उपासना बर्बर, शबर और पुलिन्दों द्वारा की जाती थी और उन्हे अर्पणा, नग्नशरी, पर्णशबरी भी कहा गया है, जो वैदिकोत्तर परम्परा की ओर संकेत करते है[३]।

मार्कण्डेय पुराण का देवी माहात्म्य खण्ड पौराणिक काल में देवी की महत्ता का प्रतिपादन करता है। ये देवी – स्तुतियाँ देवी की आदि, श्रेष्ठ एवं संरक्षिका शक्ति का प्रकटीकरण करती है। महाभारत के भीष्म और विराट पर्व में दो दुर्गा स्तोत्रों में देवी के पृथक अस्तित्व का प्रतिपादन किया गया है। हरिवंशपुराण मे कौशिकी नाम की इस देवी को यशोदा की पुत्री कहा गया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे भवानी, शर्वाणी, रूद्राणी तथा मृडानी इन चार नामों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में दुर्गानिवेश नामक अध्याय में शिव, अपराजित आदि देवताओं के साथ देवी के मन्दिर निर्माण की बात करते है। मदिरा और मीढुषी को एक ही मानकर डॉ0 बनर्जी उसे दुर्गा या शिवपत्नी की पर्याय बतलाते है वास्तव में दुर्गा विश्व की आधारभूत शक्ति है, यह विष्णु मे सात्त्वि की ब्रम्हा मे राजसी एवं शिव मे तामसी शक्ति के रूप मे विद्यमान रहती है। यही नही ब्रम्हा की सृष्टि शक्ति, विष्णु की पोषण शक्ति सूय की प्रकाश शक्ति अग्नि की दाहकता और वायु की प्रेरणाशक्ति के मूल मे दुर्गा की आद्या शक्ति है। इस शक्ति के अनेक नाम है। अम्बिका, दुर्गा, कात्यायनी, महिषासुरमर्दिनी नारायणी, गौरी आदि। स्कन्द पुराण में।

---

१. महा. ४. ६, २३।
२. हरि. पु. ३. ३।
३. दृष्टव्य – प्राचीन भारतीय प्रतिभा विज्ञान, ले, बृजभूषण लाल श्रीवास्तव, पृ. ११२ ।

लिये कहा। ब्रम्हा जब एक बार पुनः साधनहीन होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, तब देवी त्रिदेवों को एक विमान पर बैठाकर ब्रम्हलोक, कैलाश लोक एवं वैकुण्ठलोक मे घुमाती रहीं। त्रिदेव अत्यन्त विस्मित होकर घूमते रहे, वह जहाँ जहाँ भी गये, वहाँ वहाँ ब्रम्हा, विष्णु और महेश पहले से विराजमान थे। सम्मोहित त्रिदेव को क्षीरसागर मे करोड़ों लक्ष्मियों से भी अधिक कान्ति शालिनी श्री भुवनेश्वरी देवी के दर्शन हुये। देवी के पास जाते ही तीनों देवों का रूप परिवर्तित हो गया, अर्थात वह स्त्रीलिंग हो गये। ब्रम्हा ने कहा था –

'वैकुण्ठो ब्रम्हालोकश्च कैलासाः पर्वतोत्तमः।
सर्व तदखिलं दृष्टं नखमध्यास्थितं तु नः'[1]।

तात्पर्य यह कि स्त्रीरूप उन त्रिदेवों ने अखिल ब्रहमाण्ड को देवी के नखरूपी दर्पण में देखा और उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने शिव को नवाधार मन्त्र के साथ साथ महाकाली को प्रदान किया और ब्रम्हा को महासरस्वती तथा विष्णु को महालक्ष्मी प्रदान किया और आदेश दिया कि वे अपने अपने लोक जाकर अपने अपने कार्यो को करें। आधारशक्ति को इन तीन महाशक्तियों की उपासना का प्रवर्तन तभी से प्रचलित है। चिदभाव का आश्रय विष्णु से और सदभाव का शिव से सम्बद्व है तेजो भाव प्रधान सूर्य तथा बुद्धिभाव प्रधान गणपति एवं भगवत्शक्ति का आश्रय ग्रहण कर शक्ति उपासना का कम प्रचलित है। शक्ति का चित अंश जगत को दर्शन से सम्बद्ध है और शक्ति के सद अंश से जगत के अस्तित्व का अनुभव है तेज अंश शक्ति के प्रति आकर्षण का सहज भाव है गजपति शक्ति सद और असत का भेदक स्वरूप स्थिर करती है। शक्ति सृष्टि, स्थिति और लय करती हुयी भुक्ति और

---

[1] देवीभागवत– ३.४.१६ १

मुक्ति दोनो प्रदान करती है। विष्णु के दशावतार जगत मे प्रसिद्व है उसी प्रकार शक्ति की उपासना के कम मे काली, तारा, त्रिपुरा (षोडषी), भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, मातंगी कमला और बगलामुखी इन दश महाविद्याओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनमे से प्रथम दो को महाविद्या तीन से सात तक विद्या और आठ से दस तक अन्त की तीन देवियाँ सिद्व विद्या के नाम से जानी जाती है। दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री यह पाँच देवियाँ श्रष्टि की पाँच प्रकृति कहलाती है। आत्मरूप मे इन देवियों को क्रमशः प्राण, भूति, ध्वनि तेज और प्रभा के रूप में पहचाना जा सकता है विष्णु के चक्र से कटे सती के शरीर के कमर के ऊपर वाले अंग जहाँ जहाँ गिरे उस उस स्थान पर शक्ति के उपासक दक्षिण मार्गी कहलाते है और कमर के नीचे भाग वाले अंग जिस जिस स्थान पर गिरे, उस उस स्थान पर शक्ति के उपासक काम, मार्गी कहलाते है।

आगमशास्त्र के नीलकण्ठी, क्षेत्रकारी, हरसिद्धि, रूद्रांशदुर्गा, वनदुर्गा, अग्निदुर्गा विन्ध्यवासिनी दुर्गा तथा रूपमारी दुर्गा को दुर्गा के नौ रूपों के रूप में अभिव्यक्ति मिली है। देवी (शक्ति) की उपासना की और महत्वपूर्ण प्रथा कुमारी पूजन के रूप मे आज भी प्रचलित है – दो वर्ष की कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहणी, छः वर्ष की कालिका, सात वर्ष की शाम्भवी, आठ वर्ष की दुर्गा, नौ वर्ष की चण्डिका तथा दस वर्ष की कुमारी का पूजन सुभ्रदा के नाम से किया जाता है। सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि के लिये ब्राम्हण कन्या की पूजा यश की प्राप्ति के लिये क्षत्रिय कन्या का पूजन धन सम्पत्ति तथा श्री प्राप्त करने के लिये वैश्व कन्या का पूजन एवं पुत्र की कामना रखने वाले लोग शूद्र कन्या का पूजन करते है।

शक्ति के पराशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, कुण्डलिनीय शक्ति मातृका शक्ति रूप

शक्तित्व को समझने के लिये पहले नादज्ञान को पहचानना पड़ेगा। कुण्डलिनी मूलशक्ति है, वही विक्षुब्द होकर नाद (शब्द) का विकास करती है, जो कमशः मूलाधार (डाकिनी शक्ति), स्वाधिष्ठान (राकिनी शक्ति) आज्ञा (हाकिनी शक्ति) मणिपूरक (लाकिनी शक्ति) अनाहत (काकिनी शक्ति) विशुद्ध (शाकिनी शक्ति) से विकसति होते होते सहस्त्रसार चक्र में महाशक्ति के स्वरूप मे परिणत हो जाती है। बिन्दु का कमशः आलोप होने पर महाशक्ति का प्रादुर्भाव होता है कुण्डलिनी जब उदबुद्व होकर सुषुम्णा मे प्रवेश करती, तभी साधक उपासना का अधिकारी हो सकता है शक्ति की उपासना के क्रम में बीज मन्त्र, चक्र, मन्त्र, दीक्षा, गुरू, अर्ध, भूत, द्रव्यशुद्धि, चित्तशुद्धि, मातृका, पीठ, न्यास, मुद्रा तथा प्राणप्रतिष्ठा का विस्तृत विवेचन उपलब्ध हो जाता है।

वैदिक काल से पौराणिक काल तक शक्ति की उपासना में ज्ञान तत्व की प्रबलता है। बाममार्गी उपासक जो शिव और शक्ति मे अभेद देखते थे, वह कौल (कौलिक, वाम, चीन, सिद्वान्ती तथा शाबर) चको तथा प×चमकारों (मद्य, मांस? मीन मुद्रा और मैथुन) से सिद्धियाँ प्राप्त करते थे सर्वप्रथम परद्रव्य परस्त्री के अपवाद से रहित ब्राम्हण ही वाममार्ग की उपासना के उचित अधिकारी समझे जाते थे परन्तु ऐसी बात नही है। शक्ति की उपासना के कम मे जागतिक प्राणी के काम कोध, अभिमान, मोह इत्यादि आन्तरिक और ब्राहम दोषों से दूर रहना पड़ता है। वह इसलिये कि यथार्थ शक्ति देवी शक्ति ही है जिसका कभी निलय नही होता, वह प्रत्येक युग में अवतार लेती है और साधुओं की रक्षा तथा दुष्टो का संहार करती है –

'साधूनां रक्षणं कार्य हन्तव्या येप्यसाधवः।
वेदसरंक्षणं कार्यभवतारैरनेकशः।।
युगे युगे तानेवाहमवतारान विभर्मि च'।।

(देवी भागवत)

जगजननी जगदम्बा की अहैतुकी कृपा के बिना जीव की गति सम्भव नही है। शक्ति तत्व नित्य शुद्व, बुद्व और मुक्त है। उसको किसी बन्धन से बांधा नहीं जा सकता। वह निराकार, निर्विकार और अपने पुत्रों पर दयाभाव रखने वाला है। शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नायमात्मा बल हीने न लभ्यः' अर्थात जो शक्तिहीन है वह न तो स्वंय अपनी रक्षा करने मे समर्थ है और न ही उसके परमात्मा की प्राप्ति होती है। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत श्री दुर्गा सप्तशती के कुछ पद्यों के यहाँ शक्ति पराकम के रूप मे उदधृत करना अप्रसांगिक नही होगा –

गर्ज गर्ज क्षंण मूढ यावत्पिबाम्याहम्
मया त्वयि हतेडत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।। (दुर्गा. ३.३८)
किं वर्णयाम तब रूपममचिन्त्येमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवादभुतानि
सर्वेषु देव्यसुर देवगणादि केषु ।। (दुर्गा. ४.६)
दृष्टवा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल
मुद्यच्छशांक सदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तक दर्शनेन।।
देवि प्रसाद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि को पवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत
नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ।। (दुर्गा. ४.१३.१४)
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यप्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान प्रयान्तु रिपवोडपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेस्वपि तेडिप साध्वी।।

खडगप्रभानि कर विस्फुर णैस्तथोग्रैः।
शूलग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड –
योग्याननं तब विलोकयतां तदेतत।।
दुर्वृत्तवृत्तशमन तव देवि शीलं
रूपं तथैध्तदविचिन्त्य मतुल्यमन्यैः।
वीर्य च हन्त हृत देव पराक्मा॰ णां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम।।
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभय कार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वयेव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि।। (दुर्गा. ४. १७-२२)

समस्त ग्रह तारा राजि विराजित, दिवाकर – निराकार – प्रोद्धासित, सिंहव्याघ्रदिवन्यमृगनिभदित, उत्तुड हिमाल यादिमहीधर विधारित, तरंगमालाडड कुलानेक पयोधिसमाकलित, सर्वागीण प्राकृतिक सुषमाविलासित यह अनन्त अपार आगण्य ब्रम्हाण्डपिण्डरूप चित्र विचित्र जगत जिनसे उत्पन्न तथा पालित होकर अन्त में जिनमें समालीन हो जाता है, वे ही अतर्क्य, महिमशालिनी, गुणत्रयाविभाविनी, भक्तजननी, वराभयदाभिनी श्री शक्ति देवी है।

गाणपत्यों के जो मोदकधारी श्री गणपति है शैवों के जो नन्दिविहारी पिनाकधारी श्री सदासिव है सौरों के जो मरीचिमाली, गुणगणशाली श्री सविता है, वैष्णव के जो मन्मथ मोहन त्रिलोकाजिष्णु श्री विष्णु है वे ही शाक्तों की सौम्या, सौम्यतरा, **'अशेष सौम्यभ्यस्तवति सुन्दरी'**, परा, परांणं परमा, त्रिलोकपरमेश्वरी श्री शक्ति देवी है।

वेदों के **'कस्मे देवाय हविषा विधेम'** आदि अनेक मन्त्रों मे पुल्लिंग शब्द द्वारा तथा वेदान्तो के **'यते का इमानि भूतानि जायन्ते .... तद्विजिज्ञासस्व, तदब्रम्हा'** आदि वाक्यों मे नपुंसकलिंग शब्दो का जिस परम तथा चरम तत्व का प्रतिपादन किया गया है। वहीं शाक्तों की स्त्रीलिंग शब्द सूचित शक्ति देवी है। भेद भाषा तथा व्याकरण के व्यवहार मात्र का है और परमार्थ दृष्टि से पूर्ण अभेद है।

शक्ति मे ही समस्त जगत् अवस्थित है अथवा यह कह सकते है कि इस संसार की आधार शक्ति है, **'आधारभूता जगतस्त्वमेका', विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम', 'त्वयैतद्धार्यतें विश्वम्'** (मार्कण्डेयपुराण) वेदोक्त **'तस्मिन ह तस्थुर्भवनानि विश्वा'** तथा गीतोक्त **'त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्'** वाक्यो की सदृशता ध्यान देने योग्य है।

परिच्छिन्न मानव बुद्वि अपरिच्छिन्न शक्ति की महत्ता ही धारणा नही कर सकती। शक्ति का सर्वागीण चिन्तना मनुष्य के विचार से परे है अतएव वे अचिन्त्य है **'किं वर्णयामि तव रूपमचिन्त्यमेतत्' 'या मुक्ति हेतु रविचिन्त्य महाव्रता त्वम्'** (मार्क0 पु0) गीता से 'सर्वत्रणमचिन्त्यच्च' वचन का सादृश्य स्पष्ट है।

यह त्रिगुणमय विश्व शक्ति में इस प्रकार विराजमान है, जिस प्रकार महाब्धि मे मछली। तात्विक विचार से जलराशि और मत्स्य में द्रष्टा के लिए द्वेतभाव है हीए परन्तु विशेष विवक्षा न होने पर द्रष्टा 'मै केवल एक समुद्र देख रहा हूँ, ऐसा कहे तो अद्वैत भाव होता है। परमात्मरूप आधार मे निहित गुणत्रयजात जगत के विषय मे भी द्वैत और अद्वैत कल्पना भेद से उपयुक्त है।

जड़ जगतकल्पादि मे परमेश्वर की शरीर रूप प्रकृति से उत्पन्न होकर कल्पान्त में फिर वही समा जाता हैं।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुन्स्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।

जिस प्रकार जीवात्मा ज्ञान गुण के बल से शरीर में व्याप्त है उसी प्रकार महेश्वर अपनी माया से समस्त प्राकृतिक जगत में व्याप्त है न केवल जड जगत में ही अपितु चेतन जीव में भी 'यस्यात्मा शरीरम्' (शतपथ) इसी विचारधारा को दृष्टि में रखकर शक्ति को जगन्मूर्ति कहा गया है– 'नित्यैव सा जगन्मूर्तिः। गीतोक्त विश्वेश्वर विश्वरूप भी इस बात का समर्थ है।

शक्ति सर्वत्र व्यापक है। सभी प्राकृतिक पृथिव्यादि पदार्थ उनके शरीर है अतएव शरीर शरीरी के व्यवहारिक अभेद को स्वीकार करके शक्ति का जगत से तादात्म्य सम्बन्ध स्थान स्थान पर उपवर्णित है। इसी अभेद के अनुसार प्रकृत्युत्पन्न विश्व का मूल कारण शक्ति को ही कहा जाता है। वस्तुतः शक्ति देवी की शक्ति ही जगत का मूल हेतु प्रतिपादित हुई है जीवात्मा की सत्ता से अनुप्राणित शरीर से जिस प्रकार केश नखों की उत्पत्ति सिद्ध है और व्यवहार मे जिस प्रकार देवदन्त जीवात्मा से केशादि की उत्पत्ति कही सुनी जाती है, उसी प्रकार श्री शक्ति देव्यनुप्राणित प्रधान तत्व से उत्पद्यमान जगत की सृष्टि भी शक्ति मे ही उपचारित होती है, अतएव कहा गया है –

'विश्वस्य बीज परमासि माया' यच्चापि **सर्वभूतानां बींज तदहमर्जुन'** तथा **'बीज मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्'** ये दोनों वाक्य भी भगवद तत्वे से सृष्टि की उत्पत्ति सादृश्य मे विचारणीय है। विश्व की त्रिविध सृष्टि, स्थिति, प्रलय व्यापार इन्ही परमा देवी शक्ति से ही होता है।

'विसृष्टौ सृष्टिरूपां त्वं स्थिति रूपा च पालनें।
तथा संहतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये' ।। (दुर्गा. १.७७)

ऐसा ही भाव गीता के 'अहमादिश्च मध्यच्च भूतानमान्त एवं च' इस वाक्य मे स्पष्ट है। सप्तशती के **'देव्या यया तत मिदं जगदात्मशकत्या** और गीता के **'व्याततं विश्वमनन्तरूप'** इन दोनों वाक्यों की समानता हृदयगम करने योग्य है।

जड़ जगत का उपादान अव्याकृता प्रकृति है और इसी को क्षर पुरूष कहते है किन्तु शक्ति अवकृता प्रकृति है जो अक्षरा कहलाती है अव्याकृता जननी प्रकृति अर्थात शक्ति देवी के किसी अंश मे जगद्वयापार होता रहता है। जितना जगत है उतनी ही शक्ति है ऐसा नही है शक्ति से कहीं अधिक महीयसी है– **'सर्वाश्रयाखिल मिदं जगदंश भूतमव्याकृता हि परमा प्रकृति सत्वमान्या'**। यही भाव **'अतो ज्यायाश्च पुरूषः'** इस वैदिक मन्त्र मे तथा गीत के **'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'** इस वाक्य मे विशद है शक्ति के एक एक रोम में जीव राशि के ब्रहमाण्ड इस प्रकार भ्रमण कर रहे है, जिस प्रकार एक विशाल वातायन मे होकर अगण्य परमाणु पुंज आ जा रहे हों।

शक्ति भूयसी विभूति का वर्णन दशशत शेषनाग अहर्निश प्रयत्न करने पर भी नही कर सकते। फिर भी गीता में श्री भगवान ने अपनी अनन्त विभूतियों को जिस प्रकार दिग्दर्शन मात्र कराया है –

कीर्तिः श्रीर्वाक च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।
बृहत्सम्भ तथा साम्नां गायत्री छन्दसाम्यहम्।

उसी प्रकार सप्तशती मे शक्तिदेवी की विभूतियों का कुछ परिचय दिया गया है। यथा –

'त्वं श्रीस्तवमीश्वरी त्वं ह्रीस्तवं बुद्धिर्बोधलक्षणा'।
'त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा'।
'या श्री 'स्वयं सुकृतिनां भवनेषु ....' ।
'या देवी सर्वभूतेषू स्मृतिरूपेण संस्थिता'। इत्यादि।

ये भक्तकल्याण कारिणी शक्ति ही संसार का शासन कर रही है, इसलिये इनको विश्वेश्वरी कहा गया है– **'त्वमीश्वरी देवि चरा– चरस्य', 'प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वम्'**। श्रीमदगवदगीता के श्रीकृष्णचन्द्र श्री विश्वेश्वर है– **'नान्तं न मध्यं न पुनस्तवार्दि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप'**।

गर्भस्थ डिम्ब के चरण चालन से जिस प्रकार जननी कुपित नही होती उसी प्रकार भक्तों को अज्ञातापराधो से जगजननी भी अप्रसन्न नही होती है, परन्तु जब सृष्टि चक्र मे बाधा उत्पन्न करने वाले पाप दुर्दान्त दैत्यादि द्वारा अनुष्ठित होते है, तब तो जगद्व्यापार – निर्वाह के सौकर्यार्थ श्री शक्तिदेवी अवतीर्ण होती हैं तथा धर्म संस्थापन करती है –

'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्याति।
तदा तदाऽवतीर्याहं कारिष्याम्य रिसंक्षय म्'।।

इस शक्ति प्रतिज्ञा के समान श्री कृष्ण प्रतिज्ञा की स्मरणीय है –

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'।।

इसी विषय में श्री दुर्गासप्तशती के –

'देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके या नित्या ऽप्याभिधीयते'।।

इस वचन से श्रीमदभगवदगीता के –

'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया'।।

की तुलना करेगें तो अवतारवाद स्पष्ट दिखायी देगा। जिस प्रकार नारायण भगवान के राम कृष्णादि अनेकों अवतार होते है उसी प्रकार शक्ति देवी के भी नन्दा, दुर्गा, वैष्णवी, योगमाया आदि अनेकों अवतार होते है भगवान गोविन्द के जिस प्रकार स्वजन मनोनयनवर्द्धन अभिराम एवं असुर भंयकर दुर्दश्य द्विविद रूप होते हैं, उसी प्रकार जगदम्बिका शक्ति के भी सौम्य तथा असौम्य रूप होते है।

'दष्ट्राकरालानि च ते मुखानि'

द्वारा उपवर्णित कृष्ण तथा 'दंष्ट्राकरालवदने' द्वारा संस्तुता शक्ति के भयंकर रूप की समानता जिस प्रकार स्पष्ट है उसी प्रकार निम्नलिखित वचनों से उनके दर्शनीयतम रूपों का विवेचन होते है।

श्री कृष्ण – 'अनेकदिव्या[illegible]रणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपन्'।।

श्री शक्ति – 'दिव्यस्रगम्बरालेपरत्ना भरणभूषिता।
धनुः शलेषुचर्मासिशङ्. चक्रगदाधरा।।
सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरः किन्नरोरगैः।
उपहतोरूबलिपिःस्तयमानेदमब्रबीत्'।। (श्रीमदभागवत)

सकाम भक्तों द्वारा स्तुत एवं सम्पूजित श्री शक्ति देवी ऐहिक तथा आमुष्मिक भोग देती है और मुक्ति कामको को ऐसा पद देती है जहॉ से पुनरावृत्ति नही होती है शास्त्र की उक्ति है –

'स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्गन्धधूपादि भिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा शुभाम्'।।
'स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते'।

श्री शक्ति के अवतार–चरित्रों के माहात्म्य के श्रवण से आरोग्यलाभ होता है।

'श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति'।

एवं चरित्रों के पाठ से सर्वांगीण कल्याण की प्राप्ति होती है–

'एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते सः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिस्याम्य संशमय्।।
सर्वाबाधासु धोरासु वेदनाऽभ्यर्दितोपि वा।
स्तरन्ततैतच्चरितं नरोमुच्चेत संकटात्।। (दुर्गा,१२.२,२७)

द्वितीय अध्याय

श्रीमद् देवी भागवत महापुराण का परिचय एवं उसमें प्रतिपादित शक्तिस्वरूप एवं शाक्त सिद्धान्त

1. श्रीमद् देवी भागवत महापुराण का समय, विषय, रचना का उद्देश्य।
2. देवी भागवत में शक्ति स्वरूप सगुण एवं निर्गुण शक्ति, शक्ति के सृष्टि स्थित प्रलयकाल रूप, शक्ति का रक्षक एवं पालक स्वरूप, शक्ति का महत्व।
3. शक्ति की व्यापकता, शक्ति का विराट स्वरूप, शक्ति और ब्रह्म में भेदाभेद, शक्ति का दुर्गा रूप, दुर्गा की शक्तियाँ।
4. शक्ति के ब्रम्ह माया आदि स्वरूप, शक्ति के अवतारों का दार्शनिक विवेचन

द्वितीय अध्याय
श्रीमद्देवीभागवत् महापुराण का परिचय
एवं उसमें प्रतिपादित शक्ति स्वरूप तथा शाक्त-सिद्धान्त

श्रीमद्देवीभागवत् महापुराण, समय, विषय, रचना का उद्देश्य :-

प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थों में देवीभागवत् का उल्लेख यद्यपि प्राप्त नहीं होता, तथापि इसकी प्रामाणिकता कहीं से भी संदिग्ध नहीं मानी जानी चाहिए; क्योंकि शाक्त-सम्प्रदा में इसकी अत्यन्त प्रामाणिकता तथा महती प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर होती है। भास्कर राम भारतीय दीक्षित प्रभृति आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में अनेकत्र इस पुराण के वचनों को उद्धृत किया ह।[1]। आधुनिक काल में महामहोपाध्याय पंचानन भट्टाचार्य जी ने अपने ब्रह्मसूत्र-शक्ति भाष्य में भी इस पुराण के वचनों से उद्धृत करते हुए विशद् विचार किये हैं।

श्रीमद्भावगवत महापुराण के प्रख्यात टीकासार श्रीधर स्वामी से पहले ही यह पुराण विद्वत्समाज में सुविख्यात था, जो कि स्वामी जी के **"अतएव भागवत् नाम अन्यदित्ययि नाश नीयङ्कम्"** (श्रीमद्भावगत्-१,१.१ की टीका) इस वाक्य से ज्ञात होता है। पद्मपुराण में भी इस पुराण का उल्लेख प्राप्त होता है; परन्तु वहाँ पर इसको उप-पुराण माना गया है।[2]

देवीभागवत् से बहुत प्राचीन भी नहीं माना जा सकता; क्योंकि निबन्धकारों ने भागवत् के नाम से जिन श्लोकों को उद्धृत किया है, उनमें से कोई भी देवीभागवत में नहीं मिलता। वे भागवत नाम से श्रीमद्भागवत् महापुराण ही समझत

---

१. दृष्टव्य - 'ललितासहस्रनाम' का भाष्य इत्यादि
२. द्रष्टव्य - डा० हाजरा द्वारा प्रणीत 'स्टडीज इन द उपपुराणाज', भाग-२ पृष्ठ संख्या - ३४५-३५५।

थे, इसमें कोई संशय नहीं है। प्राचीन निबन्धकारों ने कहीं भी देवीभागवत नाम का उल्लेख तक नहीं किया है। देवीभागवत के नवम स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में दान-विवरण के उपलब्ध रहने पर भी बल्लालसेन ने दानसागर में देवीभागवत का कोई उल्लेख नहीं किया है। राधा नाम का स्पष्टतया उल्लेख देवीभागवत में है, श्रीमद्भागवत में नहीं। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इस पुराण की पूर्व-सीमा ६५० ई० से प्राचीन नहीं हो सकती।

यद्यपि देवीभागवत से श्रीधर स्वामी को प्राचीन मानना उचित है, अतः यह पुराण १२०० ई० से बाद का भी नहीं हो सकता। रचनाकाल के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार कर डॉ. हाजरा ने कहा है कि इसका रचनाकाल ११-१२ शती है।[1]

कुछ विद्वानों ने इस पुराण का रचनाकाल ६०० से १३५० ई० के बीच माना है। टी०एन० रामचन्द्रन का कहना है कि यह पुराण ईसा की षष्ठ शताब्दी के बाद का नहीं हो सकता। डॉ० हाजरा ने विस्तारपूर्वक विचार करने के उपरान्त यह प्रतिपादित किया है कि इस मत का आधार युक्ति युक्त नहीं है।

इस पुराण की रचना बंगाल में हुई थी - यह बहुसंख्यक विद्वानों का मत है। इसकी भाषा में कहीं-कहीं पर बंगला भाषा-निधि की स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है। जैसा कि डॉ० हाजरा ने अनेकों स्पष्ट उदाहरण में 'पुङ्खी' शब्द का प्रयोग किया गया है (३,५,२६)। यह असंस्कृत शब्द है। आज भी यह शब्द पूर्व-बंगाल में इस अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनेकों विद्वानों का यह मान्यता है कि यह पुराण बंगाल से भिन्न किसी अन्य प्रान्त में रचित हुआ था। इसके अनेकों हस्तलेख बंगाल से इतर अन्य प्रान्तों में प्राप्त होते हैं।[2]

---

१. द्रष्टव्य - स्टडीज इन द उपपराणाज, भाग -२ में देवीभागवत शीर्षक प्रकरण।
२. द्रष्टव्य - स्टडीज इन द उपपराणाज, भाग -२ में देवीभागवत शीर्षक प्रकरण।

इस पुराण में निरूपित नवरात्र-व्रत बंगाल प्रान्त में अप्रचलित ही है। देवीभागवत् को ही भागवत् मानने वाले निबन्धकारों में कोई भी बंगाल का नहीं दिखाई देता।

सम्भवतः इस पुराण की रचना काशी-क्षेत्र में हुई थी; क्योंकि इसमें सभी क्षेत्रों में काशी की श्रेष्ठता मानी गयी है, जो **'सर्व-क्षेत्राणि काश्यां सन्ति'** (७,३८,७२) इस देवीभागवत् के वाक्य से ज्ञापित होता है। उपर्युक्त तथ्यों तथा अन्यान्य सम्बन्धित विषयों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि देवीभागवत् के लेखक मूलतः बंगीय स्मार्त हैं, परन्तु उन्होंने इसका लेखन सम्भवतः काशी-क्षेत्र में ही किया था।

देवीभागवत् एवं श्रीमद्भागवत् - इन दो ग्रन्थों के एक नाम में आकार-प्रकार तथा प्रतिपाद्य विषय की एकता ही कारण है। दोनों में बारह स्कन्ध, अठारह हजार श्लोक तथा अध्यायों की संख्या भी प्रायः एक ही है। देवीभागवत् में तीन सौ अठारह अध्याय हैं तथा श्रीमद्भागवत् में तीन सौ पैंतीस। दोनों में सच्चिदानन्द, एक अद्वैत तत्व का निरूपण शक्ति और शक्तिमान् के रूप में हुआ है। जिस प्रकार देवीभागवत् में भगवती जगज्जननी ने सभी शास्त्रों का सार 'सर्वं खल्विदमेकहं नान्यदस्ति सनातनम्' इस आधे श्लोक में कह दिया है, उसी प्रकार से श्रीमद्भागवत् में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है -

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।
(श्रीमद्भागवत् - २,६,३२)

दूसरी बात यह है कि ये दोनों भागवत् वेद तथा वेदान्त के सार ग्रन्थ हैं। इसका स्पष्टतया उल्लेख इन पुराणों में ही किया गया है। इसलिए एक-दूसरे के भेदक न होकर सर्वथा पूरक ही हैं। इन्हीं कारणों से इन दोनों के नामकरण में भागवत् पद का प्रयोग किया गया है।

'भगवत्या इदं भागवतम्' इस निर्वचन के आधार पर इस पुराण के नामकरण में भागवत् पद का प्रयोग किया गया है। भवगती जगज्जननी ही इस पुराण की अधिष्ठात्री हैं, इसीलिए इसको 'देवीभागवत्' के नाम से जाना जाता है। इसका अपर अभिधान 'सती-पुराण' भी है। भगवती दुर्गा से सम्बन्धित होने के कारण इसका एक अभिधान दौर्ग-पुराण भी प्रचलित है। जैसा कि देवीभागवत् (११,१४,३८) में कहा भी गया है - **'दौर्ग मेतत्पुराणम्'।**

उसी भगवती आद्या शक्ति के वाग्बीज-ऐं, मायाबीज-ह्रीं तथा कामबीज-क्लीं के जप के महत्व का सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित के रूप में प्रतिपादन इस पुराण में किया गया है। प्रत्येक चरित में मुख्य रूप से शक्तितत्व का सम्बन्ध है। शक्ति की सत्ता से सभी सत्तावान् तथा चेतनावान् हैं। इस बात की सम्पुष्टि कथाओं के माध्यम से की गयी है। एक ही शक्ति नाना रूपों में क्यों और कैसे प्रकट होती है - इसका निरूपण भी इस पुराण का प्रतिपाद्य विषय है।

इस देवीभागवत् की भाषा भी अत्यन्त सरल तथा सुबोध है। यद्यपि उपनिषदों के तत्व इसमें निहित हैं, तथापि इसकी भाषा इतनी प्राञ्जल है कि भगवती देवी के द्वारा उपदिष्ट गीता के अध्ययन में किसी भी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

इसमें बारह स्कन्ध, तीन सौ अठारह अध्याय एवं अठारह हजार श्लोक हैं। क्रमशः प्रत्येक स्कन्ध का सारांश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

देवीभागवत् के **प्रथम स्कन्ध** में कुल बीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध का प्रारम्भ बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करने वाली सबकी चेतना के रूप में विद्यमान आद्या शक्ति के स्मरण/ध्यान से होता है। तद्नन्तर सूत एवं शौनक के संवाद-रूप में इसका उपक्रम है। शौनक ऋषि ने सूत से कहा कि संसार-बन्धन से मुक्त कराने वाली भागवत् पुराण की पाठन कथा का कृपया निरूपण करें; क्योंकि मनुष्य को जन्म-मरण रूप भव-बन्धन से छुटकारा ज्ञान-प्राप्ति के बिना असम्भव है। शौनक ऋषि के आग्रह को सुनकर सूत जी ने भगवती जगज्जननी का स्मरण किया तथा इस पुराण के स्कन्ध, अध्याय एवं श्लोकों की संख्या बतलायी। तदनन्तर सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराणों के पाँच लक्षणों का उल्लेख करते हुए सर्ग के रूप में निर्गुणा, तुरीया शक्ति से महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली के आविर्भाव की चर्चा की। प्रतिसर्ग के रूप में विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र को क्रमशः पालन, उत्पादन तथा नाशरूप कार्य का प्रतिनिधि निरूपित किया। वंश से सूर्य, चन्द्र एवं हिरण्यकशिपु आदि दैत्यवंश लिये गये हैं। मन्वन्तर में स्वायम्भुव आदि मनु, उनकी काल-संख्या तथा उनके वंशों का अनुकथन ही वंशानुचरित के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार पुराण के पाँच लक्षणों के समन्वय के बाद अठारह पुराणों का संकेत नाम के आदि आधार से निम्नलिखित प्रकार से किया गया है -

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।

(देवीभागवत् १,३,२)

इसके साथ ही साथ देवीभागवत् के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में श्लोक संख्या १३ से १६ तक प्रत्येक पुराण की श्लोक-संख्याओं तथा अठारह उप-पुराणों के नामों का भी उल्लेख किया गया है।

मुख्य रूप से इस स्कन्ध में व्यास पुत्र शुकदेव की उत्पत्ति एवं जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है। सरस्वती नदी के तट पर पक्षियों को अपने पुत्र के प्रति स्नेंह प्रकट करते हुए देखकर व्यास मुनि के मन में भी परिवार बसाने की अभिलाषा जागृत हुई और वे पुत्र की अभिलाषा से मेरू पर्वत के पास गये। संयोगतः वहाँ पर नारद जी आ गये। नारद से व्यास जी ने पूछा कि किसकी उपासना से मुझे पुत्र-प्राप्ति होगी। नारद ने जगज्जननी आदिशक्ति के महत्व के बतलाते हुए उन्हीं का ध्यान करने का निर्देश दिया नारद ने कहा कि उन्हीं भगवती के पदकमल की अराधना से आपके समस्त मनोरथ पूर्ण होंगे।

प्रसङ्गतः यहाँ पर भगवान् हयग्रीव की कथा भी निरूपित है। हयग्रीव नामक दानव ने एकाक्षर मायाबीज (ह्रीं) का जप करके देवी से वरदान प्राप्त कर लिया था कि यदि मेरी मृत्यु होती है, तो वह एकमात्र हयग्रीव से ही हो, अन्य से नहीं। देवी ने कहा था कि ऐसा ही होगा। अन्ततः भगवान् विष्णु ने हयग्रीव रूप धारण करके उसका वध किया।

इसी प्रकार मधु एवं कैटभ नामक राक्षसों के वध का भी वर्णन किया गया है। इन दोनों दैत्यों ने भगवती के वाग्बीज (ऐं) का जप कर देवी से वर प्राप्त कर लिया था कि हमारी मृत्यु हमारी इच्छा से ही हो। देवी के 'तथास्तु' कहने के अनन्तर उन दोनों के भयंकर अत्याचार से त्रस्त होकर ब्रह्मा ने योगमाया भगवती की अराधना की, जिससे भगवान् विष्णु की निद्रा भंग हुई और वे बहतु दिनों तक मधु एवं कैटभ से युद्ध करते रहे। अन्ततः भगवती की माया से मोहित होकर उन

दोनों ने वर मांगने को कहा। भगवान् विष्णु ने अपने हाथों से उनकी मृत्यु मांगी, जिससे उनकी इच्छा के अनुसार मृत्यु हुई।

इसके अनन्तर शुकदेव की उत्पत्ति की कथा पुनः प्रारम्भ होती है। व्यास-मुनि नारद से वाग्बीज (ऐं) की दीक्षा प्राप्त कर पुत्र की कामना से महामाया का ध्यान करते हुए तप करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके पास जाते हैं और तेजस्वी पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं। तदनन्तर व्यास जी अपने आश्रम वापस आते हैं और अग्नि के लिए अरणि मन्थन करने लगते हैं। उनके मन में पुत्र-प्राप्ति के लिए चिन्ता हुई कि उनके समीप घृताची नामक अप्सरा दिखलायी पड़ी। कामदेव के बाण से पीड़ित व्यास-मुनि धैर्य धारण कर सोचने लगे कि यह तो महान् धर्म संकट सामने आ गया। यदि मैं इसे स्वीकार करता हूँ, तो संसार में मेरी हँसी होगी। इस प्रकार मेरी निन्दा होगी, फिर भी गृहस्थ जीवन का वात्सल्य प्रेम अनुपम है। हाँ, इतना अन्तर जरूर है कि स्वर्गसुख तथा मोक्ष सुख बन्धक नहीं होता, परन्तु अप्सरा का सुख बन्धक होता है। इस सम्बन्ध में नारद ऋषि ने मुझे उर्वशी के वशीभूत राजा पुरूरवा की प्रसिद्ध कहानी सुनायी थी।

उर्वशी के प्रेमभाव में निबद्ध दुःखित पुरूरवा के चरित्र का स्मरण कर व्यास-मुनि ने घृताची की तरफ देखा। मुनि को देखकर घृताची डर गयी कि कहीं ये मुझे श्राप न दे दें। इसलिए वह शुकी बन गयी, जिसे देखकर व्यास अरणि-मन्थन करने लगे और मन में काम व्याप्त हो गया। उन्होंने मन को बहुत प्रकार से रोका, परन्तु मन तो घृताची से मोहित था, इसलिए रूका नहीं और अचानक उनका शुक्र मन्थन अरणि (लकड़ी) पर गिर गया, जिससे शुक की उत्पत्ति हुई। पुत्र प्राप्त कर व्यास जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिनों के पश्चात् व्यास जी

ने गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हुए शुक को विवाह करने के लिए प्रवृत्त करने की इच्छा की; परन्तु वे कथमपि विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुए।

गृहस्थाश्रम में नहीं जाने के शुक के अटल निर्णय को सुनकर व्यास जी ने उन्हें श्रीमद्भागवत् का अध्ययन करने को कहा, जो सभी पुराणों का सार तथा मुक्ति का साधन है; किन्तु श्रीमद्भागवत के अध्ययन के पश्चात् भी शुकदेव को अपने आश्रम में शून्य के समान पड़ा हुआ देखकर व्यास जी ने कहा कि 'हे पुत्र! मेरे अध्यापन के अनन्तर भी तुम्हें शान्ति नहीं मिली, तो तुम मिथिलाधिपति जनक जी के पास जाओ। वे तुम्हारे मोह को नष्ट करेंगे।' शुकदेव ने कहा 'किसी राजा को तो मैंने कभी जीवन-मुक्त देखा ही नहीं है। राजा अपना राजकार्य करता हुआ मुक्त है - यह बात समझ में नहीं आती। इसलिए मैं मिथिला अवश्य जाऊँगा।' तदनन्तर मिथिला पहुँचने पर सिंह द्वार का प्रतिहारी शुकदेव जी से मिथिलागमन का कारण पूछता है। प्रतिहारी के अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुए शुकदेव ने कहा - 'काम, क्रोध, मोह - ये मनुष्य के शत्रु हैं, मित्र तो केवल सन्तोष ही है।' शुकदेव की बातें सुनकर प्रतिहारी समझ गया कि यह ज्ञानी है तथा इसे भीतर जाने का अधिकार है।

अगले दिन पुरोहित को आगे कर अपने मंत्रियों के साथ महाराज जनक जी आते हैं और विधिवत् अतिथि-सत्कार कर आने का कारण पूछते हैं। शुकदेव ने कहा - 'पिता जी द्वारा अनेक प्रकार से गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करने पर भी मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। तब उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। आप जीवन्मुक्त गृहस्थ हैं। आप ही बताइए कि मुझे क्या करना चाहिए।' इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप जनक तथा शुकदेव का अत्यन्त विशद् संवाद हुआ है।

महाराज जनक ने मन की निर्बलता पर जोर देते हुए वेदान्त शास्त्र के अनुसार जीव तथा ब्रह्म एकता का यहाँ उप-पादन विस्तार पूर्वक किया है। अन्ततः जनक ने शुकदेव से कहा कि ''यदि आप पिता का साथ छोड़कर वन में जाना चाहते हैं, तो वहाँ भी मृगों के साथ सम्बन्ध निश्चित रूप से हो जाएगा; क्योंकि पाँच महाभूत तो सब जगह हैं, इसलिए उनसे निसर्ग होना कठिन है। भोजन की चिन्ता तो वन में भी बनी रहेगी। मैं तो निर्विकल्प हूँ। मेरे सामने विकल्परूप सन्देह है ही नहीं। इसलिए सुखपूर्वक सोता हूँ तथा सुखपूर्वक भोजन करता हूँ'।

इस प्रकार जनक की बात से सन्तुष्ट होकर शुकदेव अपने पिता के घर आते हैं और **'पीवरी'** नाम की कन्या से विवाह कर कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि तथा देवश्रुत नाम के चार पुत्र तथा कीर्ति नाम की कन्या को उत्पन्न करते हैं।

इसके अनन्तर अपने योगबल से शुकदेव जी कैलाश-शिखर पर चले जाते हैं। पुत्र-शोक में कातर व्यास को भगवान् शिव समझाते हैं कि तुम्हारा पुत्र योग का परम ज्ञाता है। वह परम गति को प्राप्त कर लिया है। उससे तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी। शिवजी के उपदेश से व्यास का मोह दूर हो जाता है। इसके अनन्तर इस स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में शान्तनु की संतान की संक्षिप्त कथा का वर्णन किया गया है।

द्वितीय स्कन्ध में कुल बारह अध्याय हैं। व्यास की माता सत्यवती की जन्मकथा के साथ इस स्कन्ध का प्रारम्भ होता है, जिसमें भगवती के वाग्बीज (ऐं) के प्रभाव का संकेत है। चेदिदेश के अधिपति वसु ने तप किया था, जिससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें एक विमान दिया था। उस विमान के भ्रमण करने के कारण वह राजा उपरिचर नाम से विख्यात हुआ। उसकी पत्नी का नाम गिरिका था। एक दिन ऋतुमती रानी गिरिका ने राजा से निवेदन किया कि 'मैं आज स्मरण कर पवित्र हो गयी हूँ'; किन्तु राजा वसु पितरों के आदेश से उस दिन मृग का शिकार

करने हेतु वन में चले जाते हैं। वहाँ जाने पर वे अपनी पत्नी का स्मरण करते हैं तथा कामातुर हो जाते हैं जिससे उनका वीर्यपात हो जाता है। राजा उसको वटपत्र में रखकर बाज-पक्षी से अपनी पत्नी के पास भेजते हैं; किन्तु दूसरे बाज ने माँस समझकर उसे लना चाहा। दोनों के परस्पर युद्ध से वह वीर्य यमुना-जल में गिर गया। उसी से एक बालक तथा एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। मल्लाह उन दोनों को राजा वसु के पास ले जाता है। राजा ने बालक को तो अपने पास रख लिया; परन्तु कन्या को उसे देते हुए कहा कि तुम इसे अपने पास रखो। वहीं काली, मत्सयादेवी, मत्स्यगन्धा के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसे देखकर पराशर का मन आकृष्ट हुआ। परिणाम स्वरूप उससे द्वैपायन व्यास की उत्पत्ति हुई। पराशर के सम्बन्ध से वह मत्स्योदरी योजनगन्धा तथा सत्यवती के नाम से विख्यात हुई। उसने अपने पिता के नाम से पुत्र को द्वीप में रख दिया। इसीलिए व्यास का प्रथम नाम द्वैपायन हुआ। बाद में वेद का विस्तार करने के कारण वेदव्यास कहलाये। उन्होंने सुमन्तु, जैमिनी पैल, वैशम्पायन आदि शिष्यों को वेद पढ़ाया।

इसके अनन्तर सत्यवती का महाराज शान्तनु के साथ सम्बन्ध वर्णित है,जिसमें शान्तनु और गंगा से उत्पन्न हुए देवव्रत का पिता के लिए त्याग का वर्णन है। सत्यवती और शान्तनु से विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद नामक दो पुत्र हुए; परन्तु उनसे कोई सन्तान नहीं हुई। वे अचानक युद्ध में मारे गये। सत्यवती की आज्ञा से व्यास ने उनकी स्त्रियों से धृतराष्ट्र तथा पाण्डु को पैदा किया। इसी प्रकार कुन्ती ने दुर्वासा सें वाग्बीज की दीक्षा प्राप्त कर युधिष्ठिर आदि पुत्रों को पैदा किया।

अन्त में इस वंश के राजा परीक्षित का वृतान्त तथा परीक्षित के पुत्र जन्मेजय के नागयज्ञ करने के निश्चय को आस्तिक ऋषि के द्वारा रोकने का वर्णन किया गया है।

तृतीय स्कन्ध में तीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में मुख्य रूप से भगवती की महिमा का वर्णन है। विश्व की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र? जन्मेजय की इस जिज्ञासा के समाधान में व्यास ने कहा कि मैंने भी नारद से यही प्रश्न पूछा था। तब उन्होंने कहा कि मैंने सुना है कि वे प्रलय के बाद विष्णु के जिस नाभि-कमल से उत्पन्न हुए थे, उसके मूलाधार को जानने के लिए हजारो वर्षों तक जल में तैरते रहे और तपस्या की। आकाशवाणी हुई कि तप करो। तब तक मधु-कैटभ नाम के दो असुर आये। उन्होंने निद्रा देवी की स्तुति की, जिससे निद्रा देवी विष्णु के देह से अलग हो गयीं। तदनन्तर विष्णु के द्वारा दोनों असुर मारे गये। इसके बाद भुवनेश्वरी देवी वहाँ उपस्थित हुईं। उस समय पूरा चराचर ब्रह्माण्ड उस भगवती के पैर के नखदर्पण में दिखायी दिया तथा रूद्र और विष्णु युवती स्त्री के रूप में वहाँ थे। विष्णु ने महादेवी से पूछा कि - ब्रह्मा सृष्टि, मैं पालन तथा रूद्र संहार करते हैं, यह जनश्रुति है; किन्तु वास्तविक बात क्या है?

देवी ने कहा - ब्रह्मा और मुझमें भेद नहीं है।

इस प्रकार अपने स्वरूप तथा प्रभाव का परिचय कराते हुए देवी ने ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिए अपनी रजोगुण-सम्पन्न महासरस्वती शक्ति दी और कहा कि नराक्षर मन्त्र का सर्वदा हृदय में ध्यान करते हुए अपना कार्य करो। इसके अनन्तर विष्णु को महालक्ष्मी शक्ति प्रदान कर कहा कि तुम वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज को जपते हुए विश्व का पालन करो। इसी प्रकार शंकर को अपनी महाकाली गौरी शक्ति को समर्पित करते हुए निर्गुणा देवी ने कहा कि इनमें तमोगुण प्रधान है, रज तथा सत्त्व गौण। इसके साथ कैलाश बनाकर विहार करो। तुम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र) त्रिगुण हो। संसार में इन तीनों गुणों से शून्य कोई वस्तु

नहीं है। निर्गुण तो केवल परमात्मा है जो दृष्टिगोचर नहीं होता। मैं समयानुसार निर्गुणा तथा सगुणा-दोनों रूपों में विराजमान हूँ। मैं कारण हूँ, कार्य नहीं।

इसके अनन्तर सांख्यशास्त्र के अनुसार सृष्टि के वर्णन में विरोधी गुणों के परस्पर सम्बन्ध का उपपादन दीपक आदि उदाहरणों के साथ किया गया है। बिन्दुरहित वाग्बीज के महत्व को निरूपित करते हुए सत्यव्रत नामक मूर्ख ब्राह्मण की कथा के प्रसंग में अनेक कथाएँ वर्णित हैं। जिनमें अम्बा-यज्ञ की विधि, विष्णु के द्वारा अम्बा-यज्ञ के अनुष्ठान तथा विश्वामित्र का वशिष्ठ की गौ नन्दिनी के हरण-प्रसंग में कामबीज के जप का महत्व बताया गया है। इसके अनन्तर आयोध्याधिपति ध्रुव सन्धि का वर्णन है, जिसमें राजा की धर्मपत्नी मनोरमा तथा लीलावती इन दो पत्नियों से क्रमशः सुदर्शन और शत्रुजित् नामक दो पुत्रों के जन्म की कथा वर्णित है। मनोरमा का अपने पुत्र सुदर्शन को लेकर भारद्वाज के आश्रम पर जाना तथा कामबीज के प्रभाव से सुदर्शन के विवाह आदि का वर्णन अवान्तर कथाओं के साथ किया गया है।

इसके बाद देवी की महिमा तथा काशी में दुर्गावास का निरूपण करते हुए अन्त में रामकथा कही गयी है। सीता के वियोग से व्याकुल श्रीराम के पास नारद का आकर शारदीय नवरात्र के महत्व तथा देवी के अनुष्ठान की विधि बताना और राम के द्वारा देवी की अराधना कर उनके प्रत्यक्ष दर्शन का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ स्कन्ध में कुल पच्चीस अध्याय हैं। आदि और अन्त में श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन किया गया है। मध्य में प्रसंङ्गानुसार बहुत सी अवान्तर कथाएँ वर्णित हैं। स्कन्ध का प्रारम्भ सूरसेन के प्रतापी पुत्र वसुदेव के कारागार में बन्द होने के कारण तथा कृष्ण का कारगार में जन्म और कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध

रखने वाली घटनाएँ कैसे और क्यों हुईं - इत्यादि जन्मेजय की जिज्ञासा से होता है।

इसके समाधान में व्यास ने कर्म को प्रधान बताते हुए कहा कि कर्म की गति बड़ी विचित्र है। देवता और मानव सभी अपने-अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं। कर्म के कारण ही सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। समावतार में देवता, वानर एवं कृष्णावतार में यादव कर्म के अनुसार ही बने। वसुदेव भी पूर्व-जन्म में कश्यप मुनि थे, उन्होंने यज्ञ के लिए वरूण की गाय का अपहरण किया था। इसलिए वरूण के शाप से वे गोपाल बने तथा उनकी अदिति और दिति (सुरसा) दोनों पत्नियाँ भा शाप के कारण क्रमशः देवकी तथा रोहिणी दो बहन के रूप में उनकी पत्नी हुईं। इसके अनन्तर अदिति को दिति के द्वारा दिये गये शाप से देवकी के छः पुत्रों की मृत्यु के कारण का भी वर्णन किया गया है। स्वार्थवश इन्द्र ने अपनी विमाता दिति के गर्भ को नष्ट कर दिया, जिससे दिति ने अदिति को शाप दिया था।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि न केवल कलियुग के प्राणी ही निन्दनीय कार्य करते हैं; बल्कि पहले के लोग भी राग-द्वेष से ग्रस्त होकर अनुचित कार्य में प्रवृत्त होते थे। नरनारायण की तपस्या से डरे हुये इन्द्र के द्रोह का वर्णन किया गया है इसमें इन्द्र के द्वारा भेजी गयी मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के मान भंग करने के लिये नारायण ने अपने ऊरू से सर्वसुन्दरी नारी को उत्पन्न किया जिसका नाम उर्वशी पड़ा। उर्वशी के सहपरियों की मनोकामना की पूर्ती के लिये नारायण का कृष्ण रूप में अवतरित होने का यहां संकेत है। इसी प्रसङ्ग में अहंकार तथा काम-क्रोध को निन्दनीय बताते हुए नारायण का प्रह्लाद के साथ युद्ध होने के कारण का वर्णन विस्तार से हुआ है। अन्त में भृगु के द्वारा हरि को दिये

गये शाप का कथन तथा दैत्यगुरू शुक्र की कथा और कृष्ण के जन्म तथा चरित्र-वर्णन के साथ इस स्कन्ध की सम्पूर्ति होती है।

पञ्चम स्कन्ध में पैंतीस अध्याय हैं। सबसे पहले विष्णु की अपेक्षा रूद्र श्रेष्ठ हैं - इसका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्ग में कहा गया है कि 'ओम्' प्रणव के अकार, उकार तथा मकार के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र अधिष्ठाता हैं। इनके अतिरिक्त वर्णमाला के रूप में आद्या-शक्ति महेश्वरी हैं। ये उत्तरात्तर उत्तम हैं।

इसके बाद देवी महिमा तथा महिषासुर की उत्पत्ति का वर्णन है दनु दैत्य के पुत्र रम्भ और करम्भ ने प्रतापी पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या की, जिससे डरकर इन्द्र ने करम्भ को मार डाला। इसके बाद रम्भ अपने शिर को काटकर जब हवन करने को उद्यत हुआ, तो उस समय अग्निदेव ने प्रकट होकर उसे त्रैलोक्य विजयी पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया। देववशात् एक महिषी (भैंस) को देखकर वह कामातुर हो उठा, जिससे महिषासुर की उत्पत्ति हुई। उसने स्त्री को तुच्छ समझकर ब्रह्मा से देव-दानव से न मर कर अमरत्व-प्राप्ति का वरदान माँग लिया था। उसके अत्याचार से देवों और असुरों के संग्राम का वर्णन है, जिसमें उसके सेनानी चिक्षुर, विडाल आदि असुरों के वध के पश्चात् देवी के द्वारा महिषासुर के वध का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, दक्तबीज, शुम्भ तथा निशुम्भ की देवी के द्वारा वध की अद्भुत कथा का वर्णन किया गया है। अन्त में महाराज सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य की कथा है, जिसमें राज्य तथा परिवार से परित्यक्त होकर मुनि के आश्रम में जाना तथा उनके उपदेश से देवी के प्रथम, मध्यम तथा उत्तम चरित्रों

के अनुसार आराधना कर राज्य तथा ज्ञान प्राप्त करने का सुविस्तृत उल्लेख किया गया है।

षष्ठ स्कन्ध में इकतीस अध्याय हैं। प्रारम्भ के छः अध्यायों में त्वष्ठा के पुत्र त्रिशिर (तीन शिर वाले) और वृत्रासुर के वध का वर्णन किया गया है। त्रिशिर एक शिर से वेद पढ़ता था, दूसरे शिर से मदिरा पीता था तथा तीसरे शिर से दशों दिशाओं को देखता था। भोग-विलास छोड़कर जब वह तपस्या करने लगता है, तब इन्द्र उससे डरकर तक्ष के द्वारा उसका वध करवा देते हैं। इसके बाद त्वष्टा इन्द्र को मारने वाले पुत्र की कामना से अग्नि में हवन करते हैं, जिससे अग्नि के समान तेजस्वी पुरूष प्रकट होकर पूछता है कि मैं क्या करूँ ? त्वष्टा ने कहा कि इन्द्र तुम्हारे शत्रु हैं, तुम उनका वध करो। तुम दुःख से रक्षा करने में समर्थ हो, इसलिए वृत्र के नाम से विख्यात होंगे। इसके पश्चात् इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन किया गया है, जिसमें इन्द्र के द्वारा वृत्र मारा जाता है।

इसके अनन्तर सप्तम अध्याय से नौ अध्याय तक नहुष की कथा है। इन्द्र जब ब्रह्महत्या के भय से भागकर मानसरोवर में छिप जाते हैं, तब देवताओं के द्वारा नहुष इन्द्र बनाया जाता है, जो इन्द्राणी पर आसक्त होता है; किन्तु देवगुरू बृहस्पति के उपदेश से इन्द्राणी जगदम्बा की आराधना करती हैं, जिससे नहुष की बुद्धि भ्रष्ट होती है और वह सर्प-योनि को प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर संचित, क्रियमाण एवं प्रारब्ध कर्म, युगधर्म, चित्त-शुद्धि तथा पुष्कर, कुरूक्षेत्र आदि तीर्थों के महत्व का निरूपण किया गया है। प्रसङ्गतः वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के परस्पर कलह तथा राजा निमि के द्वारा भगवती की आराधना कर सभी प्राणियों के नेत्र पलकों में रहने का वरदान प्राप्त करना औरउनके स्थूल शरीर के मन्थन से जनक की उत्पत्ति का वर्णन है।

इसके पश्चात् हैहयवंशी क्षत्रियों के द्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणों का संहार, भृगवंश की स्त्रियों के द्वारा जगज्जननी भगवती की आराधना से एक तेजस्वी बालक की उत्पत्ति का उल्लेख है। इसके आगे 'एक वीर' के चरित्र का वर्णन है, जिसमें एकवीर के द्वारा कालकेतु का वध तथा एकावती के साथ उसके विवाह का निरूपण है। इसी प्रसङ्ग में नारद के विवाह की भी कथा है, जो भगवान् की माया से स्त्री भाव को प्राप्त होकर गृहस्थ-जीवन बिताने के बाद पुनः पुरूषत्व को प्राप्त करते हैं।

अन्त में महामाया की महिमा तथा देवीभागवत् के महत्व का उल्लेख है, जिसमें यह कहा गया है कि सच्चिदानन्द रूपिणी देवी ही अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करने में समर्थ है, दूसरी नहीं। अन्त में कहा गया है कि यह भागवत सभी कथाओं का सारभूत पुराण तथा सम्पूर्ण वेदों के समान प्रमाणों से युक्त है।

सप्तम स्कन्ध में कुल चालीस अध्याय हैं। इसके तीस अध्यायों में सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओं तथा उनसे सम्बन्धित अनेक उपाख्यानों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् अन्त के दश अध्यायों में देवी के द्वारा हिमालय को दिये गये रहस्यात्मक उपदेश का वर्णन है, जो देवीगीता के नाम से प्रसिद्ध है। स्कन्ध का प्रारम्भ जगत् की सृष्टि-प्रक्रिया से होता है, जिसमें विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा देवी जगज्जननी की आराधना तथा उनसे शक्ति प्राप्त कर महर्षि अंगिरा आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया का निरूपण है। इसके पश्चात् दक्ष-प्रजापति तथा उनकी पत्नी वीरिणी की साठ कन्याओं के विवाह तथा उनसे उत्पन्न देव-दानवों का भी वर्णन किया गया है।

इसके अनन्तर सूर्यवंशी राजाओं का विस्तृत आख्यान है, जिसमें विवस्वान् तथा उनके पुत्र वैवस्वत मनु से उत्पन्न हुए इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति आदि नौ पुत्रों का वर्णन है। शर्याति की पुत्री सुकन्या का महर्षिच्यवन के साथ विवाह के

कारण का भी विस्तृत विवरण है। आगे सूर्यवंश के प्रतापी राजा यौवनाश्व की कोख से पैदा हुए मान्धाता के चरित्र का निरूपण है, जिसमें प्रसङ्गत त्रिशंकु पर विश्वामित्र की कृपा तथा राजा हरिश्चन्द्र पर विश्वामित्र के क्रोध का वर्णन है, जो त्रिशंकु के सदेह स्वर्गगमन और महाराज हरिश्चन्द्र को सत्य की कसौटी पर खरे उतरने का इतिहास वर्णित है। पुनश्च तीन अध्यायों में देवी के दुगा।, शताक्षी, शाकम्भरी प्रभृति नामों का इतिहास तथा सिद्धपीठ और उन पीठों पर विराजमान शक्तियों की नामावली का उल्लेख किया गया है।

इसके अनन्तर देवीगीता का प्रारम्भ होता है, जिसमें हिमालय की मानस-पूजा तथा तारकासुर से पीड़ित देवताओं के द्वारा की गयी स्तुति से प्रसन्न होकर 'गौरी के रूप में तुम्हारे घर प्रकट होने' का वरदान देने पर हिमालय के द्वारा देवी से अनुरोध का वर्णन किया गया है। हिमालय की जिज्ञासा के समाधान में देवी ने जो रहस्यात्मक ज्ञान का उपदेश किया, वही देवीगीता के नाम से विख्यात हुई। देवी ने तीन अध्यायों में अपने चिदात्मक स्वरूप का निरूपण किया है। इसके पश्चात् योग, कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा शक्तिपीठों का परिचय एवं पूजाविधि का विस्तार के साथ निरूपण है, जिसमें सामान्यतः ब्रह्म-पूजा की वैदिकी तथा तान्त्रिकी विधि एवं उसके अधिकारी की चर्चा है। अन्त में आभ्यन्तर अर्थात् मानस-पूजा की विधि में देवी ने जो कहा है, उससे यह बात सिद्ध होती है कि शाक्त-दर्शन संविद् रूप शक्ति तत्व को ही जगत् का आधार मानता है, जो शिव तथा शक्ति का सामरस्य रूप है। इस सामरस्य की प्रतीति में ही परमानन्द है। इसके बिना आनन्द शुष्क है, जो दुःख है। इसीलिए स्वयं विमर्शरूपा शक्ति ने देवताओं से कहा कि हिमालय के घर में जो गौरी नाम की शक्ति प्रकट होगी, उसे तुम लोग शिव को समर्पित कर देना। यही शिव-शक्ति का सामरस्य है, जो प्रकाशरूप है। इसी से

मोहान्धकाररूप तारकासुर का नाश होता है। इस प्रकार उपनिषदों के साररूप में देवी का उपदेश देवीभागवत का हृदय माना जाता है।

अष्टम स्कन्ध में चौबीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध में मुख्य रूप से मनु के वंश का वर्णन किया गया है तथा भूगोल, खगोल, अतल, वितल आदि लोकों और तामिस्र आदि नरकों का विवेचन हुआ है। देवी से प्रजा-सृष्टि का वरदान प्राप्त कर मनु का ब्रह्मा के पास जाना तथा उनसे स्वीकृति मांगने पर सृष्टि के आधार की चिन्ता से उनकी नासिका के द्वारा उत्पन्न वराह-शिशु का विराट्रूप धारण कर पृथिवी को पाताल लोक से लाने का वर्णन है। फिर स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का तथा बड़े पुत्र प्रियव्रत का संक्षिप्त परिचय है।

इसके अनन्तर भूमण्डल के विस्तार का वर्णन तथा नदियों और गंगावतरण का वृत्तान्त है। इसी प्रकार जम्बूद्वीप के इलावृत वर्ष, भद्राश्व वर्ष तथा हरिवर्ष और नौ वर्षों का और उनके भिन्न-भिन्न अधिष्ठाताओं का पूर्ण परिचय दिया गया है, जिसमें कि पुरूष वर्ष में हनुमान् के द्वारा श्रीरामचन्द्र की तथा भारतवर्ष में नारद के द्वारा की गयी नारायण की स्तुति के बाद भारतवर्ष की महिमा का वर्णन है। प्रसङ्गतः प्लक्षा, शाल्मली आदि द्वीपों तथा लोकालोक पर्वत का निरूपण है। इसके अनन्तर मार्तण्ड, हिरण्यगर्भ के रहस्य को बतलाते हुए सूर्य की स्थिति, गति का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि ग्रहों की गति का उल्लेख है। पुनः अतल,वितल आदि सात लोकों के दानवों के नाम और कामों की विशद चर्चा है।

स्कन्ध के अन्त में नरकों से बचने के लिए देवी की उपासना-विधि बतलायी गयी है, जिसमें प्रत्येक तिथि, योग, करण, नक्षत्र तथा दिन के सम्बन्ध में

पूजा-सामग्री का विवरण तथा प्रत्येक मास की तृतीया तिथि को देवी की उपासना-पद्धति का निरूपण किया गया है।

नवम् स्कन्ध में कुल पचास अध्याय हैं, जिनमें प्रधान रूप से लक्ष्मी, सरस्वती के अतिरिक्त गंगा, तुलसी, सावित्री स्वाहा, स्वधा दक्षिणा, षष्ठी देवी, मंगलचण्डी, मनसादेवी, सुरभी, राधा तथा दुर्गा के आख्याओं का निरूपण किया गया है। स्कन्ध का आरम्भ सृष्टि की प्रकृति के विवरण से होता है। मूल प्रकृति की दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा - ये पाँच प्रकृतियाँ सृष्टि की आधार हैं। सृष्टि की प्रक्रिया में कुशल तथा सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति शब्द के निर्वचन से प्रकृति का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। परम-पुरूष भगवान् श्रीकृष्ण के मन में सृष्टि की इच्छा होते ही मूल प्रकृति परमेश्वरी प्रकट होकर पूर्वाक्त पाँच रूप धारण कर लेती है, जिनसे अनेक प्रकार की सृष्टि होती है। इन पाँच प्रकृतियों के विवेचना के बाद परमात्मा श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधा-शक्ति से प्रकट हुए विराट् रूप वाले बालक का वर्णन किया है। इसके आगे प्रकृतियों की पूजाविधि तथा उनकी काली, वसुन्धरा, गंगा आदि कलाओं का उल्लेख है। सरस्वती-पूजा विधि में 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' इस अष्टाक्षर मन्त्र के जप तथा सरस्वती-कवच और स्तुति के महत्व का प्रतिपादन हुआ है। पुनश्च लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा का परस्पर शापवश भारतवर्ष में कलारूप से अनेक रोचक उपाख्यानों का निरूपण किया गया है।

आगे भक्तों के महत्व तथा लक्षण के विस्तृत विवेचना के बाद पृथिवी, गंगा और तुलसी की उत्पत्ति का निरूपण किया गया है। तदनन्तर कुशाध्वज की कन्या वेदवती के उपाख्यान के प्रसंग में सीता तथा द्रोपदी के पूर्व-जन्म का उल्लेख है, जिसमें वेदवती दूसरे जन्म में सीता के रूप में प्रकट होती है, जिसे वन में

अग्निदेव राम की धरोहर रूप में रखकर उन्हें छाया-सीता समर्पित करते हैं, जिसे रावण हरण कर लेता है। पुनश्च राम के द्वारा रावण का वध होने के पश्चात् अग्निदेव मूल सीता को वापस कर देते हैं। अग्नि के आदेश से छाया-सीता पुष्कर क्षेत्र में तपस्या करती हैं। वहीं तीसरे जन्म में महाराज द्रुपद के यहाँ जन्म लेकर द्रौपदी के नाम से विख्यात होती हैं।

छाया-सीता ने पुष्कर क्षेत्र में तपस्या करते समय भगवान् शिव से पाँच बार 'पति दो' कहकर वरदान की माँग की थी, जिसके परिणाम स्वरूप उसके पाँच पति हुए। इसके अनन्तर तुलसी तथा सावित्री की विस्तृत कथा एवं भुवनेश्वरी की कला के रूप में प्रकट हुई स्वाहा आदि के उपाख्यानों का विशद वर्णन किया गया है, जिनमें प्रत्येक के मन्त्र तथा पूजन-विधि का सङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है।

दशम् स्कन्ध में कुल तेरह अध्याय हैं, जिनमें मुख्यतः स्वायम्भुव, स्वारोचिष आदि चौदह मनुओं का उपाख्यान वर्णित है। प्रसङ्गतः विंध्याचल के द्वारा सूर्य के मार्ग का निरोध तथा भ्रामरी देवी के द्वारा अरूण नामक दानव के वध की कथा का भी वर्णन किया गया है। ब्रह्मा के मानस-पुत्र स्वायम्भुव मनु के विषय में कहा गया है कि उन्होंने सृष्टि-कार्य में आने वाले विहनों के निवारण हेतु जगज्जननी भगवती के वाग्बीज मन्त्र का विधिवत् जप किया, जिसके परिणामस्वरूप देवी उन्हें प्रत्यक्षतः दर्शन देकर विंध्याचल पर चली गयीं। इसी प्रसङ्ग में विंध्याचल की कथा का भी वर्णन किया गया है, जिसमें नारद से सूर्य द्वार सुमेरू पवर्त की परिक्रमा का समाचार सुनकर विंध्याचल द्वारा सूर्य के मार्ग को रोकने पर देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न हुए अगस्त्य ऋषि का काशी छोड़कर जाने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

इसके अनन्तर स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष नामक पाँच मनुष्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। पुनश्च सप्तम मनु वैवस्वत का उल्लेख है, जो भगवती के परम भक्त श्राद्धदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। अष्टम सावर्णि मनु हैं, जो पूर्व-जन्म में सुरथ नाम के राजा थे। यहाँ मधु-कैटभ, महिषासुर तथा शुम्भ-निशुम्भ के वध की कथा है। देवी जगज्जननी की उपासना से वे दूसरे जन्म में सावर्णि मनु हुए। सावर्णि मनु के पश्चात् दक्ष-सावर्णि, मेरू-सावर्णि, सूर्य-सावर्णि, इन्द्र-सावर्णी, रूद्र-सावर्णि तथा विष्णु-सावर्णि इन छः मनुओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ये सभी भगवती भ्रामरी देवी के परम उपासक थे। उनकी कृपा से इनके सभी मनोरथ सिद्ध होते रहते थे।

इसी प्रसङ्ग में भ्रामरी देवी के उपाख्यान का वर्णन किया गया है, जिसमें अरूण नामक दानव का ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करना, उसको मारने के लिए देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर देवी का प्रकट होना तथा अपने हाथ से असंख्य भ्रमरों को उत्पन्न कर अरूण नामक दानव को मारने की अद्भुत कथा का निरूपण किया गया है।

एकादश स्कन्ध में कुल चौबीस अध्याय हैं। इसमें सदाचार तथा सत्कर्म का निरूपण किया गया है, जिसमें प्रातः कृत्य, शौचादि-विधि, स्नान-विधि, रूद्राक्ष-धारण-माहात्म्य, भस्म-धारण, प्रातः सन्ध्या तथा गायत्री-पुरश्चरण आदि का विस्तृत निरूपण किया गया है। सदाचार के विषय में कहा गया है कि सत्कर्म ही मनुष्य के लिए कल्याण करने वाला परम धर्म है। इसी से मनुष्य इस लोक में सुख का उपभोग करने के पश्चात् परलोक में परमसुख मोक्ष की प्राप्ति करता है।

इसके अनन्तर धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि धर्म के श्रुति तथा स्मृति नामक दो नेत्र हैं एवं पुराण इसका हृदय हैं। इसलिए इन तीनों के

वचन ही धर्म माने जाते हैं। प्रातः कृत्य में रात्रि के चतुर्थ प्रहर ब्रह्म-मुहूर्त में जागकर ब्रह्मा का ध्यान, प्राणायाम, देवी की स्तुति तथा गुरू को प्रणाम करने की विधि बतलायी गयी है।

पुनश्च क्रमानुसार मल-मूत्र-त्याग, स्नान तथा सन्ध्या की विधि, गायत्री के माहात्म्य के प्रसङ्ग में रूद्राक्ष-धारण विधि तथा रूद्र के नेत्र-बिन्दु से उत्पन्न वृक्ष के अड़तीस प्रकार के फलरूप रूद्राक्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। तदनन्तर गायत्री मन्त्र के जप, पूजन एवं मध्याह्न-सन्ध्या, तर्पण तथा सायं सन्ध्या की विधि का निरूपण किया गया है। पुनश्च गायत्री-पुरश्चरण तथा प्राणाग्निहोत्र का विवेचन किया गया है, जिसमें पुनरश्चरण के लिए पर्वत-शिखर, नदी-तट, बिल्व-वृक्ष प्रभृति स्थानों का निर्देश तथा मन्त्र-शुद्धि, आत्म-शुद्धि, अन्न-शुद्धि एवं भोजन के परिणाम का उल्लेख भी विस्तारपूर्वक किया गया है।

इसी प्रकार पुरश्चरण प्रारम्भ करने के लिए नक्षत्र, दिन, मास तथा पक्ष का निर्णय भी यहां प्रतिपादित है। प्राणाग्निहोत्र में पञ्चप्राण के लिए आहुति का विधान किया गया है। अन्तिम के दो अध्यायों में प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत की विधि का विवरण तथा कामना सिद्धि एवं विघ्नों के निवारण हेतु गायत्री में अनेक विधियों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

द्वादश स्कन्ध में कुल चौदह अध्याय हैं, जिनमें गायत्री से सम्बद्ध समस्त विषयों का विस्तृत निरूपण किया गया है। प्रारम्भ के छः अध्यायों में गायत्री के चौबीस अक्षरों के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, रूप, मुद्रा तथा गायत्री का ध्यान, कवच, हृदय-स्त्रोत और सह सहस्रनाम का उल्लेख किया गया है। इसके अनन्तर गायत्री या किसी भी मन्त्र के अनुष्ठान के लिए दीक्षित होना अत्यावश्यक माना गया है। इसलिए यहां पर दीक्षा-विधि का विशेष रूप से निरूपण किया गया है।

इसके अनन्तर केनोपिनषद् की कथा का वर्णन है, जिसमें देवताओं के विजय-गर्व का दूर करने के लिए जगज्जननी भगवती आद्याशक्ति का प्रकट होना तथा अग्नि और वायु की शक्ति को स्तम्भित कर देवराज इन्द्र को ज्ञानोपदेश प्रदान करने का विशद वर्णन है।

अन्त में मणिद्वीप के विस्तृत विवरण के अनन्तर बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी भुवनेश्वरी को प्रणाम करते हुए इस देवीभागवत् की सम्पूर्ति की गयी है -

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमती देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्।।
इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा।
सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणाम्।।
नतमथ मुनिसङ्घं वर्द्धयित्वाऽऽशिषाम्बा।
चरणकमलभृङ्गो निर्जगामाथ सूतः।।इति।

प्रसङ्गतः यहाँ पर देवीभागवत् में वर्णित सुभाषितों का निरूपण भी समीचीन प्रतीत हो रहा है। इस पुराण में अनेकों अत्यन्त रोचक सुभाषित प्राप्त होते हैं, जिनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

१. सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरूते पातकं किल। (१.५.२२)

२. अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वञ्च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।। (१.५.८६)

३. परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः।
दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा।। (१.११.५६)

४. नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः।

निरुद्यमं प्रशंसन्ति कातरा न च सोद्यमाः।। (५.५.२)

५. नाभुङ्क्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।

आवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। (९.२९.६९-७०)

६. दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी।

दानभोगौ कृतीनाञ्च नाशः पापात्मनां किल। (६.१६.४०)

इसी प्रसङ्ग में देवी भागवत के दार्शनिक पक्ष का निरूपण भी किया जा रहा है। पुराण-ग्रन्थों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश प्रभृति के वर्णन-प्रसङ्ग में आध्यात्मिक दृष्टि से दार्शनिक प्रथा का भी निरूपण हुआ है। जगत् के मूल तत्त्व तथा जीव के बन्ध-मोक्ष का भी विवेचन प्रायः प्रत्येक पुराण में किया गया है। देवीभागवत् शक्ति-प्रधान पुराण है। इसमें शक्ति को ही जगत् का मूल कारण माना गया है। यह जगत् शक्ति का विवर्त रूप है। शक्ति से भिन्न अन्य कोई भी वस्तु नहीं है - इसका उल्लेख देवीभागवत् के प्रारम्भ में ह कर दिया गया है, यथा -

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम्।

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।। (१.१६.५२)

आसक्ति को बन्धन का कारण बताते हुए कहा गया है लोहे है और काष्ठ की बेड़ी से तो मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है; परन्तु स्त्री-पुत्र की आसक्ति में जकड़ा हुआ मनुष्य कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। यथा -

कदाचिदपि मुच्येता लौहकाष्ठादि यन्त्रितः।

पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत् कर्हिचित्।। (१.१४.३८)

दूसरी बात यह भी कही गयी है कि आत्मा तो निर्विकार तथा निर्मल है, इसीलिए उसका बन्ध अथवा मोक्ष नहीं हो सकता। बन्ध तथा मोक्ष का कारण तो

समल तथा निर्मल मन ही है। इसीलिए शरीर-बुद्धि की अपेक्षा मन की शुद्धि पर ध्यान देना चाहिए। यह बात महाराज जनक ने शुकदेव से इस प्रकार कही है -

आत्मागम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन।

स कथं बध्यते ब्रह्मन् निर्विकारो निरञ्जनः।।

मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विजं।

जाते तु निर्मले ह्यस्मिन् सर्वं भवति निर्मलम्।।

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।

निर्मलं न मनो यावत् तावत्सर्व निरर्थकम।।

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परन्तप।

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।। (१.१८.३६-३९)

'ओऽम्' इस प्रणव की व्याख्या करते हुए कहा गया है।

अकारो भगवान् ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्।

मकारो भगवान् रूद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी।।

उत्तरोत्तर भावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः।।

अर्थात् प्रणव (ओंकार) के अकार, उकार तथा मकार ये वर्ण ब्रह्मा, विष्णु एवं रूद्र में आद्या शक्ति महेश्वरी हैं। इन्हें विद्वानों ने उत्तरोत्तर कहा है। स्वयं देवी ने अपने चिदात्मक स्वरूप का परिचय देते हुए कहा है -

अहमेवाऽऽस पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप।

तदात्मरूपं चित्संवित् परब्रह्मैकनामकम्।। (७.३२.२)

प्रकाशरूप ज्ञान के अतिरिक्त जगत् नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। यह जगत् मायिक तथा असत्य है। सत्य तो केवल चिन्मय प्रकाश में ही है। इसलिए मुझमें अपने चित्त को लगाना चाहिए।

संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम।

अतः संविदि मद्रू‍े चेतः स्थाप्यं निराश्रयम्।।

संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत्।। (७.३६.४४-४५)

इस प्रकार वेदान्त-दर्शन के अद्वैततत्त्व का प्रतिपादन देवीभागवत् में विशेष परूप से प्राप्त होता है। सप्तम स्कन्ध के छत्तीसवें अध्याय में मुण्डकोपनिषद् के नौ मन्त्रों का उल्लेख अक्षरशः किया गया है।

'धनुर्गृहीत्वोपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत' इस मन्त्र से लेकर **'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मेदं विश्वरिष्ठम्'**।। यहां तक के मन्त्र यहाँ विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि देवीभागवत् का दर्शनिक आधार उपनिषद् ही है। इसलिए इस पुराण को वेदों का सार कहा गया है। यथा -

'वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तम।

वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि'।। (१२.१४.२६)

<u>देवी भागवत् में शक्ति-स्वरूप, सगुण एवं निर्गुण शक्ति, शक्ति के सृष्टि स्थिति, प्रलयकारी रूप, रक्षक एंव पालक स्वरूप तथा शक्ति का महत्व</u> -

जगत्स्वरूपाऽप्यपनीतरूपा

संसारताराय च पोतरूपा।

शिवादभिन्नाऽपि शिवाप्ति हेतुः

शक्तिः शिवं नः सततं तनोतु।।

शक्ति ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय को करने वाला है। ब्रह्मा के द्वारा जो सृष्टि की जाती है, विष्णु जो पालन करते हैं तथा रूद्र जो प्रलय

(संहार) करते हैं, यह सब शक्ति का ही स्फुरण है। यह बात देवीभागवत् के निम्नलिखित पद्यों में स्पष्ट होती है -

नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम्।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्।।
गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा।
वारूणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वैष्णवी।।

समस्त देवगण भी शक्ति की प्रेरणा से ही सुख-दुःख का अनुभव किया करते हैं, मानव अन्य जीवों की तो बात ही क्या है। शक्ति के दिव्य स्वरूप के निरूपण हेतु देवीभागवत् के प्रथम स्कन्ध में इला द्वारा की गयी स्तुति भी अवलोकनीय है। यथा -

दिव्यं च ते भगवती प्रथितं स्वरूपं
दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम्।
वन्दे त्वदङ्घ्रिकमलं सुरसंघसेव्यं
कामप्रदं जननि चापि विमुक्तिदं च।।
को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं
स्तुवन्ति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे।
ऐश्वर्य मेतदखिलं कृपणे दयां च
दृष्ट्वैव देवि सकलं किल विस्मयो मे।।
शम्भुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च
वित्तेशवह्निवरूणाः पवनश्च सोमः।
जामान्ति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं
बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः।।

जानाति विष्णुरमितद्युतिरम्ब साक्षात्

त्वां सांत्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च।

को राजसीं हर उमा किल तामसीं त्वां

वेदाम्बिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम्।।

क्वाहं सुमन्दमतिर प्रतिमप्रभावः

क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः।

यो भवानि चरितं करूणासमेतं

यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावमुक्तान्।।

वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयापि

नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च।

पादो तवादिपुरूषः किल पावकेन्

कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ।।

वाञ्छंत्यऽहोहरिरशोक इवातिकामं

पादाहति प्रमुदितः पुरूषः पुराणः।

तां त्वं करोषि रूषिता प्रणतं च पादं

दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम्।।

वक्षः स्थले वससि देवि सदैव तस्य

पर्यङ्कवत्सुचरिते विपुलेऽतिशान्ते।

सौदामनीव सुधमे सुविभूषिते च

किं तेन वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि।।

त्वं चेज्जहासि मधुसूदमम्ब कोपा-

भैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः।

प्रत्यक्षमेव पुरूषं स्वजनास्त्यजन्ति

शान्तं श्रियोज्झितमतीवगुणैर्वियुक्तम्।।

ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो

ये त्वत्पदाम्बुजमहर्निशमाश्रयन्ति।

मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः

किं वर्णयामि तव शक्तिमनन्तवीर्ये।।

त्वं नापुमान्न च पुमानिति में विकल्पो

या काऽसि देवि सगुणा ननु निर्गुणा।

तां त्वां नमामि सततं किल भावमुक्तो

वाञ्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं तु।।

(देवी भागवत् - १.१२.४१.५१)

जैसे चेतन पदार्थों में शक्ति का विलास प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है, वैसे ही जड़ पदार्थों में भी उसका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है। जैसे नदियों के प्रवाह, बर्फ का कड़ापन, अग्नि की उष्णता, जल की शीतलता, सूर्य-चन्द्रमा प्रभृति का प्रकाशकत्व और घट-पटादि पदार्थों का प्रकाशतत्व आदि का कारण प्रकृति ही है। यह बात भगवान् व्यास जी के निम्नलिखित वचन से सिद्ध होती है -

जले शीतं तथा वह्नवौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे।

निशानाथे हिमाकारं प्रभावामि यथा तथा।।

ईश्वर में समस्त कार्य करने की जो सामर्थ्य है, वही शक्ति है। परब्रह्म परमात्मा शक्तिविशिष्ट होकर ही जगत् का रक्षण तथा नियमनादि समस्त कार्य करने में समर्थ होते हैं। शक्ति से बिरहित होकर वे भी कुछ नहीं कर सकते। यही बात देवीभागवत् के निम्नलिखित श्लोक में भी प्रतिपादित है -

तच्छातिभूतः सर्वेषु भिन्नो ब्रह्मादिमूर्त्तिभिः।

कर्ता भोक्ता च संहर्ता सकलः स जगन्मयः।।

इस श्लोक में वर्णित सकल शब्द का अर्थ है – 'कलया सह वर्तमानः सकलः'। अर्थात् शक्ति विशिष्ट ब्रह्म ही देव, तिर्यक, मनुष्य तथा स्थावर प्रभति समस्त प्रपञ्च के सृष्टि कार्य में, रक्षण-कार्य में तथा संहरण-कार्य में समर्थ होते हैं।

उसी शक्ति का भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख किया गया है। यथा सांख्य तथा योग में सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की साम्यावस्था को प्रकृति नाम से कहा जाता है और उसी को प्रधान भी कहते हैं। वेदान्त-दर्शन में वही शक्ति अविद्या अथवा माया के नाम से जानी जाती है और तान्त्रिक लोग तन्त्रशास्त्र में उसी को शक्ति-नाम से स्वीकार करते हैं।

१. देवी भागवत् में दो प्रकार की शक्ति का निरूपण किया गया है। एक सगुण शक्ति और दूसरी निर्गुण शक्ति। यथा –

सगुणा निर्गुणा चेति द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।

सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः।

ईश्वर का जो सर्वातिशायि स्वातन्त्र्य है, वही निर्गुण शक्ति है। इस शक्ति के बिना ईश्वर को कभी भी उपलब्धि नहीं हो सकती। ईश्वर की वही स्वातन्त्र्ययाख्या शक्ति स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् की आत्मा है और ईश्वर के साक्षात्कार का कारण भी है। यह तान्त्रिक लोगों का परम सिद्धान्त है। देवीभागवत् के प्रथम स्कन्ध में भी कहा गया है –

या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या

विद्या सतां प्रियतमाऽथ समाधिगम्या।

सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं

यः संश्रृणोति सततं तु सतीपुराणम्।। (१.३.४१)

तान्त्रिक-प्रवर वसुगुप्त ने 'चैतन्यमात्मा' ऐसा सूत्र बनाया है। इसका अर्थ यह है कि चेतन का भाव चैतन्य (स्वातन्त्र्याख्य शक्ति) आत्मा है। यह किसकी आत्मा है? समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् की। यह बात उक्त सूत्र की व्याख्या में 'विशोचोदनात् भावाभावकपस्य जगतः' इस उक्ति से क्षेमराज ने सिद्ध की है।

हमने जो पहले प्रतिपादित किया है कि 'शक्ति के बिना ईश्वर' को प्राप्त करने का दूसरा काई उपाय नहीं है', वह भी तान्त्रिक-प्रवर अभिनवगुप्त की उक्ति से स्पष्ट होता है -

तस्माद्येन मुखेनैव भात्यनंशोऽपि तत्तथा।

शक्तिरित्येष वस्त्वेव शक्तिस्तइत्क्रमः स्फुटः।।

इसके व्याख्याकार आचार्य प्रवर जयरथ लिखिते हैं -

'अनंशोऽपि सदाशिवो येन मुखेन भुवनाद्यन्यतमांशलक्षणेन् मुखेन भावनादौ भासते, तन्मुखं तु शिवप्राप्त्युपाय तया शक्तिरेव। न हि एतद्वगमादौ उपायन्तरमस्ति, उपपद्यते वा। अतश्च शक्तिशक्तिमतोः उपायोपेयभावात्मा क्रमः सम्यगेव स्फुटः'।

अर्थात् परब्रह्म निरवमव होने पर भी ध्यान करने के समय जिसके प्रभाव से कभी-कभी सावयव प्रतीत होते हैं, वही शक्ति है और यही शक्ति ब्रह्म प्राप्ति का द्वार है, शक्ति से व्यतिरिक्त ब्रह्मप्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यह तान्त्रिक सिद्धान्त देवी भागवत् से भी प्राप्त होता है, यथा -

सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽस्ति सर्वदा।

ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम।।

मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।

ध्यायेत्तथाराधयेच्च प्रणमेच्च जयेदपि।।

तेन सां सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम्।

स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः।।

ईश्वर की शक्ति ही आत्मा है, यह बात जो पूर्व में भी कही जा चुकी है, वह भी देवीभागवत् के सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। देवीभागवत् के मङ्गलाचरण में भी कहा गया है -

सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।

..................बुद्धिं या नः प्रचोदयात्।।

अर्थात् सब की आत्मस्वरूप जो ईश्वर की पराशक्ति है, उसका मैं ध्यान करती हूँ। पहले जैसा प्रतिपादित है कि एक सगुणा शक्ति है और दूसरी निर्गुणा शक्ति, उनमें जो निर्गुणा शक्ति है, वह आद्या नाम से कही गयी है। यथा -

निर्गुण या सदा नित्या व्यापिका विकृता शिवा।

योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता।।

तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ति राजसी तामसी तथा।

महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः।।

तासां तिसृणां शक्तीनां देवाङ्गीकारलक्षणः।

सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः।।

(देवीभागवत् १.२.१९-२१)

देवीभागवत् में जहाँ-जहाँ पर देवी का वर्णन किया गया है, वहाँ-वहाँ देवी पद से शक्ति विशिष्ट परब्रह्म का ही ग्रहण किया गया है और दूसरी जो सगुण शक्ति है, वह भी पराशक्ति का ही रूपान्तर है। इसलिए देवी की स्तुतियों में कहीं तो सगुण रूप से और कहीं निर्गुण रूप से वर्णन किया गया है।

शक्ति ही ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त समस्त प्राणियों के मोह का कारण है। शक्ति से मोहित होकर ही ब्रह्मा, रूद्र, इन्द्र इत्यादि देवता लोग 'मैं ब्रह्मा हूँ, मैं रूद्र हूँ,

मैं इन्द्र हूँ' इस प्रकार अपने ब्रह्मत्वादि का अभियान किया करते हैं। इस बात को महर्षि व्यास जी देवीभागवत् में श्री विष्णु जी के मुख से कहलाते हैं -

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनराह प्रजापतिम्।
मन्मायामोहितः सर्वस्तत्त्वं जानाति नो जनः।।
वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरूम्।
परमं पुरूषं शान्तं सच्चिदानन्दमद्वयम्।।
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः।
न जानीमो वयं धातः परं वस्तु सनातनम्।।

तृतीय स्कन्ध के तृतीयाध्याय में शक्ति ही सम्पूर्ण चराचर जगत् की आत्मा होने के कारण जड़ाजड़ रूप में वर्णित है -

एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः।
महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया।।
दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया।
इच्छा परत्मनपः कामं नित्यनित्यस्वरूपिणी।।
दुराराध्यार्डल्पभाग्यैश्च देवी विश्वेश्वरी शिवा।
वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी।।
एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये।
लिङ्गानि सर्वजीवानां स्वशरीरे निवेश्य च।।
सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ।
विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात्।।

(देवीभागवत् ३.३.५१-५५)

इन श्लोकों के अनुसार शक्ति चेतना चेतन समस्त जगत् का कारण है तथा माया के जड़ होने के कारण मायाविशिष्ट ब्रह्म का जड़ रूप से वर्णन होना सिद्ध होता है। यदि कोई शंङ्का करे कि प्रकृति के जड़ होने से वह प्रकृति का ही वर्णन है। ब्रह्म के

चेतन वस्तु है, चेतन वस्तु का जड़ होना अत्यन्त असम्भव होने के कारण जड़ रूप से ब्रह्म का वर्णन नहीं है, तो ऐसा कहने से पूर्वोक्त नित्यत्व का विरोध होता है। इसलिए इसे प्रकृतिविशिष्ट ब्रह्म का ही वर्णन समझना चाहिए। ब्रह्मम के नित्य होने के कारण नित्यत्व का वर्णन और माया के अनित्य होने से अनित्यत्व का वर्णन भी संङ्गत प्रतीत होता है।

शक्ति का नेत्रों से ग्रहण करने योग्य कोई रूप नहीं है, जिससे उनके स्वरूप का निरूपण किया जा सके। अतः उनके कार्यों से उनके स्वरूप का निश्चय किया जाता है। क्योंकि शक्ति के कार्यभूत जगत् में उसके सत्वादि गुणों की प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है तथ कार्य वस्तु में जो गुण हैं तथा जो रूप हैं, वे सब कारण में अवश्य ही रहते हैं। रूप रहित, गुणरहित कारण से रूपयुक्त, गुणयुक्त कार्योत्पत्ति का होना कभी भी सम्भव नहीं है। अतः जो कार्य का रूप है, वही कारण का भी है। जैसे मिट्टी के पिण्ड में जो रूप तथा गुण रहता है, वही रूप तथा वही गुण घट में पाया जाता है। इसलिए जो रूप तथा गुण घट के हैं, वे ही रूप तथा गुण मृत्पिण्ड के भी हैं। वैसे ही जगत् का जो रूप है, वही रूप शक्ति का भी है, यह निश्चित होता है। तान्त्रिक लोगों का ऐसा भी सिद्धान्त है कि शक्ति का जो कार्य है, वह शक्ति से पृथक नहीं है; वही शक्ति का भी रूप है। महामाहेश्वर अभिनव गुप्त भी लिखते हैं –

शक्तिश्च नामभावस्य स्वं रूपं मात्रकाल्पितम्।

तेनाद्वयः स एवापि शक्तिमत्परिकल्पयते।।

अर्थात् 'यह हमारा ग्रन्थ है' इस वाक्य में जैसे हमसे हमारा ग्रन्थ भिन्न प्रतीत होता है, वैसे ही 'यह इसकी शक्ति है' इस कथन में शक्ति तथा शक्तिशाली वस्तु ये दोनों पृथक्-पृथक् प्रतीत होती है; किन्तु वास्तविकता की स्थिति में इनमें परस्पर भेद नहीं है; क्योंकि शक्तिशाली वस्तु से पृथक् होकर शक्ति की कहीं भी उपलब्धि नहीं होती।

जैसे अग्नि को छोड़कर दाहिका तथा पाचिका शक्ति की उपलब्धि स्वतन्त्र रूप से अन्यत्र नहीं होती।

शक्ति की व्यापकता, शक्ति का विराट् स्वरूप, शक्ति और ब्रह्म में भेदाभेद, शक्ति का दुर्गारूप तथा दुर्गा की शक्तियाँ –

'राहु का सिर' इस कथन में जिस प्रकार राहु से उसका सिर पृथक् नहीं है, फिर भी आरोप से पृथक् व्यवहार होता है, उसी प्रकार शक्तिशाली वस्तु से शक्ति पृथक् नहीं है, फिर भी आरोप से भिन्न व्यवहार होता है। इस विषय में किसी महात्मा ने ठीक ही कहा है –

'फलभेदादारोपित फलभेदः पदार्थात्मा शक्तिः'।

देवीभागवत् के तृतीय स्कन्ध के षष्ठाध्याय में महर्षि व्यास जी का कथन है कि देवी कंहती हैं –

सर्दकत्वं न भेदाऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्।।
आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान् हि सः।
विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नाम संशयः।।
एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम्।
द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके।।
यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्सञ्जायते द्विधा।
छायैवादर्शमध्ये वा प्रतिबिम्बं तथाऽऽवयोः।।
भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज।
दृश्यादृश्यविभेदोऽहं द्वैविध्ये सति सर्वथा।।
नाहं स्त्री न पुमाँश्चाहं न क्लीनं सर्गसंक्षये।
सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः।।

अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।

श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा।।

कान्तिः शान्तिः पिपासा च निद्रा तन्द्रा जराऽजरा।

विद्याऽविद्या स्पृहा वाञ्छा शाक्तिश्चाशक्तिरेव च।।

वसा मज्जा च त्यक्त्वाऽहं दृष्टिर्वाग।

परा मध्या च पश्यन्ती नाय्योऽहं विविधाश्च याः।।

किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि।

सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पकंज।

एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे।

तस्मादहं विधे चास्मिन् सर्गे वै वितताऽभवम्।।

नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम्।

भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्।।

(देवीभागवत् - ३.६.२-१३)

इन श्लोकों से यही सार तत्व निकलता है कि शक्ति तथा शक्तिमान् का अभेद होने के कारण ब्रह्म और उसकी शक्ति दोनों एक ही पदार्थ हैं। जो इनमें भेद उपलक्षित होता है, वह केवल नाम मात्र का है। मतिविभ्रान्त लोग इस भेद को अपनी अज्ञानता के कारण यथार्थ मान लेते हैं; परन्तु यथार्थ में शक्ति तथा शक्तिमान का अपृथक् सम्बन्ध होने के कारण दोनों की सदैव एकता ही सिद्ध होती है। अघ च जो स्वरूप ईश्वर का है, वही शक्ति का भी है। उक्त पद्यों में ही वर्णित है कि प्रलयावस्था में ईश्वर-शक्ति न तो स्त्रीरूप में रहती है, न ही पुरुष रूप में या नपुंसक के रूप में ही। व्यावहारिक समग्र भेदों के कारण स्वरूपा एक ब्रह्म-शक्ति निर्गुण रूप में अवस्थित रहती है। उस समय यह भेद मन तथा वचन से भी अगोचर होने के कारण निर्गुण शक्ति में प्रतीत

नहीं होता; परन्तु जब उसी निर्गुण शक्ति का रूपान्तर सगुण शक्ति में होता है, तभी स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है। अतः निर्गुण शक्ति एक रूप है।

सगुण तथा निर्गुण भेद से शक्ति की दो अवस्थाएँ हैं। उनमें निर्गुण शक्ति तो स्वरूप-निरूपण किया गया, अब सगुण शक्ति के स्वरूप-निरूपण का प्रयास किया जा रहा है।

दृश्यमान समस्त जगत् सगुण शक्ति का कार्य है और वह शक्ति सत्त्वगुण, राजोगुण तथा तमोगुण की साम्यावस्था रूप है। इसलिए इसका प्रत्येक कार्य सुख-दुःख तथा मोहात्मक होता है। श्रीमद्भागवत् में भी कहा गया है -

रणभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवास्ति कुत्रचित्।
वस्तुमात्रं तु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत्।।
दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतो न भविष्यति।
निर्गुणः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन।।

समस्त दृश्य वस्तु सगुण शक्ति का कार्य होने के कारण दृश्य वस्तुओं में जो स्वरूप देखा जाता है, वही स्वरूप सगुण शक्ति का भी है।

संसार में अनेकों प्रकार के दृश्य पदार्थों की विभिन्न शक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिए पूर्व में कही गयी दो प्रकार की ही शक्तियों का होना असम्भव सा प्रतीत होता है। पुनश्च एक ही पदार्थ में अनेक प्रकार की शक्तियों का भाव देखने में आता है। जिस प्रकार से एक ही अग्नि में दाहिका, पाचिका तथा प्रकाशिका नामक तीन तरह की शक्तियों की क्रिया प्रत्यक्ष उपलब्ध होती है। इन्हीं कारणों से एक सगुणशक्ति तथा एक निर्गुण शक्ति ये दो ही शक्तियाँ हैं, यह किस प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है? शक्तियों का बहुत्व तो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

प्रथम शंका का समाधान देवीभागवत् के तृतीय स्कन्ध के षष्ठाध्याय में इस प्रकार से किया गया है -

नूनं सर्वेषु देवेषु नानारूपधरा ह्यहम्।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्।।

गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा।

वारूणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी।।

उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि तान्।

करोमि सर्वकार्योणि निमित्तं तं विधाय वै।।

जले शीतं तथा वाह्नवौष्ण्वं ज्योतिर्दिवाकरे।

निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथा तथा।।

मया त्यक्तं विधे नूनं स्पन्दितुं न क्षमं भवेत्।

जीवजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वमि।।

अशक्तः शङ्करो हन्तुं दैत्यान्किता मयोज्झितः।

शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम्।।

रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल।

शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्।।

पतितः स्वलितो भीतः शान्तः शत्रुवंश गतः।

अशक्तः प्रोच्यते लोके नारूद्रः कोऽपि कथ्यते।।

तद्विद्धि कारणं शक्तिर्यथा त्वं च सिष्तक्षसि।

भविता च यदा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाऽखिलम्।।

तथा हरिस्तथा शम्भुस्तथेन्द्रोद्रथ विभावसुः।

शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरूणः पवनस्तथा।।

धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तिमुक्ता यदा भवेत्।

अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे।।

तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः।

मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम्।।

जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम्।

पवनं स्तम्भयाम्यद्य यदिच्छामि तथाचरम्।।

तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदापि कमलोद्भव।

असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन।।

(देवीभागवत् - ३.६.१३-२६)

इन श्लोकों का सार तत्व यही है कि जब ईश्वर की सृष्टि करने की इच्छा होती है, तब उनकी सगुण शक्ति विष्णु प्रभृति भिन्न-भिन्न देवताओं में तथा घट-पटादि पदार्थों में प्रविष्ट हो जाती है। जैसे महाकाश के एक होने पर भी घटाकाश-मठाकाशादि भेद से भिन्न-भिन्न आकाश का व्यवहार होता है, उसी प्रकार शक्ति के एक होने पर भी शक्तिमत् वस्तु के भेद होने से शक्ति की अनेकों प्रकार भी प्रतीत होती है।

को भेदों वस्तुतो वह्नेर्दग्धृपक्तृत्वयोरिव।

महामाहेश्वर आचार्य अभिनव गुप्त की उपर्युक्त उक्ति से द्वितीय प्रश्न की शंका तो अपने आप ही निवृत्त हो जाती है। दाह-पाकादि फलभेद से जो दाहिका, पाचिका शक्ति का भेद प्रतीत होता है, वस्तुतः वह समीचीन नहीं है; क्योंकि पहले ही निरूपित किया जा चुका है कि शक्ति तथा शक्तिमान् का अभेद है। इसलिए यहाँ शक्तिमान् अग्नि के एक होने के कारण उसकी शक्ति भी एक ही है।

देवीभागवत् का यही परम सिद्धान्त है कि ईश्वर का जो स्वरूप है, वही शक्ति का भी स्वरूप है। अथ च जो जगत् का स्वरूप है, वह भी शक्ति का ही स्वरूप है एवं ईश्वर की प्राप्ति का उपाय भी शक्ति ही है।

शक्ति के ब्रह्म माया आदि स्वरूप तथा शक्ति के अवतारों का दार्शनिक विवेचन -

शास्त्रों में शक्ति शब्द के प्रसंगानुसार अलग-अलग अर्थ किये गये हैं। तान्त्रिक लोग इसी को पराशक्ति कहते हैं और इसी को विज्ञानानन्दघन ब्रह्म मानते हैं। वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराण प्रभृति में भी शक्ति शब्द का प्रयोग देवी, पराशक्ति, ईश्वरी मूल-प्रकृति प्रभृति नामों से विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म के लिए भी किया

गया है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्म का तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म एवं गुह्य होने के कारण शास्त्रों में उसे नाना प्रकार से समझाने की चेष्टा की गयी है।

इसलिए शक्ति नाम से ब्रह्म की उपासना करने से भी परमात्मा की ही प्राप्ति होती है। एक ही परमात्म तत्त्व की निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, देव, देवी, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, राम, कृष्ण प्रभृति अनेक नाम-रूप से भक्त लोग उपासना करते हैं। रहस्य को जानकर शास्त्रों तथा आचार्यों द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार उपासना करने वाले सभी भक्तों का उनकी प्राप्ति हो सकती है।

उस दयासागर प्रेममय सगुण, निर्गुण रूप परमेश्वर को सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशाक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, निर्विकार, नित्य, विज्ञानान्दधन परब्रह्म परमात्मा समझकर श्रद्धापर्वक निष्काम प्रेम से उपासना करना ही उसके रहस्य को जानकर उपासना करना है। इसलिए श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक उस विज्ञानानन्द स्वरूपा महाशक्ति भगवती देवी की उपासना करनी चाहिए। वह निर्गुणस्वरूपा देवी जीवों पर दया करके स्वयं ही सगुण भाव को प्राप्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से उत्पत्ति, पालन तथा संहार कार्य करती है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है –

त्वमेव सर्वजननी मूल प्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाधा सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।
तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा।।
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला।।

(ब्रह्मवैवर्त- पुराण - २.६६.७-१०)

तुम्हीं विश्वजननी मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वंय निर्गुण हो, तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्म स्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। परमृतेजः स्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करती हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्व प्रकार से मङ्गल करने वाली एवं सर्वमङ्गलों की भी मङ्गल हो। श्रीमद्देवीभागवत् में भी कहा गया है –

या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा
सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता।
दुर्ज्ञेया सुदरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता
प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा।।

सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि।।

ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं
पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः।
विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म
तैरूक्तमेव सृजते न हि स स्वतन्त्रः।

विष्णुस्तु शेषशयने स्वपतीति काले
तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म।
आधारतां किल मतोऽत्र सहस्रमौलिः
सम्बोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः।।

एकार्णवस्य सलिलं रसकपमेव

पात्रं विना नहि रसस्थिति रस्ति कश्चित्।

या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा

तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि।।

(देवीभागवत् - १.२.४-८)

उस पराशक्ति से ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र उत्पन्न हुए। उसी से सब मरूद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा वाद्य बजाने वाले किन्नर सब ओर से उत्पन्न हुए। समस्त भोग्य पदार्थ और अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम मनुष्यादि प्राणीमात्र उसी पराशक्ति से उत्पन्न हुए। ऋग्वेद में भगवती का कथन है -

अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह

मादित्यैरूत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरूणोभा बिभर्म्यह

मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।। (ऋ० सं० ८.७.११)

अर्थात् मैं रूद्र, वसु, आदित्य और विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। वैसे ही मित्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनीकुमारों के रूप को धारण करती हूँ।

ब्रह्मसूत्र में भी कहा गया है - **'सर्वोपेता तद्दर्शनात्'** (ब्रह्मसूत्र, द्वितीय अध्याय, प्रथम वाद)। अर्थात् वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्य से युक्त है; क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है।

यहाँ भी ब्रह्म का वाचक स्त्रीलिङ्ग शब्द आया है। ब्रह्म की व्याख्या शास्त्रों में स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिंग तथा नपुंसकलिङ्ग आदि सभी लिङ्गों में की गयी है। इसलिए महाशक्ति के नाम से भी ब्रह्म की उपासना की जा सकती है। बंगाल में श्री रामकृष्ण परमहंस जी ने माँ भगवती शक्ति के रूप में ब्रह्म की उपासना की थी। वे परमेश्वर को माँ, तारा, काली आदि नामों से पुकारा करते थे। और भी बहुत से महात्मा पुरूषों ने स्त्रीवाचक

नामों से विज्ञानानन्दघन परमात्मा की उपासना की है। ब्रह्म की महाशक्ति के रूप में श्रद्धा, प्रेम और निष्काम भाव से उपासना करने से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

संसार की उत्पत्ति का कारण कोई परमात्मा को तथा कोई प्रकृति को और कोई प्रकृति एवं परमात्मा दोनों को बतलाते हैं। विचार करके देखने से सभी का कहना समीचीन ही प्रतीत होता है। जहां संसार की रचयिता प्रकृति है, वहाँ समझना चाहिए कि पुरूष के सानिध्य से ही गुणमयी प्रकृति संसार को रचती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (गीता - ९.१०)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाता के सानिध्य से यह मेरी माया चराचर सहित समग्र जगत् को रचती है और इस उपर्युक्त हेतु से ही संसार आवागमनरूप चक्र में घूमता है। जहाँ संसार का रचयिता परेश्वर है, वहाँ सृष्टि के रचने में प्रकृति द्वार है।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।

भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। (गीता- ९.८)

अर्थात् अपनी त्रिगुणमयी माया को अङ्गीकार करके स्वभाव के वश से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बारम्बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ। वास्तव में प्रकृति और पुरूष दोनों के संयोग से ही चराचर संसार की उत्पत्ति होती है।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। (गीता - १४.३)

अर्थात् हे अर्जुन! मेरी महद्ब्रह्म रूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतों की योनि है, गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतनरूप बीज की स्थापना करता हूँ। उस जड़-चेतन के संयोग से ही समग्र भूतों की उत्पत्ति होती है।

यतो हि विज्ञानानन्दघन, गुणातीत परमात्मा निर्विकार होने के कारण उसमें क्रिया का अभाव है और त्रिगुणमयी माया के जड़ होने के कारण उसमें भी क्रिया का अभाव है। इसलिए परमात्मा के सानिध्य से जब प्रकृति में स्पन्द होता है, तभी संसार की उत्पत्ति होती है। अतएव प्रकृति तथा परमात्मा के संयोग से ही संसार की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं। महाप्रलय में कार्यसहित तीनों गुण कारण में लय हो जाते हैं, तब उस प्रकृति की अव्यक्त स्वरूप साम्यावस्था हो जाती है। उस समय सारे जीव, स्वभाव, कर्म और वासनासहित उस मूल प्रकृति में अव्यक्त रूप से स्थिर रहते हैं। प्रलयकाल की अवधि समाप्त होने पर उस माया शक्ति में ईश्वर के साकार से स्फूर्ति होती है, तब विकृत अवस्था को प्राप्त हुई प्रकृति तेइस तत्वों के रूप में परिणत हो जाती है, तब उसे व्यक्त कहते हैं। पुनः ईश्वर के सकाश से ही वह गुण, कर्म और वासना के अनुसार फल भोगने के लिए चराचर जगत् की रचना करती है। जैसा कि श्रीमद्द्देवीभागवत् में भगवती की स्तुति के रूप में प्रतिपादित है -

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः

शक्तया तवैव हरते ननु चान्तकाले।

ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीन

स्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री।।

कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करूणा दया त्वं

श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च।

पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं

तुष्टिः प्रभा त्वमति बुद्धिरूमा रमा च।।

विद्या क्षमा जगति कान्तिरपीह मेधा

सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन्।

आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं

को वा क्षमः सकललोकनिवासभूमे।।

त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ

धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम्।।

पृथिवी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्था

स्यत्येतदम्ब निखिलं बहुभारयुक्तम्।।

ये वा स्तुवन्तु मनुजा आमरान् विमूढा

मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरूद्रान्।

शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्

किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये।।

ये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञं

व्रासी सुरान् समधिकृत्य हवि समृद्धम्।

स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा

त्वामेव किं न हि यजन्ति ततो हि मूढाः।।

भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां

स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम्।

स्वीयान् सुरान् जननि पोषयसीह यद्वत्

तद्वत्परानपि च पालयसीति हे तोः।।

मातः स्वयं विरचितान् विपिने विनोदाद्

बन्ध्यान् पलाशरहिताँश्च कटूँश्च वृक्षान्।

नोच्छेदयन्ति पुरूषा निपुणाः कथञ्चित्

तस्मात्त्वमप्यतितरां परिपासि दैत्यान्।।

यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैरतीतान्

देवाङ्गनासुरतकेलिमतीन् विदित्वा।

देहान्तरेऽपि करूणारसमाददाना

तत्ते चरित्रमिद मीरिसत पूरणाय।।

चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न सन्ति

त्वच्चिन्तितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः।

ये षां कृते जननि देहनिबन्धनं ते

क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः।।

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले

न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वाञ्चितास्ते।

धूर्तैः पुराणचतुरै र्हरिशङ्कराणां

सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम्।।

ज्ञात्वा सुराँस्तव वशा नसुरार्दिताँश्च

ये वै भजन्ति भुवि भावयुता निमग्नान्।

धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते

कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे।।

विद्या त्वमेव सुखदाऽसुखदाऽप्यविद्या

मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम्।

मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मन्दधीभि

र्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाऽज्ञैः।।

ब्रह्मा हरश्च हरिप्यनिशं शरण्यं

पादाम्बुजं तव भजन्ति सुरास्तथान्ये।

तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजन्ति

भ्रान्ताः पतन्ति सततं भवसागरे ते।।

चण्डि त्वदङ्घ्रिजलजोत्थरजः प्रसादै

ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ।

शौरिश्च पाति खलु संहरते हरश्च

त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ।।

वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां

वक्तुं न तेऽमखराः प्रभवन्ति शक्ताः।

त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां

यस्माद्भवन्ति मनुजा नहि तद्विहीनाः।।

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं

मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।

पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां

तान् सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात्।।

शम्भोः पपात भुवि लिङ्गमिदं प्रसिद्धं

शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।

तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तु

तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः।।

योऽभूद् गजाननगणाधिपतिर्महेश्यात्

तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः।

जानन्ति तेन सकलार्थ फलप्रदात्रीं

त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम्।इत्यादि।

(देवीभागवत् - ५.१६.२-२०)

त्रिगुणमयी प्रकृति और परमात्मा का परस्पर आधारधेय एवं व्याप्यव्यापक सम्बन्ध है। प्रकृति आधेय तथा परमात्मा आधार है। प्रकृति व्याप्त तथा परमात्मा व्यापक है। नित्य चेतन विज्ञानानन्दघन परमात्मा के किसी एक अंश में चराचर जगत् के सहित

प्रकृति है। जैसे तेज, जल, पृथ्वी आदि के सहित वायु आकाश का आधार है, उसी प्रकार यह परमात्मा का आधार है जैसे बादल आकाश से व्याप्त है, उसी प्रकार परमात्मा से प्रकृति सहित यह सारा संसार व्याप्त है।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगोमहान्।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। (गीता - ९.६)

अर्थात् जिस प्रकार से आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु सदैव आकाश में ही स्थित है, उसी प्रकार से मेरे सङ्कल्प द्वारा उत्पत्ति वाले होने से सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं - ऐसा जानना चाहिए।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।। (गीता - १०.४२)

अर्थात् हे अर्जुन! इस प्रकार बहुत जानने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

(ईशावस्योपनिषद् - १)

अर्थात् त्रिगुणमयी माया में अवस्थित यह समग्र चराचर जगत् ईश्वर से व्याप्त है। किन्तु उस त्रिगुणमयी माया से वह लिप्यमान नहीं होता; क्योंकि विज्ञानानन्दघन परमात्मा गुणातीत केवल और सब का साक्षी है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् - ६.११)

अर्थात् जो देव सभी भूतों में छिपा हुआ, सर्वव्यापक, सभी भूतों की अन्तरात्मा (अन्तर्यामी आत्मा), कर्मों का अधिष्ठाता, सब भूतों का आश्रय, सब का साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम-इन तीनों गुणों से परे हैं, वह एक है।

इस प्रकार गुणों से रहित परमात्मा को भली-भाँति जानकर मनुष्य इस संसार के सारे दुःखों और क्लेशों से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। इसके जानने के लिए सबसे सहज उपाय उस परमेश्वर की अनन्य शरण ह। इसलिए उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्द परमात्मा की सर्वप्रकार से शरण में जाना चाहिए।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। (गीता - ७.१४)

अर्थात् क्योंकि यह अलौकिक, अत्यद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरूष मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं, अर्थात् इस संसार-सागर से तर जाते हैं।

विद्या-अविद्यारूप त्रिगुणमयी यह महामाया बड़ी विचित्र है। इसे कोई अनादि, अनन्त तथा कोई अनादि, साक्ष मानते हैं। कोई इसको सत्, तो कोई असत् कहते हैं तथा कोई इसको ब्रह्म से अभिन्न और कोई इसे ब्रह्म से भिन्न बतलाते हैं। वस्तुतः यह माया बड़ी विलक्षण है, इसलिए इसको अनिर्वचनीय कहा गया है।

दुराचार, दुर्गणरूप आसुरी, राक्षसी, मोहिनी प्रकृति, महत्तव का कार्यरूप यह सारा दृश्यवर्ग इस अविद्या का ही विस्तार है तथा भक्ति, पराभक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग, योगमाया, समष्टि बुद्धि, शुद्ध बुद्धि, सूक्ष्म बुद्धि, सदाचार, सद्गुणरूप दैवी सम्पदा - यह सब इस विद्या का विस्तार है।

जैसे ईंधन को भस्म करने के पश्चात् अग्नि स्वतः शान्त हो जाता है, उसी प्रकार से विद्या का नाश करके विद्या स्वतः शान्त हो जाती है - ऐसा मानकर यदि माया को अनादि, शान्त बताया जाय, तो यह दोष आता है कि यह माया आज से पहले ही सान्त होने वाली है, तो फिर इससे छूटने के लिए प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है? इसके सान्त हाने पर सारे जीव अपने-आप ही मुक्त हो जायेंगे। फिर भगवान् किसलिए कहते हैं कि यह त्रिगुणमयी मेरी माया तरने में बड़ी दुस्तर है; किन्तु जो मेरी शरण में आ जाते हैं, वे इस माया को तर जाते हैं।

यदि इस माया का अनादि, अनन्त बताया जाय, तो इसका सम्बन्ध भी अनादि, अनन्त होना चाहिए। सम्बन्ध के अनादि अनन्त मान लेने से जीव का कभी छुटकारा हो ही नहीं सकता और भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ के अन्तर को तत्त्व से समझ लेने पर जीव मुक्त हो जाता है। यथा -

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।। (गीता - १३.३४)

अर्थात् इस प्रकार क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के भेद को एवं विकार सहित प्रकृति से छूटने के उपाय को जो पुरूष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्त्व पूर्वक जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं। इसलिए इस माया को अनादि, अनन्त भी नहीं माना जा सकता। इसे न तो सत् ही कहा जा सकता है एवं न असत् ही। असत् तो इसलिए नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसका विकाररूप यह सारा संसार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिए नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यह दृश्य जड़वर्ग सर्वथा परिवर्तनशील होने के कारण इसकी नित्य समस्थिति नहीं देखी जाती।

इस माया को परमेश्वर से अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि माया अर्थात् प्रकृति जड़, दृश्य, दुःखरूप विकारी है तथा परमात्मा चेतन, दृष्टा, नित्य, आनन्दरूप और निर्विकार हैं। दोनों के अनादि होने पर भी इनका आपस में बड़ा भारी अन्तर है।

'मायां तुं प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'। (श्वेताश्व ४.१०)

त्रिगुणमयी माया को तो प्रकृति (२३ तत्त्व जड़वर्ग का कारण) तथा मायापति को महेश्वर जानना चाहिए।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढ़े।

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् - ५.१)

साकारभाव को प्राप्त परब्रह्म की ही मूर्ति दाशरथि, वासुदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देवविशेष के सम्बन्ध से देवीभाव में स्थित वही शक्ति सीता, राधा, सरस्वती, लक्ष्मी, महेश्वरी आदि विविध नाम-रूपों में विभिन्न उपासकों के द्वारा आराधित होती है। एक ही देवी के निमित्त-भेद से विभिन्न नाम रूप कल्पित करके लोग उपासना करते हैं, यह बात श्रुतिस्मृति के जानने वालों को अविदित नहीं है।

'दुर्गौत्सन्त्रायते यस्माद्देवी दुर्गेति कथ्यते'। (देवी-उपनिषद्)

मुख्य शक्ति के जो तत्तद् उपासकों के प्रिय काली, लक्ष्मी आदि गौण साकार स्वरूप हैं, वे भी गौणशक्त, अर्थात् शिव, विष्णु आदि से अलग नहीं है। गौण जितने शक्तिमान् हैं, सभी मुख्य शक्त परमात्मा के स्वरूप ही हैं। इसी प्रकार गौणशक्ति के भेद भी सभी मुख्य शक्त परमात्मा के स्वरूप हैं। केवल मुख्य शक्ति का ही नहीं, बल्कि गौण शक्तियों का, अर्थात् विभिन्न उपासकों की उपास्य विभिन्न देवियों का भी जगत् की उत्पत्ति आदि के कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्त, मुक्त पुरूषों के द्वारा प्राप्य, नित्य कूटस्थ सुखघनात्मा, परमात्मा के साथ तनिक भी भेद नहीं है।

इस प्रकार शक्ति तथा शक्तिमान् का अभेद सर्वप्रकार से सिद्ध होता है। अथ च जिज्ञासु तथा मुमुक्षु गौण शक्ति-भेदों से देवी के किसी खास रूप की भी अनन्य भक्ति द्वारा सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप से आराधना, उपासना कर सकते हैं तथ ऐसे उपासक भी धन्य-धन्य एवं कृतकृत्य होते हैं - इस विषय में विशेष लिखना अनावश्यक प्रतीत हो रहा है।

अन्त में उस जगज्जननी भगवती को उसकी 'कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इस पावन प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हुए उसकी कृपा-भिक्षा माँगते हुए तथा देवी भागवत् के पञ्चम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में (श्लोक - ३८-४२) उद्धृत स्तुति का उल्लेख करते हुए इस द्वितीयाध्याय की सम्पूर्ति की जाती है -

अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा।

इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजन्ते कुतो जनाः।।

द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरन्तरम्।

नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि।।

तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति।

पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु।।

प्राप्य देहं सुदुष्प्रायं न स्मरेत्त्वां नराधमः।

मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः।।

सुखे वाऽप्यथ वा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम्।

पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव करायुधैः।।इति।।

तृतीय अध्याय

(मार्कण्डेय पुराण का परिचय एवं उसमें प्रतिपादित शक्ति का स्वरूप)

1. मार्कण्डेय पुराण में समय, विषय, रचना का उद्देश्य
2. मार्कण्डेय पुराण में शक्ति का स्वरूप
3. मार्कण्डेय पुराण में शक्ति के अवतारों की व्यापकता तथा शक्ति स्वरूपों का दर्शनिक विवेचन
4. शक्ति के ब्राम्हणी, वैष्णवी, रौद्री, ऐन्द्री, वाराही, नारसिंही, कात्यायनी, कौमारी, चामुण्डा आदि रूपों का प्रतिपादन

।। तृतीय अध्याय ।।

मार्कण्डेय–पुराण का परिचय एवं उसमें प्रतिपादित शक्ति का स्वरूप

पुराण–परिचय

लौकिक संस्कृत के विविध साहित्यों में पुराण का स्थान सर्वोपरि है। पद्मपुराण में कहा गया है कि ब्रम्हा जी ने समस्त शास्त्रों में सर्वप्रथम पुराण का स्मरण किया। पुराण सम्पूर्ण लोकों में श्रेष्ठ तथा समग्र ज्ञान का प्रदाता है । जैसे

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रम्हणा स्मृतम् ।

उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम ।। (अ० १)

मत्स्य पुराण के अनुसार पुराणों को वेदों से पूर्ववर्ती बताया गया है। यथा –

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणं स्मृतम ।

अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।। (म०पु० ५३.१)

अथर्ववेद के अनुसार उच्छिष्ट ब्रम्ह से वेदों के साथ पुराणों का भी आविर्भाव हुआ। यथा –

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्व दिवि देवा विपश्चितः ।। (अथर्व. ११.७.२४)

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार वेदों के समान पुराणों को भी भगवान का निःश्वास बताया गया है –

अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदों यजुर्वेदः ।

सामवेदोऽथर्वाङिगरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः।।

(बृ०उप०२.४.१०)

ब्रम्हाण्ड–पुराण के अनुसार चारों वेद, सभी वेदांग तथा समग्र उपनिषदों का ज्ञान होते हुए भी पुराणो का ज्ञान जिस मनुष्य को नहीं होगा, वह विद्वान नहीं हो सकता । यथा

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः

न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः ।। (अ० १)

<u>पुराणों की रचना</u>

पुराण–विद्या वेद–विद्या के समान अनादि है और पौराणिक वाङ्.मय वैदिक वाङ्.मय के समान सर्वप्रथम ब्रम्हा से ही प्रादुभूत हुआ है। अन्तर केवल यह है कि वैदिक वाङ्.मय की प्रथम उपलब्धि जिस रूप में हुई, बाद में भी उस रूप की ज्यों की त्यों रक्षा की गयी । उसकी पदावली में किसी प्रकार के परिवर्तन को अग्राहय माना गया । वह जिस रूप में पहली बार सुना गया, उसी रूप में बाद में भी बराबर कहा –सुना जाता रहा। इसीलिए उसका दूसरा नाम श्रुति अथवा अनुश्रव पड़ा, परन्तु पौराणिक वाग्डमय के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। पुराणों की रक्षा शब्दो से नहीं, अपितु अर्थों में की गयीं। उनकी भाषा बदलती रही, किन्तु अर्थ वही रहा । ब्रम्हा जी के मुखकमल से निःसृत पुराणवाली का जो अर्थ था, वही आज की पुराण भाषा में भी निहित है। इसी प्रकार वेद जो कुछ उपलब्ध हैं, अपने आदिम शब्द एवं अर्थ दोनों रूपों में ज्यो के त्यों आज भी सुरक्षित हैं। पुराणों के विषय में इस सम्भावना के लिए पर्याप्त स्थान है कि उनमें नूतन भाषा के साथ ही साथ नूतन अर्थ का भी समावेश हुआ है और इसीलिए पुराणों के विषय में भी पाश्चात्य विद्वानों ने जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, उनको सर्वथा उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

पुराणकर्ता

बादरायण भगवान् व्यास जी ने वेदों का विषयानुसार उनकी मौलिक आनुपूर्वी में ही ऋक, यजु:, साम एवं अथर्व इन चार भागों में वर्गीकरण किया। पर पुराणों के शाब्दिक स्वरूप को उसी रूप में रखना आवश्यक समझकर उसके अर्थ भाग को ग्रहण कर अपने शब्दों में उन्होंने अठारह प्रकरणों की एक पुराण–संहिता की रचना कर डाली। लोमहर्षण ने इस पुराण–संहिता का अध्ययन किया और स्पष्टतर भाषा में एक नवीन पुराण–संहिता का प्रणयन किया और उसमें मन्वन्तर, सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश एवं वंशानुचरित इन पॉच विषयों का विस्तारपूर्वक सन्निवेश किया। लोमहर्षण ने अपनी पुराण–संहिता का अध्ययन त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शांशपायन एवं हरीत इन छः शिष्यों को कराया। इनमें शांशपायन, सावर्णि एवं कश्यप ने एक–एक नूतन पुराण–संहिता का प्रणयन किया। शांशपायन की पुराण–संहिता में आख्यान, उपाख्यान, गाथा एवं कल्पशुद्धि ये चार इन चार नूतन विषयों का सन्निवेश हुआ। सावर्णि की पुराण–संहिता में दर्शन, कला, आगम तथा नीति का नवीन सन्निवेश हुआ। कश्यप की पुराण–संहिता मे वेदोपबृंहण, पुराणावतरण प्रभृति नूतन विषयों का सन्निवेश हुआ।

लोमहर्षण, शांशपायन, सावर्णि एवं कश्यप की ये चार पुराण–संहितायें ही सूत–शौनक के संवाद के रूप में प्राप्त होने वाले अठारह पुराणों की आधारशिला है।

अर्थ च के चारो पुराण संहितायें महर्षि व्यास की मूलभूत पुराण–संहिता के आधार पर रचित हुई हैं। इस प्रकार व्यास की पुराण–संहिता के आधार पर रचित होने के कारण

समस्त पुराण व्यास–रचित माने जाते हैं। सूत–शौनक के संवाद रूप में रचे गये अठारह पुराण, जिनमें आदि के आठ लोग–हर्षण एवं अन्त के दश उनके पुत्र उग्रश्रवा द्वारा रचित हैं, इतने सुबोध एवं लोकप्रिय हुए कि इनके समक्ष इनकी मूलभूत पुराण–संहिताओं का प्रचलन समाप्त हो गया।

पुराणों की उपादेयता

पुराण भारतीय संस्कृति के भाण्डागार हैं। इनमें भारत वर्ष की सत्य एवं शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का वास्तविक चित्र सामने नहीं आ सकता तथा भारतीय जीवन का दृष्टिकोण भी स्पष्ट नहीं हो सकता। मनुष्य के गन्तव्य और पाथेय का परिज्ञान नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी विध ाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन हैं। इनमें लोक–जीवन के समस्त पक्ष अच्छे प्रकार से प्रतिपादित है। संसार में ऐसा कोई ज्ञान–विज्ञान नहीं, मानव–मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना या योजना नहीं, मनुष्य–जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों मे न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई होती है, वे बड़े रोचक ढंग से सरल भाषा में आख्यान आदि के रूप में इन पुराणों में वर्णित हुए हैं। अतः भारत को पूर्णरूपेण समझने के लिए और उसकी अपनी विशेषताओं के साथ विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर खड़ा करने के लिए पुराणों का अनुशीलन अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं।

पुराण का समय

पुराण के स्वरूप, भेद, प्रतिपाद्य विषय तथा उसके ज्ञान के प्रयोजन आदि की जानकारी जैसे हम पुराणों से ही करते हैं, उसी प्रकार उसके समय का निश्चय भी उसी के आधार पर करना उचित है और विशेषतः उस स्थिति में जबकि पुराण के समय का निर्देश उनमें स्पष्ट रूप से किया गया है। इस यथार्थ एवं न्यायसंगत दृष्टिकोण से जब हम पुराण के समय का विचार करते हैं, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि पुराण–विद्या, वेद–विद्या की भाँति अनादि हैं। काल–परीक्षण की आधुनिक ऐतिहासिक शैली से पुराण का काल–निर्णय करना न तो सम्भव है और न ही न्यायसंगत, क्योंकि पुराण में स्पष्ट प्रतिपादित है :–

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुराणमेतद् वेदाश्च मुखेभ्याऽनुविनिःसृताः ।। (मार्क० पु० अ ४५)

अव्यक्तजन्म ब्रम्हा के उत्पन्न्न होते ही उनके मुखों से पुराण एवं वेदों का उदग्म हुआ।

मार्कण्डेय ऋषि

ये कुमारसर्ग–रुद्रसर्ग के जीव है। भृगु के पौत्र मृकण्डु की धर्मपत्नी मनस्विनी से इनका जन्म हुआ था। प्रारम्भ में ये अल्पायु थेः परन्तु भगवान शिव की अनन्य आराधना करके इन्होंने अपनी आयु की अवधि को बढ़ा लिया था। तदन्तर ये सप्तकल्पान्तजीवी हो गये। इनकी प्रज्ञा का विकास उस स्तर तक हुआ था जिसमें मानव के समस्त संशय मिट जाते हैं, मोह रूपी पर्दा हट जाता है, भूत, भविष्य एवं

वर्तमान तीनों काल के विषय में हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं तथा जब मृत्युज्जय – परमार्थ ज्ञान रूप महादेव के अनुग्रह से चित–अचित की अनादि ग्रन्थों का भेदन होकर जीव–भाव की समग्र आवृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। अर्थात जब जीव पूर्ण प्रज्ञ एवं पूर्ण जीवन्मुक्त होकर परा शक्ति और पर–पुरुष के निरूपण की नैपुणी प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञा के इस उच्च स्तरीय विकास के कारण ही इनका यह पुराण संक्षिप्त होते हुए भी पूर्ण एवं अतीव विशद है।

मार्कण्डेय–पुराण

प्रसिद्ध अट्ठारह पुराणों में मार्कण्डेय पुराण सातवां पुराण है। इस पुराण का नामकरण मार्कण्डेय ऋषि द्वारा कथन किये जाने से हुआ है। परिमाण में यह पुराण छोटा है। इसके कुल अध्यायों की संख्या – १३७ है और इनमें प्रतिपादित श्लोकों की संख्या 9,000 है। इस पूरे पुराण का आंग्ल–भाषा में अनुवाद पार्जिटर साहब ने किया है[1] तथा इस प्रारम्भ के कतिपय अध्यायों का अनुवाद जर्मन भाषा में भी हुआ है, जिसमें मरणोत्तर जीवन की कथा कही गयी हैं। इन पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में यह पुराण बहुत प्राचीन, बहुत लोकप्रिय तथा नितान्त उपादेय हैं। हमारी दृष्टि में भी यह सम्मति ठीक ही जान पड़ती है। प्राचीन काल की प्रसिद्ध ब्रम्हवादिनी महिषी मदालसा का परम पावन जीवन चरित्र इस ग्रन्थ में बड़े विस्तार के साथ दिया गया हैं। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को बाल्यकाल से ही ब्रम्हज्ञान का उपदेश दिया, जिससे उसने राजा होने पर भी ज्ञान योग के साथ कर्मयोग का अपूर्व सामंजस्य कर दिखाया। इसी

1– दृष्टव्य – बिब्लोथिका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता, १८८८ से १६०३ ई०

ब्रम्हहत्यादिथायानि तथान्यान्यशुभानि च ।

ताकि सर्वाणि नश्यन्ति तूलं वाताहतं यथा ।।

पुष्करस्नानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते ।

वन्ध्या [illegible] मृतवत्सा वा श्रृणोति यदि तत्वतः ।।

साऽपि वै लभते पुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ।

धनधान्यभवाप्नोति स्वर्गलोकं तथाऽक्षयम् ।।

सुरापश्चोग्रकर्मा च श्रुत्वैतत्सकलं नरः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनधान्यसुतादिकम ।

वंशं चैत्र व्यवच्छेदी प्राप्नाति द्विजसत्तम ।। (मार्क0 पु0अ0 १३७)

उपर्युक्त उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु ही मार्कण्डेय–पुराण की रचना हुई है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं दृष्टिगोचर होता ।

मार्कण्डेय–पुराण का देश एवं काल

पुराणों में मार्कण्डेय पुराण अपना एक विशिष्ट स्थान रखता हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि इसके भीतर त्रयोदश अध्यायों में (अध्याय'–81 से सी–2 पर्यन्त) देवी–माहात्मय का प्रतिपादक बड़ा ही महनीय अंश है, जिसमें देवी के त्रिविध रूप – महाकाली, महालक्ष्मी तथा महा–सरस्वती के चरित्र का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस विश्रुत आख्यान के अतिरिक्त मन्वन्तरों का विस्तृत विवरण इस पुराण का वैशिष्ट्त्र माना जा सकता हैं। औत्तम मनु का वर्णन ६६ अध्याय से ७३ अध्याय तक,

तामस का ७४ अध्याय, रैवत का ७५ अध्याय, चाक्षुष का ७६ अध्याय, वैवस्वत का ७७ अध्याय से ७६ अध्याय तक तथा सावर्णि का ८0 अध्याय से ६३ अध्याय पर्यन्त है और देवी माहात्म्य या सप्तशती सावर्णि मन्वन्तर के वर्णनावसर पर प्रकट किया गया हैं।

इसमें पुराण के पञ्चलक्षण का विवरण प्रायः उपलब्ध होता है। मार्कण्डेय पुराण सृष्टि वर्णन के लिए विष्णु पुराण का अधमर्ण हैं। इस पुराण में वैदिक इष्टियों के महत्व की भी विशिष्ट सूचना है। उत्तम ने मित्रवृन्दा नामक इष्टि द्वारा अपनी परित्यक्ता पत्नी को पाताल लोक से प्राप्त किया तथा सरस्वती इष्टि के द्वारा उस नागकन्या के गूंगेपन को दूर किया जो इनकी पत्नी के साथ रहने से पिता के द्वारा अभिशप्त होने से गूंगी हो गयी थी । सारस्वत सूक्तों के जप होने के कारण से यह इष्टि इस नाम से पुकारी जाती है। मार्कण्डेय पुराण का आरम्भ तो महाभारत से सम्बद्ध चार प्रश्नों के समाधान के लिए होता हैं। मार्कण्डेय पुराण में व्रत, तीर्थ या शान्ति के विषय में श्लोक नहीं है परन्तु आश्रम धर्म, राज धर्म, श्राद्ध, नरक, कर्मविपाक, सदाचार योग (दत्तात्रेय द्वारा अलर्क को उपदिष्ट) के विवरण देने में विशेष आग्रह दृष्टिगोचर होता है। इस पुराण में बिन्दुओं ने विश्लेषण से तीन स्तरों को खोज निकाला है :–

1– अध्याय १ से ४२, जहाँ पक्षी वक्ता के रूप में कहे गये हैं

2– ४३ अध्याय से अन्त तक, जिसमें मार्कण्डेय और उनके शिष्य क्रौष्टुकि का संवाद वर्णित है।

3– सप्तशती (अध्याय ८१ से ६३ तक) इसी खण्ड के भीतर एक स्वतन्त्र अंश मानी जाती हैं। ये तीनों आपस में असम्बद्ध होने पर भी एकत्र सन्निविष्ट हैं।

निबन्धकारों ने इस पुराण से अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। कल्पतरू ने मोक्ष के प्रसंग में इस पुराण से लगभग १२० श्लोक योग–विषय में उद्धृत किये हैं, जो प्रचलित पुराण में मिलते हैं। अपरार्क ने ८५ उद्धरण दिये हैं, जिनमें से ४२ योग के विषय में तथा अन्य दानादि के विषय में हैं। मार्कण्डेय पुराण के ५४ अध्याय में (ब्रम्हाण्ड के समान ही) कथन है कि सह्य पर्वत के उत्तर भाग में गोदावरी के समीप का देश जगत में सर्वाधिक मनोरम है – इस दृष्टि से इस पुराण के उद्‌गम स्थल के विषय में यह संकेत माना जा सकता है। यह पुराण प्राचीन पुराणों में अन्यतम माना जाता है और विषय–प्रतिपादन की दृष्टि हेतु पर्याप्त रूप से नवीन तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसे गुप्तकाल की रचना मानने में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं है। जोधपुर से उपलब्ध दधिमती माता के शिलालेख में 'सर्वमंगलमाग्ल्ये' (सप्तशती का प्रसिद्ध श्लोक) श्लोक उद्‌धृत है। इसका समय २८९ दिया गया है, जिसे भण्डारकर गुप्त संवत् मानते हैं (६०८ ई) परन्तु मिराशी इसे ही तद्‌भिन्न भाटिक संवत् का निर्देश मानकर इसका समय ८१३ ई० मानते हैं।[1]

जो कुछ भी हो, यह पुराण ६०० ई० से प्राचीनतर है और ४००–५०० ई० के बीच माना जाना चाहिये। देवी के तीन चरितों का वर्णन देवी भागवत में भी आता है। (दृष्टव्य ५ स्कन्ध, ३२ अध्याय)। इन दोनों की तुलनात्मक समीक्षा से यही प्रतीत होता है कि मार्कण्डेय पुराण का दैवी माहात्म्य (सप्तशती) देवी भागवत के एतद्विविषयक विवरण से निःसंन्देह प्राचीन है। देवी भागवतका विवरण सप्तशती के ऊपर विशेषरूपेण आधृत है।[2]

मार्कण्डेय पुराण का विषय

पुराण—पुरुष परमात्मा का प्रतिपादन करना ही पुराण का लक्ष्य है और प्रतिपाद्य तत्व के आधार पर ही इसका नामकरण 'पुराण' किया गया है। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित का वर्णन भी उस पुरुष का निरूपण करने के लिए ही किया गया है। सर्ग, प्रतिसर्ग आदि की व्यवस्था की उस पुराण—पुरुष के बिना नहीं हो सकती। कारण यह है कि इस जगत की धारा अविच्छिन्न नहीं है। ऐसा नहीं है कि इस जगत का क्रम एकान्त रूप से अनादि है, इसका कभी अवसान नहीं होगा। हम देखते हैं कि हमारे सामने ऐसे अनगिनत दृश्य पदार्थ है, जिनका एक दिन कोई पता नही था, जिनके अस्तित्व का कोई चिन्ह नहीं था। उन्हें आज जहाँ हम देखते हैं, कभी वहाँ कुछ नहीं था, केवल शून्य था, कोई सीमा नहीं थी, कोई परिधि नहीं थी, कोई मूर्ति नहीं थी। कोई अभिव्यक्ति भी नहीं थी। पर एक दिन वहाँ उन पदार्थों की विशाल मूर्ति खड़ी हो जाती है। उनका उपयोग एवं व्यवहार होने लगता है। उनके लिए लड़ाई, झगड़े एवं रक्तपात होने लगते हैं। हम देखते हैं कि बड़ी—बड़ी नदियों, समुद्र के बड़े—बड़े भागों को स्थल मे परिवर्तित होते, बड़े—बड़े जंगलों को ग्राम और नगरों में बदलते, बड़े—बड़े नगरों, उपनगरों को उजाड़ जंगल में उतरते, गम्भीर महागर्तों में ऊँचे—ऊँचे पहाड़ खड़े होते और बड़े—बड़े पहाड़ों को कण—कण में विचूर्ण होते। ये घटनायें हमारी आँखें खोल देती हैं। हमें यह स्वीकार करने को बाध्य करती हैं कि प्रत्येक स्थूल पदार्थ अभावपूर्वक होता है। प्रत्येक दृश्य वस्तु की व्यक्तावस्था अव्यक्तावस्थापूर्वक होती है। इसी प्रकार प्रत्येक अभाव भावपूर्वक तथा प्रत्येक अव्यक्तावस्था व्यक्तावस्थापूर्वक होती है। फिर यह

अव्यभिचरित नियम इस तथ्य को स्थापित करता है कि कोई ऐसा भी संगम अवश्य रहा होगा, जब यह जगत सर्वथा अस्तित्व शून्य अथवा सर्वथा अव्यक्त रहा होगा। वही अवस्था प्रतिसर्ग है और जगत की यह दृश्यमान अवस्था सर्ग है।

उपर्युक्त स्थिति में यह निर्विवाद है कि यदि जगत की उस शून्यावस्था में कोई भावात्मक तत्व न माना जाये तो यह विपुल विश्व कैसे खड़ा हो सकेगा ? केवल शून्य से, असत से, अभाव से इस विचित्र जगच्चित्र का चित्रण कैसे हो सकेगा ? किसी भी चित्र को खींचने, किसी भी मूर्ति को खड़ी करने, किसी भी ठोस वस्तु को बनाने में कुशल शिल्पी और आवश्यक उपकरणों एवं उपादान तत्वों का होना अनिवार्य होता हैं। अतः जगत की उस शून्यावस्था में, प्रतिसर्ग की दशा में भी जगत के उपादान तत्व, कुशल रचयिता तथा अपेक्षित उपकरण का अस्तित्व मानना ही होगा। पुराण को जगत के उस उपादान तत्व को त्रिगुणात्मिका प्रकृति, कर्ता को परमेश्वर, उपकरणों को ईश्वरीय परयोग तथा जीव के शुभाशुभ कर्मजनित संस्कार के रूप में वर्णित किया है। मार्कण्डेय पुराण का निम्नलिखित वचन इस बात का स्पष्ट निर्देश करता है :–

'अनाद्यन्तं जगद्योनिं त्रिगुणंप्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतमविशयं ब्रम्हाग्रे समवर्तत' ।। (मार्क0 पु0 ४५अ)

---

१. द्रष्टव्य–मिराशी का लेख 'A Lower limit for the date of the Devi-mahatmya (Purana, vol-1, no.-4, PP.-181-186).

२. इन दोनों की तुलना हेतु द्रष्टव्य–पुराणम् (भाग–५, सं0–१, जनवरी, १९६३), पृ0–Co-११३

'स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ।

प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणाकतिष्ठतः ।।

अहर्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान् ।

सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु जगत्पति ।

क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।। (मार्क0 पु0 ४६अ0)

जगत्प्रवाह के प्रवर्तक, प्रकृति के अधीश्वर, जीवकर्मो के साक्षी, अखण्ड चैतन्य रूप इस परमेश्वर का साक्षात्कार करने में ही मानव–जन्म की कृतार्थता है। इस कार्य के लिए समाज को समुचित सुविधा और अनुकूल अवसर सुलभ करने के लिए ही देश में सुदृढ़, सुव्यवस्थित एवं समुन्नत शासन की आवश्यकता होती है। इसके लिए ही नाना प्रकार की नीतियों का निर्माण, समुज्जवल सदाचार का प्रचार, शिक्षा, दीक्षा एवं सामाजिक संगठन आदि कार्यों की अपेक्षा होती है। यदि मानव इसस विमुख है, शासन इस ओर से उदासीन है, शिक्षा विधि एवं सामाजिक व्यवस्था इसके प्रतिकूलं है तो उनका कोई मूल्य नहीं, कोई उपयोग नहीं। सब निस्सार, निस्तत्व और निरर्थक है।

बस पुराण का यही आदेश है, यही उपदेश है, यही सिद्धान्त है, यही उद्घोष है। इसका प्रचार'–प्रसार और पालन आवश्यक है। अन्यथा भौतिकवादी मानव के विषमय मस्तिष्क से निकला पारमाणविक विज्ञान निश्चय ही मानवता को कवलित कर लेगा। सभ्यता को समाप्त कर देगा। संस्कृति को निःशेष कर देगा। जगत के जीवनदीप को बुझा देगा । प्रसंगतः यहाँ पर नारद पुराण के पूर्व भाग में ८७वें अध्याय में प्रतिपादित मार्कण्डेय–पुराण की विषयानुक्रमणी भी यहाँ उद्घृत करना समीचीन ही प्रतीत हो रहा है :–

यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम् ।

मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम् ।।

पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणाम् ।

पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया च दिवस्यते ।।

तीर्थयात्रा बलस्यातो द्रौपदेयकथानकम् ।

हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम् ।।

पितापुत्र समाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः ।

हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमाचितम् ।।

मदालसाकथा प्रोक्ता ह्यलर्काचरिताचिता ।

सृष्टिसंकीर्तन पुण्यं नवधा परिकीर्तितम् ।।

कल्पान्तकालनिर्देशो यक्ष्मसृष्टिनिरूपणम् ।

रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपवर्षानुकीर्तनम् ।।

मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः।

तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे ।।

तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजःसमुद्भवः ।

मार्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्मयसमाचिता ।।

वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सव्याश्चरितं तथा।

खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः ।।

अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्तनम् ।

नरिष्यन्तस्य चरितमिक्ष्वाकुचरितं ततः।।

तुलस्याश्चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा ।

कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम् ।।

पुरुरवः कथा पुण्या नहुषस्यं कथाद्भुता।

ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ।।

श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः ।

द्वारकाचरिताञ्चाथ कथा सार्ववतारजा ।।

ततः सांख्यसमुददेशः प्रपञ्चासत्वकीर्तनम् ।

मार्कण्डेयस्यं चरितं पुराण श्रवणं फलम् ।

यःश्रृणेति नरोभक्त्या पुराणमिदमादरात् ।।

यस्तुव्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ।

तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयतम् ।।

कार्तिक्यां द्विजवर्याय स लभेद ब्रम्हणं पदम् ।

श्रृणोति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणीभिमाम् ।।

मार्कण्डेय पुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ।।

(नारद पुराण, पूर्व भाग, अध्याय – ८७)

मार्कण्डेय पुराण में शक्ति का स्वरूप

शक्ति परम रहस्यमय एक अति निगूढ़ दुर्ज्ञेय तत्व हैं। इनके स्वरूप का याथातथ्येंन परिचय पाना अत्यन्त कठिन है। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि यह शेषशायी नारायण हरि की महामाया हैं। त्रिगुणात्मिका प्रकृति इनका शरीर है। इनके शरीर के

अंगभूत, सत्व, रज एवं तम नामक गुणों से समस्त चेतन, अचेतन जगत व्याप्त है। देव, असुर, गन्धर्व, राक्षस एवं मनुष्य की तो बात ही क्या ब्रम्हा, विष्णु, महेश, परमेश्वर की यह त्रिमूर्ति भी इनकी महिमा के भीतर हैं। इनसे प्रभावित एवं इन्हीं से रचित है। ब्रम्ह, जिस आदि–अन्तहींन शाश्वत सूत्र में सृष्टि और प्रलय रूप श्वेत तथा श्याम वर्ण के पुष्पों से प्रपन्च की यह महती माला ग्रथित हो रही है, स्वभावतः निर्गुण है। उसमें किसी प्रकार की गुणवृत्ति का उदय नहीं हो सकता। अतः उस ब्रम्ह को शक्तितत्व का ज्ञान होने की तो कोई सम्भावना ही नहीं और जो सगुण ब्रम्ह है, वह तो शक्ति के अंगभूत गुणों से ही गठित है, फिर उसे अपनी उद्रावयित्री भगवती का सन्धान पता कैसे लग सकता है। मार्कण्डेयपुराण में ब्रम्हा का निम्न कथन सर्वथा सत्य है :–

यया त्वया जगत्सृष्टा जगत्पातात्ति यो जगत् ।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।

कारितास्ते यतो तस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।।

जगत की रचना, रक्षा तथा संहार करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधींन कर देती हैं। ब्रम्हा, विष्णु एवं शिव को जिनकी इच्छा से शरीर धारण करना पड़ता है, उन महामहिमशालिनी महामाया की स्तुति कौन कर सकता हैं।

समस्त जिज्ञासु जगत–महर्षि मार्कण्डेय का इस बात के लिए ऋणी नहीं है कि उन्होंने कौष्टुकि को श्रोता बनाकर देवीतत्व के उस उपदेश को, जिसे मेधा ऋषि ने राजा सुरथ और समाधि वैश्य को दिया था, जगत के समक्ष प्रस्तुत किया। यह उपदेश उपक्रम, उपसंहार सहित 'सप्तशती' नाम से प्रख्यात है और मार्कण्डेय पुराण

के ८१ से ६३ सी–३ तक कुल तेरह अध्यायो में वर्णित हैं। इस उपदेश से शक्तित्व के ऊपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सप्तशती के प्रथम अध्याय में जो मेधा ऋषि के अपने वचन हैं, उस अध्याय के अन्तिम भाग में ब्रम्हा द्वारा एवं चतुर्थ तथा पंचम एवं एकादश अध्यायों में देवताओं द्वारा जो देवी की स्तुति है, उन सब से देवीतत्व का जो परिचय प्राप्त होता है, वह इस प्रकार का है –

शक्तिरूपा देवी सत्व, रज एवं तम रूप प्रकृति तथा सत्, चित्त और आनन्द रूप पुराण पुरुष की मिश्रित अयुतसिद्धि मूर्ति हैं। इन्हें केवल जड़ प्रकृति, माया, अविद्या, वासना, संवृत्ति अथवा शुभाशुभ कर्मरूप अदृष्टात्मक शक्ति के रूप में देखना बिल्कुल असमीचीन है। वह चेतन एवं सक्रिय हैं । इनमें निग्रह एवं अनुग्रह का सामर्थ्य है। ये अनादि एवं अनन्त हैं। इनकी शक्ति अपार है। इनकी प्रभुता के समक्ष बड़े–बड़े ज्ञानी जनों की भी कुछ नहीं चलती। वे इनके हाथ के खिलौने हैं। ये ही चराचर जगत का सृजन करती हैं तथा ये ही बन्ध एवं मोक्ष का कारण है। ये बड़े–बड़े ईश्वरों की भी ईश्वरी हैं। मेधा ऋषि का निम्नलिखित कथन अक्षरशः यथार्थ है कि :–

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ।।

(मार्क0 पु0 ८१.४२.४४)

देव, मानव कोई उन्हें अपनी शक्ति से नहीं जान सकता। वह अपनी कृपा, अपनी इच्छा से ही जानी जा सकती हैं। भौमसुख, स्वर्गसुख एवं मोक्षसुख सभी उनके अनुग्रह मात्र से ही सुलभ होते हैं । इसी कारण मेधा ऋषि ने उनकी महिमा का उपदेश कर महाराज सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य को उनकी पूजा, आराधना के लिए प्रेरित किया था । यथा –

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ।
आराधिता सैव नृणां भोस्वर्गापवर्गदा ।।

(मार्क पु0 सी–६३.३)

कतिपय लोगों का यह भी भाव हो सकता है कि जब शक्ति का स्वरूप इतना रहस्यमय एवं दुरूह है, तो उन्हें बिना जाने–समझे उनकी आराधना कैसे हो सकती है? अन्धकार में हास्य फैलाने से क्या लाभ हो सकता है ? परन्तु इस भाव को प्रश्रय देना उचित नहीं प्रतीत होता। यह भाव मानव को मार्गच्युत बनाकर उसे अनर्थ के गर्त में गिराने वाला हैं। वह परम करुणामयी महामाया जगत की जननी हैं। मनुष्य उनका छोटा सा शिशु है। शिशु को माता का इतिहास भले ही न ज्ञात हो, परन्तु उसे प्राप्त करना, उसकी मधुमय गोद मे बैठना, उसके स्तन्यामृत का पान करना कठिन नही है जिस प्रकार लोक की साधारण माता अपने बच्चे की पुकार सुनते ही अधीर होकर उसकी ओर दौड़ पड़ती है। उसका संकेत मात्र पाते ही अपनी बलवान बाहुओं से उसे उठाकर गले से लगा लेती है, उसी प्रकार वह जगन्माता महामाया भी मानव की कातर पुकार सुनते ही, उसका अपनी ओर थोड़ा सा भी झुकाव होते ही उसे सर्वस्व दान देने को तैयार रहती हैं।

मार्कण्डेय–पुराण में शक्ति के अवतारों की व्यापकता तथा शक्ति–स्वरूपों का दार्शनिक विवेचन–

मार्कण्डेय–पुराण के ८१वें अध्याय से ९३वें अध्याय पर्यन्त का प्रकरण लोक में 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से प्रख्यात हैं। दुर्गा या देवी विश्व की मूलभूत शक्ति की संज्ञा है। विश्व की मूलभूत चिति–शक्ति ही यह देवी हैं। देवों की माता अदिति इन्हीं का रूप हैं। यही एक होते हुए भी इडा, भारती एवं सरस्वती इन तीन देवियों के रूप में विभक्त हो जाती हैं। वेदों में जिनका 'वाक' के रूप में विशद निरूपण किया गया है, वह भी देवी अथवा शक्ति का ही रूप हैं। वसु, रुद्र, आदित्य इन तीन देवताओं या त्रिक के रूप मे उस महाशक्ति का संचरण होता है। ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त में (१०.१२५) इस शक्ति के माहात्म्य का बहुत ही उदात्त वर्णन पाया जाता हैं, जिसका हिन्दी–भाषा–रूपान्तरण यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत हो रहा है –

मित्र और वरुण इन्द्र और अग्नि, दोनों अश्विनी कुमार – इनको मै ही धारण करती हूँ । विश्वेदेव मेरे ही रूप हैं। वसु, रुद्र एवं आदित्य – इस त्रिक का संचरण मेरे ही द्वारा होता है। ब्रम्हणस्पति, सोम, त्वष्टा, पूषा एवं भग – इनका भरण करने वाली भी मैं ही हूं। राष्ट्र की नायिका मुझे ही समझो। मैं ही वसुओं का संचय करने वाली वसुपत्नी हूं । समस्त यज्ञ–यागादि अनुष्ठानों में मेरा ही प्रथम स्थान है। सबका ज्ञान मेरा स्वरूप हैं। देवों ने मुझे अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित किया हैं। अपने अनेकानेक आवास स्थानों में प्रतिष्ठित किया है। अपने अनेकानेक आवास स्थानों में मैं अपने पुष्कल रूप से भर रही हूँ। जो देखता है, सुनता है, अथ च साँस लेता है, वह मेरी ही शक्ति

से अन्न खाता है। यद्यपि सामान्यतः लोग इसे नहीं जानते, परन्तु वह सब मेरे ही अधीन हैं। यह सत्य हैं, जो मैं तुमसे कहती हूँ, इसे सुनो। देवता एवं मानव दोनों को जो प्रिय है, उस शब्द का उच्चारण मुझसे ही होता है। मैं जिसका वरण करती हूँ, उसे ही उग्र, ब्रम्हा, ऋषि एवं मेघावी बना देती हूँ। रुद्र के धनुष में मेरी ही शक्ति प्रविष्ट है, जो ब्रम्हद्रोही का हरण करती है। मनुष्यों के लिए संघर्ष का विधान करने वाली मैं ही हूँ। मैं ही द्यावापृथ्वी के अन्तराल में प्रविष्ट हूँ। पिता द्युलोक का प्रसव करने वाली मैं ही हूँ। मेरा अपना जन्मस्थान जल के अन्तर्गत पारमेष्ठ्य समुद्र में है। यहीं से जन्म लेकर मैं समस्त लोकों में व्याप्त हो जाती हूँ। मेरी ऊँचाई द्युलोक का स्पर्श करती है। झंझावत की तरह श्वास लेती हुई मैं सस्त भुवनों का आरम्भण या उपादान हूँ। द्युलोक और पृथ्वी से भी परे मेरी महिमा हैं। (ऋग्वेद –१०/१२५)

इस सूक्त में जिस वाक् तत्व का वर्णन किया गया है, वह देवी का ही रूप हैं। प्रायः समझा जाता है कि ऋग्वेद में पुरुषसंज्ञक देवताओं का प्राधान्न है, परन्तु तथ्य यह है कि मित्र, वरुण, अग्नि एवं इन्द्र आदि जितने भी प्रधान देवता हैं, उन सबको जन्म देने वाली मूलभूत शक्ति देवमाता अदिति हैं। उसका वर्णन सैकड़ों प्रकार से ऋग्वेद में किया गया है। वही अमृत की अधिष्ठात्री और यज्ञों की विधात्री विश्वरूपा कामदुधा शक्ति है, जिसे माँ भी कहा जाता है। द्यौ, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी, माता, पिता एवं पुत्र, विश्वदेव, एवं पञ्चजन, देश एवं काल–सब उस अदिति के ही रूप हैं। उसके वरदानों का कोई अन्त नहीं है। वह वाक् शक्ति मूलरूप में एकपदी या अपदी है, अर्थात वह शुद्ध स्थिति तत्व है। स्थिति ही उसकी पर या अव्यक्त अवस्था है, परन्तु उसी के द्वारा त्रिगुणात्मक विश्व जन्म ग्रहण करता है, जो उसका अपर या मूर्तरूप है।

वैदिक शक्तितत्व की यह परम्परा पुराणों में भी आई है। यह पुराण–विद्या का एक महत्वपूर्ण अंग है। देवी भागवत के अनुसार –

'शक्तिः करोति ब्रह्माण्डम् । (१.८.३७)

अर्थात शक्ति ब्रह्माण्ड की रचना करती है। वेदों में जिसे बह्म कहा गया है, वही परमात्मिका शक्ति है। यथा –

ते वै शक्तिं परां देवी परमाख्यां परमात्मिकाम् ।

ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ।।

(देवीभागवत – १.८.४७)

भगवान विष्णु में सात्विकी शक्ति, ब्रह्मा में राजसी शक्ति एवं शिव में तामसी शक्ति का रूप है। निर्गुण शक्ति ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के रूप में सगुण रूप धारण करती है। शक्ति से युक्त होकर ही देवता अपना–अपना कार्य करते हैं। ब्रह्मा का विवेक सर्वगत शक्ति का ही रूप है :–

'एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते'।

ब्रह्मा में सृष्टि–शक्ति, विष्णु में पालन–शक्ति, रुद्र में संहार–शक्ति, सूर्य में प्रकाशिका शक्ति, अग्नि में दाह–शक्ति वायु में प्रेरणा–शक्ति – ये सब आद्या शक्ति के ही रूप हैं। जो शक्ति से हीन हैं, वह असमर्थ हैं। शिव भी शक्ति के बिना शव बन जाते हैं – यही समस्त शास्त्रों का सार तत्व हैं ।

पुराणों में इस शक्ति के अनेक नाम हैं । इन्हें ही **अम्बिका, दुर्गा, कात्यायनी, महिषासुरमर्दिनी, ब्राह्मी, रौद्री, वैष्णवी, ऐन्डी, वाराही, नारसिंही, कौमारी,**

चामुण्डा प्रभूति नामों से निरूपित किया गया है। मार्कण्डेय–पुराण के ८१ से ८३ तक के तेरह अध्यायों में वर्णित श्री दुर्गा–सप्तशती' नाम से प्रख्यात देवी माहात्म्य एक विशिष्ट मेधावी मनस्वी की रचना है। इसमें अत्यन्त उदान्त शैली में देवी की महिमा का वर्णन किया गया है। गुप्तकालींन संस्कृत–भाषा की जो नई शक्ति थी, उसका विलक्षण परिचय इस ग्रन्थ में कई स्त्रोतों में दिखाई पड़ता हैं। देवी के साथ जिन असुरों के युद्धों का यहाँ वर्णन है, वे भी सहेतुक एवं प्रतीकात्मक संज्ञायें हैं।

विश्व एवं उसकी प्रत्येक रचना एक–एक शाखा या टहनी के समान है, जो पंचवर्षा होती हैं, अर्थात प्रत्येक टहनी में पाँच–पाँच पोरियाँ है। उनमें से तीन पोरियाँ दिखाई पड़ती हैं। ये हैं – पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्यौ । इनसे ऊपर या इनके गर्भ में दो और हैं, उनमें पहली स्वंयभू तथ दूसरी परमेष्ठी कही जाती हैं। ये दोनों अव्यक्त हैं। दोनो ही तम का स्वरूप हैं, क्योंकि इनमें व्यक्त सृष्टि स्फुट नहीं है। इन्हें ही नासदीय–सूक्त में –

'तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रे' ।

कहा गया है। आरम्भ में तम के गर्भ में तम छिपा हुआ था, अर्थात परमेष्ठी ने स्वयंभू का आवरण कर रखा था। स्वंयभू अव्यक्त अज्ञेय सृष्टि का मूल बीज या पितृ तत्व है। परमेष्ठी उससे उत्पन्न महिमा भाव, महत्वत्व या माता है। इसे ही श्रीमद् भगवद्‌गीता में **'मम योनिर्महद् ब्रहम'**– कहा गया है। स्वंयभू अग्नि है। परमेष्ठी सोम, जल या समुद्र है, जिसे **'आपो नाराः'** भी कहा जाता है। स्वंयभू बीजप्रद पितृतत्र्व है और परमेष्ठी मातृत्र्व है। स्वंयम्भू सत्य एवं परमेष्ठी ऋत है। इन्हीं के दाम्पत्य भाव से सृष्टि होती है । स्वंयम्भू स्थिति तत्व है। उसका कोई चरित्र नहीं। परमेष्ठी गति तत्व

हैं। वहाँ से ही सब चंचल गतियों और चरित्रों का विकास होता है। स्वंयम्भू देव है तथा उसी की शक्ति को देवी कहा जाता है। परमेष्ठी वरुण एवं अन्धकार का रूप है। वहीं पर समग्र असुरों का जन्म माना जाता है। असुरों तथा देवों के प्रतिद्वन्दी भाव की जन्मभूमि वही हैं। स्वंयम्भू अवर्णनीय तत्व तम है, वास्तविक रात्रि परमेष्ठी है। देवी, माता, रात्रि, सोम, असुर – इन सभी का सम्बन्ध परमेष्ठी से हैं।

मनुष्य शरीर में ही हम इन पाँचों को समझ सकते हैं । स्थूल शरीर पृथिवी रूप है। पंचप्राणयुक्त या पंच इन्द्रियों का अनुगामी मन अन्तरिक्ष हैं। विज्ञानात्मिका बुद्धि, सूर्य रूप है। बुद्धि से ऊपर महान आत्मा हैं। वह परमेष्ठी का रूप है। महान या विश्वात्मा ही परमेष्ठी हैं। उससे ऊपर या उसके भीतर अव्यक्त आत्मा या स्वंयम्भू है।

स्वंयम्भू–गर्भित परमेष्ठी की शक्ति का ही नाम देवी है। उसी के विकास से सूर्य एवं पृथिवी का जन्म होता है। सूर्य और पृथिवी का तात्पर्य भौतिक पिण्ड नहीं है, वे तो प्रतीक या संकेत मात्र हैं, किन्तु उनका अर्थ वे माता–पिता हैं, जिनसे प्रत्येक प्राणी जन्म प्राप्त करता है। द्यौः पिता, पृथिवी माता – यही जन्म होने का सूत्र है। इस प्रकार प्रत्येक रचना के दो भाग माता–पिता होते हैं। एक अव्यक्त या अमृत रूप, जिन्हें स्वंयम्भू–परमेष्ठी का जोड़ा कहते हैं। दूसरे व्यक्त एवं मर्त्य, जिन्हें सूर्य–पृथिवी का जोड़ा कहा जाता है। स्वंयम्भू देव की शक्ति से विकसित परमेष्ठी–रूपिणी देवी समग्र विश्व की मूल शक्ति है। उसे ही वाक–शक्ति भी कहा जाता हैं। उसी देवी का चरित्र असुरों के साथ युद्धों के रूप में इस महनीय ग्रन्थ में निरूपित किया गया है।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिये कि आठवें मनु सावर्णि की कथा का प्रारम्भ करते ही देवी माहात्म्य या देवी का चरित्र ही प्राथम्येन क्यों निरूपित किया गया। पूर्व में कहा गया है कि जो अहः या शुक्ल तत्व है, वह स्वंयम्भू मनु से प्रारम्भ कर वैवस्वतः मनु पर्यन्त रहता है। यह प्रकाश, ज्योति एवं ज्ञान का समय है उसे उद्ग्राभ काल या सूर्य के ऊपर उठने का समय कहा जाता है। मनुष्य लोक के दिन में मध्यान्ह के अनन्तर सूर्य नीचे आने लगता है वह उसका निग्राभ काल है। उसका सम्बन्ध विशेष रूपेण रात्रि या तम से है। वहीं से प्रथमतः सात मन्वन्तरों की छाया के रूप में दूसरे सावर्गी मनुओं का काल प्रारम्भ हो जाता है। जो प्रक्रिया मनुष्य के एक अहोरात्र – (रात–दिन) चक्र में होती है, वही ब्रह्म–चक्र या ब्रह्मा के दिव्य वर्ष सहस्त्र रूप आयुष्य काल में होती है। सात मन्वन्तर भुक्त कोटि में है। अतएव इन्हें प्रत्यक्ष का विषय कहना चाहिये । आठवें सावर्णि अभुक्त मन्वन्तरों के प्रतिनिधिहैं। वे परोक्ष काल या रात्रि के प्रतीक हैं। इस कारण सावर्णि के साथ ही देवी–चरित्र का सम्बन्ध रखा गया। असुरों का प्राबल्य रात्रि में ही होता हैं। यह समग्र चरित्र की कालरात्रि के निरूपण से ही सम्बन्धित है।

ज्ञान या विवेक का प्रतीक दिन है और अज्ञान या मोह का प्रतीक रात्रि है। असुरों के साथ युद्ध एवं उनके विनाश की कथा विवेक की मोह पर विजय की कथा है। असुर तत्व कहीं कोई बाहरी सत्ता नहीं है। ये तो अपने ही आभ्यन्तर में उत्पन्न होने वाले मोह के नये–नये रूप हैं, जिनसे ज्ञान ढक जाता है। इस कहानी के आरम्भ में इसका स्पष्ट संकेत हैं। मेधा ऋषि शुद्ध विज्ञान या विवेक के प्रतीक हैं, जिन्हें कभी भी मोह नहीं होता । राजा सुरथ एवं समाधि नामक वैश्य दोनों को दो प्रकार का मोह होता है। एक को लौकेषणा एवं दूसरे को वित्रैषणा या धन सम्पत्ति का। इस मोह को दूर करने के लिए मेधा ऋषि ने भगवान की चित–शक्ति के माहात्म्य का श्रवण कराया।

एक ओर तो वह चित्त–शक्ति प्रत्येक के हृदय में निवास करती है, अपरतश्च वही चित–शक्ति विश्व के नाना रूपों में प्रकट भी होती है।

भारतीय पौराणिक दृष्टि से यह विश्व देवताओं तथा असुरों के संघर्ष का परिणाम है। वैदिक भाषा में इसे दैवासुरम कहते हैं। वेद, ब्राह्मण और पुराण तथा काव्य– इन चारों में दैवासुरम् संग्राम का विविध वर्णन पाया जाता हैं। सृष्टि का मूल कोई एक विलक्षण तत्व है, उसे आज या अजन्मा कहा जाता है। उससे कोई रचना नहीं होती। शुद्ध स्थिति–भाव ही उसका रूप हैं। उसको ही आज एकपाद् कहते हैं। जिसमें पाद् या गति न हो, वह गतिहींन स्थिति तत्व ही अपाद् कहलाता है। अपाद् और एकपाद् – दोनों का एक ही संकेत है। बाजीगर बकरे को डमरू पर खड़ा करके उसके चारों पैरों को जोड़ देता है, वही अज एकपाद या गतिहींन स्थिति भाव है।

स्थिति को ही निद्रा भाव कहा जाता है। शेषशायी विष्णु इसी स्थिति भाव के प्रतीक हैं। सृष्टि के लिए उनका जागरण या क्षोभ आवश्यक है। गति के उदय से ही विश्व की रचना सम्भव होती है। इसी का उल्लेख श्री दुर्गा सप्तशती के आरम्भ में किया गया है कि निद्रा भगवान विष्णु के शरीर से बाहर हो गयी और मधु–कैटभ नामक असुरों का जन्म हुआ। गति क्रियात्मिका शक्ति का ही नाम हैं। गति के साथ आगति का गठबन्धन हैं। यही द्विविरुद्ध भाव है। इसी से एक तत्व बहुधा बनता हैं। बहुधा भाव या नानात्व सेही विश्व का आविर्भाव होता है। गति–अगति को ही देव और असुर, दिन और रात्रि, ज्योति और तम प्रभृति अनेक द्वन्दों के रूप में हम प्राप्त करते हैं। इनमें जिनका असुर–नामा अभिधान किया जाता है, उनका सम्बन्ध तम, मृत्यु तथा अनृत से हैं। पंचभूत, प्राण एवं मन प्रत्येक धरातल पर आसुरी संघर्ष जारी हैं। उसकी शान्ति के बिना मानव का कल्याण नहीं हो सकता। इस संघर्ष में देवताओं की विजय अन्तिम रूप

से निश्चित हैं। इसीलिए जगज्जननी देवी उनकी सहायक बनती हैं किन्तु जब तक असुर देवताओं पर आक्रमण नहीं करते, तब तक वह उनकी सत्ता के भी सहन करती है।

मार्कण्डेय–पुराण के 81वें से 93वें अध्याय तक कुल तेरह अध्यायों में (दुर्गा सप्तशती के रूप में) शक्तिरूपा देवी का माहात्म्य निरूपित किया गया है। इस शक्ति –माहात्म्य का तीन भागों में विभक्त किया गया है –

1– पूर्व चरित्र – इसमें मधु–कैटभ नामक असुरों के वध की कथा का वर्णन हैं।

2– मध्यम चरित्र– इसमें महिषासुर के वध की कथा वर्णित हैं।

3– उत्तर चरित्र– इसमें शुम्भ–निशुम्भ, उनके सेनापति, चण्ड–मुण्ड एवं रक्तबीज के साथ संग्राम तथा उनके वध की कथा का वर्णन किया गया है।

कथा का सारांश इस प्रकार है – सावर्णि मन्वन्तर में सुरथ नाम के एक राजा थे। कोला विध्वंसी नामक शत्रुओं ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। वे हार गये और घोड़े पर चढ़कर अकेले ही वन में चले गये। वन में महाराज सुरथ ने मेघा नामक महर्षि का आश्रम देखा। मेघा ऋषि के आश्रम में भी वे मोहवश अपने पुर, प्रजा, कोष, हाथी प्रभृति के विषय में ही चिन्ता करते रहें। उसी आश्रम में उन्होंने समाधि नामक एक वैश्य को भी देखा। समाधि–नामक वैश्य अत्यन्त धनवान था। उसके स्त्री–पुत्रादि ने उसकी समस्त सम्पत्ति का अपहरण कर लिया तथा उसे घर से निकाल दिया। इतना होने के बाद भी समाधि नामक वैश्य निरन्तर अपने पुत्रों एवं स्त्री की ही चिन्ता में डूबा रहता था। महाराज सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य–दोनों को मोह की ही व्याधि लगी थी । दोनों मेघा ऋषि के पास गये तथा अपने–अपने वृतान्त से उन्हें अवगत कराया। मेघा ऋषि ने उनका पूर्ण वृतान्त सुनकर देवी के माहात्म्य का निरूपण करे हुए उनका उदबोधन किया। महाराज सुरथ को सत्तातन्त्र में तथा समाधि नामक वैश्य को अर्थतन्त्र में फंसा होने के कारण मोह हुआ। मनुष्य के मन की यही दो वृत्तियां प्रधान

कही गयी है, जिनमें उद्‌बोधन की आवश्यकता होती है। मेघा ऋषि ने उन दोनों को समझाया–

'ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे

विषयाश्च महाभाग यान्ति चैंव पृथक पृथक।।

दिवान्धाः प्राणिनः के चिद्रात्रावन्धास्तथापरे।

केचिददिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्य दृष्टयाः।।

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते नाहि केवलम्।

यतोहि ज्ञानिः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।।

ज्ञानञ्च तन्मनुष्याणा यत्रेषां मृगपक्षिणाम्।

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यतथो–भयोः।।

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गञ्छावचञ्चुषु

कण मोक्षादृताम् मोहात्पीड्यमाना नपिक्षुधा ।।

मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति।

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किन्न पश्यसि।।

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः।

महामहामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।।

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः।

महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोहयते जगत्।।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हिसा।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।।

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतचराचरम्।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।।

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।

ससारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरमेश्वरी।।

(मार्क.पु.81–32–42)

अर्थात् मेधा ऋषि ने कहा कि "हे महाभाग! विषय–मार्ग का ज्ञान तो समस्त जीवों को है। इसी प्रकार विषय भी सभी के लिए अलग–अलग है। संसार के कुछ

प्राणी दिन में नहीं देखते तथा कुछ दूसरे रात्रिकाल में नहीं देखते तथा कुछ जीव ऐसे होते हैं, जो दिन और रात्रि में बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार प्राणी है, परन्तु केवल मनुष्य ही वैसा नहीं होता, पशु–पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्यों की समझ भी उसी प्रकार की होती है, जिस तरह की मृगों एवं पक्षियों की होती है तथा जैसी मनुष्यों की होती है, वैसी ही उन मृग पक्षी प्रभूति की भी होती है। यह तथा अन्य बातें की अधिकांशतः दोनों में समान ही होती है। समझदार होने पर भी इन पक्षियों को देखों, ये स्वतः तो भूख से पीड़ित है, फिर भी मोहवश अपने बच्चों की चोंच में कितने चाव से अन्न के दाने डाल रहे हैं। हें नरश्रेष्ठ! क्या तुम्हे नहीं दिखाई दे रहा है कि ये मुनष्य अपने किये गये उपकार का प्रतिफल प्राप्त करने हेतु पुत्रों की निरन्तर ही अभिलाषा करते रहते हैं। यद्यपित उन सब में समझ की कोई कमी नहीं है, तथापि वे संसार की जन्म–मरण की परम्परा रूपी स्थिति को बनाये रखने वाली भगवती महा–माया महाशक्ति के आकर्षक प्रभाव द्वारा ममतामय भँवर से मुकत मोह के गहरे गर्त्ते में गिराये गये हैं इसलिए इस विषय में आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

जगदीश्वर भगवान् विष्णु की योगनिदारूपिणी जो भगवती महामाया है, उन्ही से यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भवगती महामाया देवी ज्ञानियों के भी चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती है। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि करती है तथा वे ही प्रसन्न होने पर मुनष्यों को मुक्ति के लिए वरदान भी देती है। वे ही परा विद्या संसार रूपी बन्धन और मोक्ष की हेतुभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरों की भी अधीश्वरी हैं।"

यह सुनकर राजा सुरथ ने पुनः प्रश्न किया कि 'हे भगवान्! आप जिसे महामाया कर रहे है, वह देवी कौन–सी है? उनका जन्म, कर्म, स्वभाव एवं स्वरूप क्या है? यह सब कृपया विस्तारपूर्वक बतायें'।

इस प्रश्न के उत्तर में मेधा ऋषि ने कहा–

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।

तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याऽप्यभिधीयते।।

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते।

आस्तीर्य शेषमन्भजत्कल्पान्ते भगवान प्रभुः।।

तदा द्वावसुरौ धोरौ विख्यातौ मधुकैटभो।

विष्णुकर्ण–मलोद्भूतौ हन्तु ब्रह्मा प्रजापतिः।

दृष्ट्वा तावसुरौ चौग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।।

विबोधनार्थाय हरे हरिनेत्र कृतालयाम्।।

विश्वेश्वरी जगद्धात्रीं स्थिति संहार कारिणीम्

निद्रां भगवती विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः।।

(मार्क पु.81, 46–52)

अर्थात वह देवी नित्य हैं, सम्पूर्ण जगत उन्ही का रूप है एवं उन्होने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकटय अनेक प्रकार से होता है। व मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्यस्वरूपा तथा अन्जमा हैं, तथापि जब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए देवी प्रकट होती है, उस समय लोक में उत्पन्न हुई कहलाती है। कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण संसार एकार्णव में निमग्न हो रहा था तथा सब के प्रभु भगवान् विष्णु शेष्नाग की शय्या बनाकर योगनिद्रा का आश्रय लेकर सो रहे थे, उस समय उनके कानों के मैल से दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए जो मधु और कैटभ

के नाम से विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्मा जी का वध करने को तैयार हो गये। भगवान् विष्णु के नाभिकमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्मा जी ने जब उन दोनों भयानक असुरों को अपने पास आया हुआ है भगवान् को सोया हुआ देखा, तब एकाग्रचित्त होकर उन्होने भगवान् विष्णु को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगानिद्रा का स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धरण करने वाली, संसार का पालन तथा संहार करने वाली एवं तेज स्वरूप भगवान विष्णु की अनुपम शक्ति हैं, उन्ही भगवती महाशक्ति निद्रादेवी की भगवान ब्रह्मा स्तुति करने लगे।

यह स्तुति अत्यन्त उत्कृष्ट है। इसमें वैदिक और लौकिकनामों तथा विशेषणों के द्वारा शक्ति का वर्णन किया गया है। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, स्वर, अक्षर, प्रणव की तीन मात्राएं, चौथी अर्धमात्रा, सावित्री–ये सब देवी के रूप कहे गये हैं। वे ही जगत् को रचती, पालती तथा अन्त में उसक संहार करती है। महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहा एवं महासुरी उसी महादेवी शक्ति की संज्ञाएं है। तीन गुणों से युक्त प्रकृति भी वे ही है। कालरात्रि, महारात्रि एवं मोहरात्रि उसी महाशक्ति दकेवी की अवस्थाएं है। बुद्धि, श्री एवं ईश्वरी वे ही है। ही, लज्जा पुष्टि, तुत्रि, शान्ति एवं क्षमा उन्ही के रूप हैं। वे ही सौन्दर्य की अधिष्ठात्री हैं। वे ही पर एवं ऊपर से परे भी है। सत् एवं असतू दोनो से वे पूर्ण हैं।

भगवान् विष्णु के शरीर मे निद्रा रूप से प्रविष्ट हे देवी। तुम अपना उदार प्रभाव प्रकट करो और उन्हे प्रबोधित करों। यह सुनकर वह देवी विष्णु के शरीर से बाहर आयी और भगवान विष्णु जागे। उन्होने उठकर मधु–कैटभ नामक दन दो असुरों से युद्ध किया। प्रसन्न होकर उन असुरो ने भगवानृ विष्णु से वर मांगने को

कहा। विष्णु ने यह वर मांगा कि तुम दोनो मेरे लिए बध्य हो जाओ और ऐसा ही हुआ।

इसके अनन्तर मध्यम चरित्र में महिषासुर के जन्म, उपद्रव, देवों की पराजय एवं चण्डिकारूपी देवी द्वारा उसके वध की कथा है। उस वध से प्रसन्न हुए देवताओं ने देवी की अत्यन्त भव्य स्तुति की–

शक्रादयः सुरगणा निहते ऽतिवीर्ये
तस्मिन् दुरात्मनि सुरारिबले–देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनमशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्ष पुलका–द्गम चारू देहाः।।
देव्या यया ततमिंद जगदात्मशक्तया
निश्शेष देवगणशक्ति समूह मूर्त्या।
तामम्बिकामाखिल देव महर्षि पूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सानः।।
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्चन हि वक्तुमलं बलंच।
सा चण्डिकाखिल जगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु।।
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवने–एवलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतिधयां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जां
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवी विश्वम्।।
किंम वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्य–मसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चारितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुर–देवगणादि–केषु।।
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै–
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत–

मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।।

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन

तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।

स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्ति हेतु–

रूच्चार्य से त्वमत एवं जनैः स्वधा च।।

या मुक्ति हेतु रविचिन्त्य महाव्रता त्व–

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रिय तत्वसारैः।

मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त समस्तदोषै–

र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि।।

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्युजुषां निधान–

मुद्गीथरम्यपद पाठवतां च साम्नाम्।

देवी त्रयी भगवती भवभाव–नाय।

वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।।

मेधासि देवि विदिताखिल शास्त्रसारा

दुर्गासि दुर्गभव सागर नौर सड़गा।

श्रीः कैटभारिहृदयैक कृताधिवासा

गौरी त्वमेव शाशिमौलिकृत प्रतिष्ठा।।

ईषत्सहासममलं परिपूर्ण चन्द्र–

बिम्बानुकारि कनकोत्तम कान्तिकान्तम्।

अत्यद्भुतं प्रह्वतमात्ररूषा तथापि

वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषसुरेण।।

दृष्टवा तु देवि कुपितं भ्रकुटी कराल–

मुद्यच्छशाड़गसदृशच्छवि यन्न सद्यः।

प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्र

कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन।।

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय

सद्यो विनाशमसि कोपवती कुलानि।

विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत–,

नीतं बलं सुविपुलं महिषा सुरस्य।।
ते सम्भता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एवं निभृतात्मज भृत्यदारा
येषां सदाभ्युदा भवती प्रसन्ना।।
धर्म्याणि देवी सकलानि सदैव कर्मा–
ण्यात्यादृतः प्रतिदिनं सृकृती करोति।
स्वर्ग प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा–
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन।।
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्रय दुःख भयहारिणी का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणायः सदा र्द्रचित्ता।।
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्यु–मधगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहिमान् विनिहंसि देवी।।
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी।।
खड्ग प्रभा निकरविस्फु–रणैस्त थोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिव हेन दृशोऽसुराणम्।
यन्नागता विलयमं शुभदिन्दुखण्ड–
योग्याननं तब विलोकयता तदेतत्।।
दुर्वत्तवृत्तशमनं तब देवि शील
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्य च हन्तृ ह्रतदेव पराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्।।

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभश्कार्यतिहारि कुत्र।

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येर देवि वर–देभुवनत्रयेऽपि।।

त्रैलोक्यमेत–दखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।

नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त–
मस्माकमुन्मद सुरारिभवं नमस्ते।।

शूलून पाहि नो देवि पाहि–खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिः स्वनेन च।।

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।।

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यार्थघोराणि तै रक्षास्मों–स्तथा भुवम्

खड्गशूलगदादीनी यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।

(मार्ग. पु. 84.3–27)

अर्थात् अत्यन्त पराक्रमी एवं दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य सेना का महाशक्ति देवी के द्वारा संहार कर दिये जाने पर इन्द्र आदि देवगण को प्रणाम करने के लिए गर्दन् तथा कन्धे को झुकाकर उन भगवती महाशक्ति दुर्गा की उत्तम वचनों के द्वारा स्तुति करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अंगों में अत्यन्त हर्ष के कारण रोमांच हो आया था। देवगणों ने कहा–

समग्र देवताओं की शक्ति का समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन्होने अपनी शक्ति से समस्त संसार को व्याप्त कर रखा है, सभी देवताओं एवं महर्षियों की पूजनीया उस जगदम्बिका को हम परम भक्तिपूर्वक

प्रणाम करते हैं। वे हम सभी का कल्याण करें। जिनके अनुपम प्रभाव एवं बल का वर्णन करने में भगवान् शेषनाम, प्रजापति ब्रह्मा जी एवं महादेव शिवजी भी समर्थ नहीं है। वे भवगती चण्डिका समस्त जगत् एवं अशुभ भय का नाश करने का विचार करें।

जो पुण्यात्माओं के ग्रहों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से पापियों के यहां दरिद्रता रूप से शुद्ध अन्तः करण वाले पुरूषों के हृदय में बुद्धि रूप से, सत्पुरूषों में श्रद्धा रूप से एवं कुलीन मुनष्यों में लज्जा रूप से निवास करती है, उन आप भगवती महामाया दुर्गा जी को हम प्रणाम करते हैं। हे देविः आप समग्र विश्व का पालन करें।

हे देविः आपके इस अचिन्त्य रूप का असुरों का नाश करने वाले भारी पराक्रम का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के सामने युद्ध में प्रदर्शित आपके अद्भुत आपके चरित्रों के सामने युद्ध में प्रदर्शित आपके अद्भुत आपके चरितों का हम किस प्रकार वर्णन करें। आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण है। आपमें सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण ये तीन गुण विद्यमान हैं, फिर भी दोषों के साथ आप का संसर्ग नहीं जाना पड़ता। भगवान विष्णु एवं महादेव शिव प्रभृति देवगण भी आपका पार नहीं पाते। सबका आश्रय आप ही है। यह समस्त जगत् आपका अशंभूत है, क्योंकि आप सबकी आदिभूत अत्याकृता परा प्रकृति है।

हे देविः सम्पूर्ण यज्ञों में जिसके उच्चारण से समग्र देवगण तृप्तिलाभ करते हैं, वह स्वाहा भी आप ही हैं। इसके अतिरिक्त पितरों की तृप्ति का कारण भी आप ही है, इसीलिए सभी लोग आपको स्वधा भी कहते हैं। हे देविः जो मोक्ष—प्रप्ति का साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषों

से रहित, जितेन्द्रिय तत्वों को ही सार वस्तुत मानने वाले एवं मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते है, वह भगवती परा विद्या पर ही हैं।

आप शब्दस्वरूप है, अत्यन्त पवित्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्‌गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का भी आधार आप ही है। आप देवी त्रयी (तीनों वेद) एवं भगवती (छः ऐश्वर्या से मुक्त) है। इस विश्व की उत्पत्ति एवं पालन के लिए आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका) के रूप में प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का नाश करने वाली हैं। हे देविः! जिससे समस्त शास्त्रों के तत्व का ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही है। दुर्गम भवसागर से पार उतारने वाली नौकायप दुर्गा देवी की आप ही है। आपकी कहीं भी आशक्ति नहीं है। कैटभ के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षः स्थल में एकमात्र निवास करने वाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान चन्द्रशेखर द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी आप ही हैं।

आपका मुखकमल मन्द–मन्द मुसकान से सुशोभित, निर्माण, पूर्ण चन्द्रमा के विम्ब का अनुकरण करने वाला एवं उत्तम स्वर्ण की मनोहर कान्ति से कमनीय है। फिर भी आपके मुखकमल को देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और सहसा उसने आप पर प्रहार कर दिया, यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। हे दविः वहीं मुखकाल जब क्रोध से युक्त होने पर उदयकाल के चन्द्रमा की भांति लाल एवं तनी हुई भोंहों के कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर यदि महिषासुर के प्राण तुरनत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात हैं, क्योंकि क्रोध से भरे हुए यमराज को देखकर भला कौन जीवित रह सकता है।

हे दविः आप प्रसन्न हों। परमात्म स्वरूपा आपके प्रसन्न होने पर जगत् का अभ्मुदय होता है और क्रोध में भर जाने पर आप तत्काल ही कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभव में आयी है। क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेनाक्षण भर में आपके क्रोध से नष्ट हो गयी है। सदा अभ्युदय प्रदान करने वाली आप जिन लोगों पर प्रसन्न रहती है, वे ही देश में सम्मानित हैं, उन्हीं को धन एवं यश की प्राप्ति होती है। उन्हीं का धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट–पुष्ट, स्त्री, पुत्र और सेवकों के साथ धन्य माने जाते हैं।

हे देवि! आपकी कृपा से ही पुष्पात्मा पुरूष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धा के साथ सदैव सर्व प्रकार से धर्मानुकूल कर्म करता है एवं उसके प्रभाव से स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। इसलिए आप तीनों में निश्चय ही मनोवाच्छित फल देने वाली है। हे माता दुर्गे आप स्मरण करने मात्र से ही सभी प्राणियों के भय को हर लेती है एवं स्वस्थ पुरूषों द्वारा चिन्तन किये जाने पर उन्हे परम कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करती है। दुःख, दारिद्रय एवं भय का हरण करने वाली हे देवि, आपके अतिरिक्त अन्य कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करने के लिए सदैव दयार्द रहता हो।

हे देवि! इन राक्षसों का संहार करने से संसार को सुख की प्राप्ति हो तथा ये राक्षस चिरकाल तक नरक में बहने के लिए भले ही पाप करते रहे हो, इस समय संग्राम में मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्गलोक को जाये– निश्चम ही यही सोंचकर आप शत्रुओं का वध करती है। आप शत्रुओं पर शस्त्रों का प्रहार क्यों करती हैं? समस्त राक्षसों को अपने दृष्टि पात मात्र से ही भस्म क्यों नही कर डालती? इसमें भी एक रहस्य है। ये शत्रुगण भी हमारे

अस्म–शस्त्र से पवित्र होकर उत्तम लोगों में जाँय– इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्कृष्ट रहता है।

खड्ग के तेजः पुज्ज की दीप्ति से तथा आपके त्रिशूल के अग्रभाग की धनीभूत प्रभा से चौंधिया कर जो असुरो की आंखे फूट नहीं गयी, कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के सदृश आनन्द प्रदान करने वाले आपके इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे। हे देवि, आपका शील दुराचारियों के अर्न्गल व्यवहार को दूर करने वाला है। साथ ही आपका यह रूप भी ऐसा है, जो कभी चिन्तन में नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरों से तुलना भी नहीं हो सकती तथा आपका बल और पराक्रम ले उन राक्षसों का भी नाश करने वाला है, जो कभी देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओं पर भी अपनी दया ही दिखाई है।

हे वरदायिनी देवि! आपके इस अद्रभूत पराक्रम की किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओं को भय देने वाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके अलावा और कहां है? हृदय में कृपा एवं युद्ध में निष्ठुरता– यह दोनों बातें तीनों लोकों के भीतर केवल आपने ही देखी गयी हे। हे मातः! शत्रुओं (राक्षसों) का संहार करके इस समस्त त्रिलोक की रक्षा की है। उन शत्रुओं को भी मारकर स्वर्गलोक में पहुंचाया है तथा मतवाले दैत्यों से प्राप्त होने वाले हम लोगों के भय को भी दूर कर दिया है। आपको बार–बार हमारा नमस्कार है।

हे देवि! आप शूल से हमारी रक्षा करें। हे अम्बिके! अप खड्ग से भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टा की ध्वनि एवं धनुष की टंकार से भी हम लोगों

की रक्षा करें। हे चाण्डेके! पूर्व पश्चिम एवं दक्षिण दिशा में आप हमारी रक्षा करें तथा हे ईश्वरि! अपने त्रिशूल को घुमाकर आप उत्तर दिशा में हमारी रक्षा करें।

तीनों लोगों में आपके जो परम सुन्दर तथा अत्यन्त भंयकर रूप विचरण करते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस पृथिबीलोक की रक्ष करें। हे अम्बिके आपके कर कमलों में शोभा पाने वाले खड्ग, शूल एवं गदा प्रभृति जो भी अस्म–शस्म हो, उन सबके द्वारा आप सब तरफ से हम लोगों की रक्षा करें।

इसके अनन्तर देवी के उत्तर खरित्र में शुम्भ–निशुम्भ नामक असुरों के साथ युद्ध का निरूपण है। प्रारम्भ में देवगणों के द्वारा विष्णुमाया का वह प्रसिद्ध स्त्रोत है, जिसमें देवी को नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः। कहकर वारम्बार सम्बोधित किया गया है एवं उनके विभिन्न रूपों को प्रणाम किया गया है।

'नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम्।।
रौद्रायै नमों नित्यायै गौयै नमों नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सतंत नमः।।
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सतंत नमः।।
अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमों नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमों नमः।
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्याभि धीयते।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमों नमः।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण शब्दिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सवभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।

नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चखिलेषु या।।

भूतेषु सततं तस्यै व्याप्ति देव्यै नमो नमः।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

चितिरूपेण या कृत्स्न मेतद्व्यशप्त स्थिता जगत् ।

नमस्तस्यै नतस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्ट संश्रया–

तथा सुरेन्द्रण दिनेषु सेविता।

करोतु सा नः शुभहेंतुरीश्वरी

शुभानिः भद्राण्यमिहन्तु चापदः।।

या साम्प्रतं चोद्धत दैत्यतापितै–

रस्मामिरीशा च सुरैर्नमस्यते।

या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः

सर्वापदो भक्ति विनम्रमूर्तिभिः।।

उस विष्णुमाया के अनेक रूप है। चेतना या चिति, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षमा, लज्जा, श्रद्धा, कन्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, भ्रान्ति, व्याप्ति एवं मातृतत्व ये सब उसी महाशक्ति के यप है। जिस समय देवगण उपर्युक्त स्तुति कर रहे थे, उसी समय वहाँ पर माता पार्वती गंगा में स्नान करने के लिए आयीं। उन्होने पूछा–'यह किसकी स्तुति हो रही है'? उसी समय उनके शरीर से एक आलौकिक शक्ति उत्पन्न हुई, जो शरीर कोशो से जन्म लेने के कारण

'कौशिकी नाम से विख्यात हुई। उसके बाहर आ जाने से माता पार्वती का रंगा काला हो गया और वे 'कालिका' नाम से जगत में प्रसिद्ध हुई। यथा –

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्यायौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन।।
साब्रवीत्रान् सुरान् सुभूर्मवद्भिः स्तूयजकऽत्रका।
शरीर को शतश्चास्याः समुद्भूता ब्रबीच्छिवा।।
स्त्रोमं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः।
शरीर को – शाद्यतत्स्याः पर्वात्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते।
तस्या विनिर्गतायां तु कृष्णाऽभूत्साऽपि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृता श्रया।

(मार्क.पु. ८४.४०–११)

तदनन्तर उनके अलौकिक रूप को शुम्भ–निशुम्भ के सेनापति चण्ड–मुण्ड ने अपने स्वामी से उसका वर्णन किया। शुम्भ ने अपना दूत देवी के पास भेजा। परन्तु देवी के पास भेजा। परपन्तु देवी ने कहा कि जो मुझे संग्राम में जीतकर मेरा दर्ज दूर करेगा, वहीं मेरा पति होगा–

यो मां ज्यति संग्रामें यो में दर्पं व्यपोहति।
यो में प्रतिबलो लोके स में भर्ता भविष्यति।

(मार्क.पु. ८५.७२)

इसके अनन्तर शुम्भ–निशुम्भ ने धूम्रलोचन नामक की हुक्कर से ही भस्म हो गया। इस पर शुम्भ–निशुम्भ ने अपने सेनापति चण्ड–मुण्ड को युद्ध के लिए भेजा। किन्तु वे भी महाकाली या चण्डिकाभिधानी महाशक्ति देवी से परास्त हुए। चण्ड–मुण्ड का संहार करने के कारण काली 'चण्डिका' नाम से लोक में प्रख्यात हुई। इसके अनन्तर स्वंय शुम्भ–निशुम्भ से देवी का युद्ध हुआ। इसी प्रसङ्ग में सप्तमातृकाओं का वर्णन किया गया है, जिनसे रक्तबओज नामक असुर का युद्ध

हुआ। अनन्तः चामुण्डा–द्वारा उस भयानक असुर रक्तबीज का संहार किया गया। सबसे अन्त में शुम्भ एवं निशुम्भ देवी के साथ युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। असुरों की पराजय से प्रसन्न देवो ने नारायणी नाम से देवी की अर्थगर्भित स्तुति की। यथा –

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे

सेन्द्राः सुरा बह्निपुरोगमास्ताम्।

कात्यायनीं तुष्टुवरिष्टलाभाद्

विकाशिवक्त्राब्ज विकाशिताशाः।।

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद

प्रसीद मातर्जगतो ऽखिलस्य।

प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं

त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य।।

आधारभूता जगतत्वमेका

महीस्वरूपेण यतः स्थिताऽसि।

अयां स्वरूपस्थिता त्वयैत–

काप्यायते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये।।

त्वं वैष्णवी शक्ति रनन्तवीर्या

विश्वस्य बीज परमासि माया।

सम्मोहित देवि समस्तमेतत्

त्वं वे प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः।।

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः

स्त्रिय समस्ताः सकला जगत्सु।

त्वयैकया पूरितमम्ब–यैतत्

का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।।

सर्वभूता यदा देवी स्वर्ग मुक्ति प्रदायिनी।

त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः।।

सर्वस्य बुद्धि–रूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।

स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणाम प्रदायिनी।

विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते।।

सर्वमंगलमाड़गल्ये शिवे सर्वार्थसाधि के।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते।

सृष्टि स्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।

गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

शरणागतदीनार्त परित्राणपरायणे ।

सर्व–स्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

हंसयुक्त विमानस्थे ब्रह्माणीरूप धारिणि ।

कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमो ऽस्तु ते ।।

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।

माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्ति–धरेऽनघे ।

कौमारीरूप संस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

शंखचक्रगदाशार्ङ्ग गृहीत परमायुधे ।

प्रसीद वैष्णवी रूपे नारायणि नमाऽस्तु ते।।

गृहीतोग्रमहा–चक्रे दंष्ट्रोद्धृत वसुन्धरे।

वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते।।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तु दैत्यान् कृतोद्यमें ।

त्रैलोक्य–त्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ।।

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्जवले।

वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

शिवदूती स्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।

घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते।।

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।

चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते।।

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे।

महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते।।

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।

नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते।।

सर्वस्रूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते ।

भयेभ्याहि नो देवि दुर्गे देवी नमोऽस्तु ते।।

एतत्रे वदनं सौम्यं लोचनत्रय–भूषितम।।

पातुनः भीतिम्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते।

ज्वालाकरालतृत्युग्रमशेषासुर सूदनम् । ।

त्रिशूलं पातुनो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत।।

सा घण्टा पातुनो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव।

असुरासृग्वसाङ्क–यङक चर्चितस्ते करोज्जवलः ।।

शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ।

रोगानशेषानयहंसि तुष्टा।

ददासि कामान् सकलानमीष्टान् ।

त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।।

एतत्कृतयत्कदनं त्वयाद्य ।

धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।।

रूपैरनेकैर्बहु धात्ममूर्ति

कृत्वाऽम्बिके तत्प्रकरोति कान्या।।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीये–

ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।।

ममत्वगर्ते ऽतिमहान्धकारे

विभ्रामयत्येदतीव विश्वम् ।।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा।

यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।

दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये

तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं

विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।

विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति

विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ।।

देवि प्रसीद परिपालय लेऽरिभीते–

र्नित्यं यथासुरवधाद धुनैव सद्यः।

पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु

उत्पातपाकजनिताश्च महोपसर्गान् ।।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।

त्रैलोक्यवासिनामीड़ये लोकानां वरदा भव । ।

(मार्क.पु. 71.1–35)

अर्थात महाशक्ति देवी के द्वारा महादैत्यपति शुंभ के मारे जाने के बाद इन्द्रादि देवगण अग्निदेव को आगे कर उनका कात्यानी देवी की स्तुति करने लगे। उस समय अपने आभीष्ट की प्राप्ति होने से उनके मुख्यकमल दमक उठे थे और उनके प्रकाश से दिशाएं जगमगा उठी थी। देवताओं ने कहा– शरणागत की पीड़ा दूर करने वाली हे देवि। हम पर प्रसन्न हो ओ। सम्पूर्ण जगत की माता। प्रसन्न हो ओ। हे विश्वेश्वरि। विश्व की रक्षा करो। हे देवि। तुम्ही चराचर जगत की अधीश्वरी हो।

तुम इस जगत का एक मात्र आधार हो, क्योंकि प्रथ्वी रूप में तुम्हारी ही स्थिति है। हे देवि। तुम्हारा पराक्रम अंलघनीय है। तुम्ही जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत को तृप्त करती हो। तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परा माया तुम्ही हो। हे देवि। तुमने इस समस्त जगत को मोहित कर रखा है। तुम्ही प्रसन्न होने पर इस धराधाम पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो।

हे देवि । सम्पूर्ण विधाएं तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप है। इस जगत में जितनी भी स्त्रियां है, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियां है। हे जगदम्बिके । एकमात्र

तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ? तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो। जब तुम सर्वस्वरूप देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हो, तब इसी रूप में तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुति के लिए इससे उक्तियां और क्या हो सकती है?

बुद्धि रूप से सब लोगों के हृदय में विराजमान रहने वाली, तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणी देवि, तुम्हें नमस्कार हैं। कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था– रिर्वतन) की ओर ले जाने वाली तथा विश्व का उप–संहार करने में समर्थ नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है।

हे नारायणि। तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली मंगलमयी हो। कल्याणकारी शिवा हो। समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली, शरणागत वत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो। तुम्हें सादर नमस्कार है। तुम सृष्टि पालन एवं संहार की शक्ति भूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो। हे नरायणी । तुम्हे नमस्कार है।

शरण में आये हुए दीन जनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहने वाली तथा सभी लोगों की पीड़ा दूर करने वाली नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है। हे नारायणि । तुम ब्रह्माणी का रूप धारण करके हंसों से जुडे हुए विमान पर बैठती हो तथा कुश– मिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है।

माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा तथा सर्प को धारण करने वाली तथा महान वृषभ की पीठ पर बैठने वाली नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है। मयूरों तथा मुर्गो से निरन्तर घिरी रहने वाली तथा महाशक्ति धारण करने वाली कौमारी रूपधारिणी निष्पाये नारायणि । तुम्हें नमस्कार है।

शंक, चक्र, गदास एवं शाड़ग धनुष रूप उत्त्मोत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि । तुम प्रसन्न हो ओ। तुम्हें सादर नमस्कार है। हाथ में भयानक महाचक्र लिए दाढों पर धरती को उठाये बाराहीरूप धारिणी कल्याणमयी नारायणि । तुम्हें नमस्कार है। भयंकर नृसिंह रूप में दैत्यों के वद्य के लि उद्योग करने वाली तथा त्रिभवन की रक्षा में संलग्न रहने वाली नारायणि। तुम्हे नमस्कार है।

मस्तक पर किरीट और हाथ में महावज्र धारण करने वाली, सहस नेत्रों के कारण उद्दीप्त दिखाई देने वाली और वृत्रासुर के प्राणों के अपहरण करने वाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है। शिवदूती रूप से दैत्यों

की महती सेना का संहार करने वाली, भयंकर रूप धारण करने वाली तथा विकट गर्जना करने वाली नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है।

दाढों के कारण विकराल मुख वाली, मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणी देवि। तुम्हें नमस्कार है। लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा महारात्रि तथा महाऽविद्या रूपा नारायणी देवि। तुम्हे नमस्कार है। मेघा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा) भूति (ऐश्वर्यरूपा) बाभ्रवी (भूरे रंग की अथवा पार्वती) तामसी (महाकाली) नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा– (सब की अधीश्वरी) रूपिणी नारायणी देवि । तुम्हें नमस्कार है।

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा देवि। समस्त भयों से हमारी रक्षा करो, तुम्हें नमस्कार है। हे कात्यायनि । यह तीन लोचनों से विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करें, तुम्हें नमस्कार है। हे भद्रकाली । ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर एवं समस्त असुरों, का संहार करने वाला तुम्हारा त्रिशूल भय से हमारी रक्षा करें। तुम्हें सादर नमस्कार है।

हे देवि। जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करके दैत्यों के तेज का विनाश कर देता है, वह तुम्हारा घण्टा हम लोगों की पापो से उसी प्रकार से रक्षा करें, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मो से रक्षा करती है। हे चाण्डिके । तुम्हारे हाथों में सुशोभित खडग, जो असुरो के रक्त तथा चर्बी से चर्चित है, हमारा मड़्गल करें। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

हे देवि । तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो तथा कुपित होने पर मनोवाच्छित सभी कामनाओं का नाश कर देती हों जो लोग तुम्हारी शरण में जा चुके हैं, उन पर कभी कोई विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरण में गये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले हो जाते हैं। हे देवि अम्बिके । तुमने अपने स्वरूप को अनेक लोगों में विभक्त करके नाना प्रकार के रूपों से जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार किया है, वह सब दूसरा कौन कर सकता था ?

विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों (वेदों) में तुम्हारे अतिरिक्त किसका वर्णन है ? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममता रूपी गड्ढे में निरन्तर भटका रही हो। जहां राक्षस, जहां भयंकर विष वाले सर्प, जहां

शत्रु, जहां लुटेरों की सेना और जहां दावानल हो, वहां तथा समुद्र के बीच में भी साथ रहकर तुम विश्व की रक्षा करती हो।

हे विश्वेश्वरि। तुम विश्व का पालन करती हो। विश्वरूपा हो, इसलिए सम्पूर्ण विश्व को धारण करती हो। तुम भगवान विश्वनाथ की भी वदनीया हो। जो लोग भक्ति पूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं।

हे देवि । आप प्रसन्न हो। जैसे इस समय असुरों का वध करके आपने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाती रहें। सम्पूर्ण जगत का पाप नष्ट कर दें और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले महामारी आदि बडे–बडे उपद्रवों को शीघ्र ही दूर करें। विश्व की पीड़ा दूर करने वाली हे देवि । हम आपके चरणकमलो पर पड़े हुए हैं, आप हम पर प्रसन्न हो। त्रिलोक – निवासियों की पूजनीया हे परमेश्वरि । आप हम सभी को वरदान दें।

इसके अनन्तर फलश्रुति के निरुपण के साथ मार्कऽदेव पुराणन्तर्गत देवी महात्म्य की सम्पूर्ति होती हैं जगदम्बिका महाशक्ति ने विधि अवतारों के माध्यम से इसी प्रकार से असुरों का संहार करते हुए तीन लोकों को निरन्तर अभय प्रदान किया है।

<u>शक्ति के चण्डिकाभिधानी दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी आदि अवतारों की व्याख्या तथा शक्ति के ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री, ऐन्द्री, रूपो का प्रतिपादन –</u>

देवीमहात्म्य में असुरो के साथ देवी के युद्धों की कहानी जान पड़ती है, किन्तु पुराणविद्या की दृष्टि से इसके मूल में वैदिक आध्यात्म–विद्या के प्रतीक छिपे हुए हैं। उनकी व्याख्या इस प्रकार है :–

मारीचकल्प के अनुसार प्रथा है कि आरम्भ में ऋग्वेद के रात्रिसूक्त (10. 127) का पाठ किया जाता है। बीच मे दुर्गा सप्तशती का तथा अन्त में ऋग्वेद के दूवीसूक्ति (20.235) का। ब्रह्मा, क्षत्र और बिट् के सम्मिश्रण से सृष्टि होती है। ब्रह्म तम या मोह से अतीत है, किन्तु क्षत्र और बिट् को उद्बोधन की आवश्यकता होती है। महाराज सुरथ एवं समाधि नाम वैश्य उन्हीं के रूप हैं। एक में सत्तातन्त्र तथा दूसरे में अर्थतन्त्र के कारण मानव मोह को प्राप्त होता है।

रात्रिसूक्ति में सौर संवत्सर से पहले का चरित्र है। दो रात्रियां जाननी चाहिए – एक निरपेक्ष तथा दूसरी सापेक्ष। अहः या दिन के साथ जो रात्रि है,

वह सापेक्ष हैं सर्वप्रथम ऋत एवं सत्य इन दोनों का दाम्पत्य –भाव होता है। ये ही विश्व के प्रथम पति–पत्नी हैं। स्वयम्भू सत्य है। वही वेदत्रयी या त्रयी विद्या है। परमेष्ठी ऋतात्मक है। वही अथर्व या सुब्रह्म वेद है। त्रयीविद्या अर्थात ब्रह्म एवं अथर्व सुब्रह्म इन दोनों को दाम्पत्यभाव का परिणाम रात्रि है। त्रयी पुरुष – भाव है। वह अग्नि के सम्मिलन से रात्रि का जन्म होता है, जिसके लिए अद्यमर्षण –सूत्र में लतों रात्रिरजायत कहा है। रात्रि की यह सृष्टि और संवत्सर से पहले की है। वह प्राण–सृष्टि है।

स्वयम्भू एवं परमेष्ठी या सत्य और ऋत के दाम्पत्य भाव का नाम तय है। प्राण के व्यापार को तप कहते हैं और भूतों के व्यापार को श्रम। 'स तपोऽतप्यत' अर्थात प्रजापति ने प्राण–व्यापार किया। 'सो अश्राम्यत' अर्थात प्रजापति ने भूत–व्यापार किया। रात्रि की दशा में भूत–व्यापार आरम्भ नहीं हुआ। तपोमूलक क्षत्र और तपोमूल का बिट् कभी मोह में नहीं पड़ते। ये जब श्रममूलक होते हैं, तब मोह में पड़ते हैं। केवल श्रम या भूत मोह का कारण है। भूत की आसक्ति का नाम मोह है। किन्तु असंग है, अतएव तप से संचित वस्तुओं में आसक्ति नहीं होती। श्रम से वंचित वस्तु में आसक्ति हो जाती है। तप केन्द्राभिमुखी होता है, श्रम बहिर्मुखी जिन्होंने श्रम से अर्थ का संचय किया है, वे उसमें चिपके रहते हैं, पर जो तपोमूलक होते हैं, उनमें दानशक्ति आ जाती है। तपोमूलक सर्वस्व सम्पत्ति भी दान कर दी जाती है। श्रममूलक वस्तु अन्तर्यनि नहीं बनती। इसलिए सब कुछ होते हुए भी अभाव ही मालूम होता है। जिसके जीवन में तपहै, उसमें श्री आती है। जिसमें केवल श्रम है, उसमें केवल लक्ष्मी बनी रहती है। तप और श्रम का भेद ही श्री और लक्ष्मी का भेद है। श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नियां हैं। रात्रिसूक्ति में श्री का नाम लिया है, लक्ष्मी का नहीं। वह प्राण–सृष्टि है, जो सूर्य से पहले की है। भूत–सृष्टि सूर्य से चलती है। भूत सृष्टि केवल रोदसी ब्रह्माण्ड में है। रूद्र भूपति या भूतनाथ है। उससे ऊपर परमेष्ठी लोक के स्वामी विष्णु प्राणपति हैं और स्वयम्भू ब्रह्मा चित्पति हैं। उपनिषदों में इन्हें ही प्रज्ञा–प्राण–भूत कहा गया है। लक्ष्मी या भूतसृष्टि– ये एक ही हैं।

स्वयम्भू का सत्य जब ऋताम्मा परमेष्ठी के गर्भ में आ जाता है, तभी अण्ड–भाव की सृष्टि होती है। यह पहला दाम्पत्य भाव है, जिससे रात्रि का प्रादुर्भाव हुआ। रात्रि से आशय तमोगुण अर्थात सृष्टि के बीज से हैं। तमोगुण वह है, जो धामच्छद है या जगह रोकता है। वही सृष्टि का मूल बीज है।

रात्रि का स्वरूप अम्भस् या जल है। अप्तत्व के कारण रात्रि का स्वरूप वारुण है। वहां वरुण या असुरों का क्षेत्र है। वरुण ही सबसे बड़े असुर हैं। वरुण–भाव के कारण जगदम्बा देवी को वारुणी, महासुरी, तामसी या रात्रि कहा है। यह सब पारमेष्ठय असुर का प्रभाव है। पारमेष्ठय जल से ही विचार –सृष्टि या भूत का विकास होता है।

सृष्टि का जो मूलबीज है, उसका नाम रात्रि है। सृष्टि प्रवर्ग्यमूला है। वह ब्रह्मौदन के उच्छिष्ट से उत्पन्न होती है। जो रात्रि है, वही दात्री है (रात्रि शब्द की निष्पतिरा दाने धातु से है) जो कुछ वह देती है, उसी का नाम प्रवर्ग्य है। रात्रि माता है, वह सोम गुण या पानी के कारण सोम्या है। अपनी कुक्षि से वह जिसे जन्म देती है, वह सन्तति ही उसका प्रवर्ग्य है विस्रंसन पानी का धर्म है। प्रवर्ग्य अंश की संज्ञा रात्रि है। प्रवर्ग्य ही सृष्टि है। तत्वतः रात्रि का नाम है अत्रि प्राण जो धामच्छद है या सूर्य का अवरोधक है, वह अमि प्राण है। सम्पूर्ण सृष्टि अत्रिमूला है। जब एक स्त्री में अत्रि प्राण नहीं होता, तब तक प्रजजन नहीं हो सकता। मलीमस या सड़ान– यही अत्रिधर्म है। आत्रेयी योषित ही गर्भ धारण करती है। सड़ान से ही सृष्टि होती है। जलों का ठहरना और सड़ना– यही वरुण का प्रभाव है। सड़ान या अत्रिधर्म न हो, तो बीज रहते हुए भी अंकुरित नहीं होता। पृथ्वी में या मातृकृक्षि में प्रत्येक बीज स्वयं विनष्ट होकर या सड़कर जिस प्रवर्ग्य को ऊपर फेंकता है, उसी से अंकुर और पत्ते बनते हैं। ब्रह्मौदन के माध्यम से प्रवर्ग्य ही पुनः प्रवर्ग्य को जन्म देता है। आत्म–भाव के बिना ब्रह्मौदन व्यक्त नहीं होता चित् का प्रतिबिम्ब जो ग्रहण करता है, उसे ही महद् ब्रह्म या योनि या पारमेष्ठय प्रकृति कहते हैं। वही रात्रि –तत्व है। बीज ग्रहण शक्ति उसी की है। चित् सर्वत्र है, पर अभिव्यक्त नहीं है। महत् ही चित् को अभिव्यक्त करता है।

पारमेष्ठय माया का नाम महामाया है। पूरे अश्वत्थ की माया का नाम महामाया या सोम्या माया होता है। वह सहस्रपुण्डीरा या सहस्र शाखा हें देवी माहात्म्य में पारमेष्टय असुर, सौर असुर, चान्द्र आसुर और पार्थिव असुर– इन चार मण्डलों के असुरों का युद्ध का वर्णन है –

1– मधु–कैटभ पारमेष्ठय असुर हैं। वे परमेष्ठी मण्डल पर आक्रमण करते हैं।

2– महिषासुर सौर मण्डल पर आक्रमण करने वाला असुर है।

3– शुम्भ–निशुम्भ चन्द्रमा पर आक्रमण करते हैं ।

4– रक्तबीज पृथ्वी पर आक्रमण करता है।

इस प्रकार चार जगहों में छः असुर हैं। स्वयम्भू असुर विहीन हैं। वह केन्द्रात्मक शुद्ध प्राण है। असुर तब होता है, जब भूत का आविर्भाव हो। भूतत्व का ही नाम असुर है। असुरभाव की जन्मभूमि परमेष्ठी है। स्वयम्भू की माया या शक्ति शुद्ध प्राणात्मक है। वह परमेष्ठी में आकर देवी हो जाती है। पारमेष्ठय प्रकृति देवी हे। असुरभाव का जो प्रतिद्वन्द्वी भाव है, वह असुरभाव है। देव–भाव एवं असुर भाव सहजन्मा हैं। अतएव पारमेष्ठय प्रकृति को असुर सम्पर्क के कारण आसुरी या तामसी और देव–सम्पर्क के कारण देवी कहा जाता है। वह तामसी हो चाहे आसुरी, पर देवताओं का ही कार्य करती है। क्योंकि उसकी मूल प्रकृति अक्षरात्मिका या प्राणात्मिका है। आत्मभाव या केन्द्रभाव की संज्ञा ही देव–भाव है।

वह देवी असुरों का तब तक समर्थन करती है जब तक कि वे देवभाव या केन्द्र भाव पर आक्रमण नहीं करते। देवों का अन्न यज्ञ है। जब तक देवों में यज्ञभाव जागरित रहता है, उन पर असुर आक्रमण नहीं कर सकते। आदान प्रदान या संचरण यज्ञ का रूप है। स्थिति–गति आगति–ये अक्षर या प्राण की कलाएँ है। केन्द्र से परिधि की ओर गति अग्नि है। परिधि से केन्द्र की ओर आगति सोम है। गति आगतिभाव का नाम ही यज्ञ है। भूत या क्षर गति भाव का अवरोधक है। वही असुर भाव है। उसके हटने से ही यज्ञ भाव पुनः प्रचलित हो सकता है। जो केन्द्रस्थ विष्णु है, वह जब सुप्त हो जाता है, तो असुर भाव प्रबल हो उठता है। विष्णु को सुप्त करने वाली निद्रा को भी देवी का एक रूप कहा गया है। वह विष्णु के शरीर में से निकल विष्णु का प्रबोध करती है।

मधु–कैटभ–

मधु–कैटभ दोनों पारमेष्ठय असुर है। भूततत्व ने मधु–कैटभ के रूप में उस केन्द्र को अभिभूत करना चाहा जिसमें स्वयम्भू की शक्ति गर्भित हो चुकी थी। पारमेष्ठय सोम के दो स्वरूप है एक भास्वर सोम तथा दूसरा दिक्सोम। भास्वर सोम ज्योतिर्मय सोम है। उसमें देवभाव है। उससे देववाहन मन या प्रज्ञात्मा प्राण का जन्म होता है। तमोमय सोम दिक्सोम है। उससे

श्रोत्रेन्द्रिय का विकास होता है। मधु कैटभ को भगवान विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न कहा गया है। यह दिक्सोम की ओर ही संकेत है। मलात्मक या तामस दिक्सोम का प्रतीक ही विष्णु का कर्णमल है। मधु–कैटभ दो असुर है, जैसे दो श्रोत है। वे एक साथ जन्म लेने वाले साकंज प्राण है। मधु ब्रह्मौदन है तथा कैटभ प्रवर्क्य है। मधुसूदन एवं कैटभारि दोनो भगवान विष्णु के नाम है।

कल्पान्त में जो प्रलय होता है, वही प्रकृति की साम्यावस्था एकार्णव (मार्कण्डेय–पुराण–*ा. ०) या पारमेष्ठय समुद्र है। स्तुति करने वाला ब्रह्मा अव्यक्त स्वयम्भू तत्व है जो विष्णु के गर्भ में है अतएवविष्णुही यहाँ प्राधन है। विष्णु के जिन अंगो से निद्रा बाहर आती है, उनमें उरःस्थल, बाहु एवं हृदय मुख्य है। उरःस्थल अन्तरिक्ष या महिमाबल, बाहु केन्द्रबल तथा हृदय प्रतिष्ठाबल का प्रतीक है। जब शक्ति भूत के निर्माण में तल्लीन हो जाती है, तो केन्द्रबल सो जाता है। वही विष्णु का शयन है।

सहस्त्र शाखाओं वाले अव्यय वृक्ष की माया को महामाया कहते है। शेष सब योगमाया है। महामाया से युक्त होने के कारण उनका नाम योगमाया है। महामाया के गर्भ में अनेक छन्द बन जाते हैं। वे अनेक छन्द ही अनके ब्रह्माण्ड या अनेक केन्द्र है। उनमेंसे प्रत्येक योगमाया है। योगमाया में भी अपेक्षाकृत महामाया–योग–माया की सम्बन्ध श्रृंखला रहती है। योगमाया सापेक्ष है तथा महामाया निरपेक्ष। सर्ग–प्रक्रिया में सबका नाम योगमाया होगा, क्योंकि वह महामाया से पराक् गति है। प्रतिसर्ग–प्रक्रिया में सबका नाम महामाया होगा, क्योंकि सब महामाया के अभिमुख रहेंगी।

विष्णु ने पंचवर्ष सहस्र तक बाहुबल से युद्ध किया, इसका संकेत पंचपुण्डीरा सृष्टि से है। सहस्र का अर्थ पूर्ण है। स्वंय विष्णु यज्ञमूर्ति होने के कारण पांक्त या पंचावभव है। पुराण के संकेत सृष्टि–विज्ञान के स्मारक है। उनका निरूपक शास्त्र तो

वेद ही है। पुराण द्वारा संस्मरण करा दिया जाता है, परन्तु सृष्टि–विज्ञान की शिक्षा तो वेद से ही प्राप्त होती है।

मधु–कैटभ ने विष्णु से यह शर्त रखी कि हमें वहाँ मारो जहाँ पृथिवी जल से ढँकी न हो –

'आवां जाहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता'–

(मार्क.पु.

–*ाँ.) पृथिवी प्रतिष्ठात्मक धरातल की संज्ञा है। जल से ढँके होने का भाव यह है कि उसमें भौतिक कण तो उत्पन्न हो गये थे, पर पिण्डात्मक स्वरूप उत्पन्न नहीं हुआ था। वहाँ ऋतः भाव फैला हुआ था। वह काल्वालीकृत स्वरूप था, जिसमें काँदा–कीच मचा हुआ था। सत्यात्मक पिण्डभाव उत्पन्न होते ही असुर नहीं रहते। केन्द्र के उत्पन्न होने पर सत्यभाव आ जाता है और ऋत–भाव हट जाता है।

विष्णु ने अपने जघनस्थल या प्रतिष्ठात्मक केन्द्र बल पर उनके सिर रखकर चक्र से काट दिये। केन्द्रबल सलिल से आवृत नहीं था। चक्र गतिभाव का प्रतीक है। अक्षर तत्व या प्राणन या जागरण–यही चक्र की गति है। विष्णु का प्रधान आयुध चक्र है। आदान और विसर्ग ही गति भाव है। वही जब अवरूद्ध होता है, तब असुर बलवान हो जाते है। आदान–विसर्ग की सकुशल प्रवृत्ति ही यज्ञ है। यज्ञ से ही विष्णु सकुशल रहते है।

महिषासुर–

दूसरे युद्ध में सौरमण्डल पर परमेष्ठी का असुर आक्रमण करता है। यह असुर महिष है। पारमेष्ठय महत् तत्व ही महिषासुर है। अतएव महिषासुर अकेला ही सौर देवताओं पर आक्रमण करता है। सूर्यमण्डल का जन्म परमेष्ठी से अलग हो चुकता है। परमेष्ठी में जब यज्ञ आरम्भ हो गया, अर्थात विष्णु जाग गये तो यज्ञात्मक नारायण या सूर्यमण्डल की पृथक् सत्ता आविर्भूत हो जाती है।

महिषासुर मृत्यु का प्रतीक है। वह वारूण–भाव है। वरूण और यम सजातीय प्राण है। यम का वाहन भी महिष है। इसलिए वारूण पारमेष्ठय असुर को महिष नाम दिया गया। जो मृत्यु है, वही यम है। महिष वारूण पशु है। अश्व सौर पशु है। मृत्यु अवसान है। अवसाद भूत–भाव है। वह गति का अवरोधक है।

देवों का अधिपति पुरन्दर या इन्द्र सौर प्राण का पर्याय है (मार्कण्डेय–पुराण– * .ॉ)। सूर्य में जागरण–भाव ही है। सूर्य के भीतर शयन या निद्रा नहीं है। परिधि पर आसुर भाव आक्रमण करते है, पर सूर्यमण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। संवत्सर का पूरा अधिकार देवताओं का है। उसमें केन्द्र तक असुर नहीं घुस पाते। अतएव यहाँ के संग्राम बनावटी हैं, जैसा कि कहा है –

न त्वं युयुत्से कतमच्च नाह –
र्न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु–
र्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सुः।।

(शत.ॉॉ.ॉ. .ॉ)

अर्थात हे इन्द्र ! तुम कभी लड़े नही, तुम्हारा कोई शत्रु भी नहीं है। तुम्हारे युद्धों का वर्णन सब माया या बनावटी है। न तो आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न ही पहले तुमसे लडने वाला कोई था।

वेदों में इन्द्र आरै वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मरने से इन्द्र असपत्न हो गया। वही भाषा यहाँ महिषासुर के लिए है– **'इन्द्रोऽभून्महिषासुरः'**

(मार्क.पु. * .)

महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वंय इन्द्र बन बैठा। पुनः सूर्यमण्डल के अधिष्ठातृ देवता इन्द्र देवभाव की समृद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से सौर तेज को ढँक देता है, वहीं वृत्र या महिष है।

सृष्टि काल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य–भाव में आने के लिए समय लगा होगा। सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज के पूर्ण परिपाक तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा। अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए, तब वही महिष–वध हुआ– **'इन्द्रोह वृत्रं हत्वा महेन्द्रोऽभवत्'**।

सौर मण्डल के निर्माण से शिवतत्व भी अभिव्यक्त हो जाता है। पारमेष्ठय–मण्डल में विष्णु एवं ब्रह्मा प्रधान थे। अब ब्रह्मा गौण बन जाते हैं और इन्द्र तथा विष्णु प्रधान हो जाते हैं। वेद के इन्द्र–विष्णु ही पुराण के शिव–विष्णु है। सौर–मण्डल में त्रय–स्त्रिंशत् देव उत्पन्न हो जाते है। अहर्गण वाले देवता जितने थे, सबके सब यहाँ प्रकट हो गये। परमेष्ठी से जब सूर्य की अभिव्यक्ति होने लगी तो बिखरे हुए प्राण कुछ काल में केन्द्रबद्ध हो गये। जो देव–प्राण परमेष्ठी में थे, वे बहिमुर्ख, असम्बद्ध और बिखरे हुए थे। सूर्यमण्डल के निर्माण – काल में वे केन्द्राभिमुख तथा केन्द्रनिष्ठ हुए। वही शक्ति देवी बन गयी। वही हेमवती उमा है।

तैंतीस तन्तु देवता ही तैंतीस अहर्गण है। एक सहस्र गायों से ही तैंतीस अहर्गण बनते है। तीस से भाग देने पर एक सहस्र अहः के तैतींस अहर्गण हो जाते है। शेष दस बचते है। वही कामगणी हे। आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, दो अश्विनी कुमार यज्ञीय देवता है। इन तैंतीस देवों से निर्गत जो महत्तेज था, वही तेजकूट बना जिसे देवो ने देखा–

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्।

(माकत्र पुत्र * .)

बृहदादित्य या इन्द्र प्राण अपने मण्डल के विभ्राद् तेज का निरन्तर पान या संग्रह कर रहा है। स्वयम्भू परमेष्ठी का सम्मिलित तेज वचर्स्, सूर्य का भर्ग, चन्द्रमा का सुम्न तथा पृथिवी का द्युम्न कहा जाता है।

यह तेज ही सम्मिलित रूप में देवी या देव–शक्ति बन जाता है:–

अतुलं तत्र यत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्त लोकत्रयं त्विषा।।

(मार्क.पु. * .ो)

वेद की अहर्गण विद्या से उत्पन्न होने वाले तैंतीस यज्ञीय देवता तैंतीस तन्तु कहे जाते हैं। उनका सम्मिलित तेज सूर्य है। उसी की शक्ति देवी है सूर्य को देवपात्र या वषट्कार भी कहा जाता हैं। ये तैंतीस देवतात्मक तन्तु एक आयतन है। सामूहिक छन्द का नाम तैंतीस तन्तु है। इसमें रहने वाले जो देव हैं, वे यज्ञीय देव भी तैंतीस है। अग्नि, वायु, इन्द्र या वरू, रूद्ध, आदित्य ही तैंतीस देव हैं। इक्कीस अहर्गण में तैंतीस यज्ञीय देवताओं का भोग हो जाता है। इक्कीस से सत्ताइस या त्रिणव स्तोम तक पारमेष्ठय विष्णु और सत्ताइस से तैंतीस तक स्वयम्भू ब्रह्मा रहते हैं, जो दस अहः शेष बचते हैं, वे चौंतीसवें प्रज्ञापति ब्रह्मा हैं। वे ही अयुग्मन्ती स्तोम यज्ञ के स्वरूप सम्पादक हैं।

सूर्यरूपी वषट्कार या देवपात्र के बनते ही असुर उसके हवि को खा जाना चाहते है। क्योंकि देव केन्द्राभिमुख नहीं थे, अतएव आरम्भ में असुर प्रबल रहते है। सूर्य की परिपूर्ण रचना प्राण और अपान के सम्मिलित रूप का स्पन्दन है। स्वयम्भू और परमेष्टी का नाम है प्राणत्। चन्द्र और पृथिवी का रूप है अपानत्। प्राणत् बल केन्द्र से परिधि की ओर जाता है; परन्तु जब तक वह परिधि से पुनः केन्द्र में न लौटे, तब तक वह बल दृढ़ नहीं होता। उसका पुनः केन्द्र की तरफ आना ही अपानत् क्रिया है। प्राणबल के लिए अपान बल आवश्यक है। सूर्य गौरूप है। वह एक सहस्र गौओं की समष्टि है। वैदिक भाषा में परिधि को माता और केन्द्र को स्व या पिता कहते है। सूर्यरूपी गौ का सचरण उसके केन्द्र से सामने परिधि तक होता है। उसका स्पन्दन वहाँ तक पुनः पुनः जाता है। यही उसके प्राणत् अपानत् व्यापार का विश्लेषण है।

(ऋग्वेद – ĭ.ĭ* .ĭ-)।

सूर्य के विष्कम्भ पर उसका विस्तार निर्भर करता है। इसे पृष्ठय स्तोम कहते है। इस विष्कम्भ या व्यास के एक सहस्र अहः माने जाते हैं। उसमें तीस–तीस अहर्गण पर विश्राम – भूमि है जिसे धाम कहा जाता है–

'त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते'।

(ऋ. १०.ĭ*.)

प्रत्येक धाम पर एक – एक देव का निवास है। यही तैंतीस देव है। अन्त के शेष दस अहगर्ण स्वयं प्रजापति की विश्राम भूमि हैं। प्रत्येक वस्तु का एक गोलमण्डल तथा एक व्यास होता है। दोनो सहस्रात्मक होते है। व्यास के विस्तार को पृष्ठयस्तेम और मण्डल को अभिप्लव–स्तोम विद्या कहा जाता है।

सूर्य तो विराट् का प्रतीक है। प्रत्येक केन्द्र में जहाँ चिति का स्पन्दन है, वहाँ यही प्राणापान की क्रिया हो रही है। जिस मण्डल में प्राण एवं अपान का यह व्यापार सन्तुलित रहता है, वहाँ से महिषासुर या वृत्र या तम अपनी सत्ता काअधिकार छोड़कर हट जाता है। जब तक केवल प्राणबल रहा, तब तक महिष ने नहीं छोड़ा। जब प्राण को अपान का बल मिल गया, तब महिष ने छोड़ दिया। केवल देव महिष को हटाने में असमर्थ थे, किन्तु अपनी सम्मिलित शक्ति देवी को साथ लेकर महिष को परास्त करने में समर्थ हुए। ऋग्वेद में वर्णित है–

अन्तश्चरित रोचनाऽस्य प्राणादपनती।
व्यवख्यन् महिषो दिवम्।।

(ऋ. 10.1* .)

प्रत्येक वस्तु के चारों तरफ का आकाशमण्डल उसका द्युलोक है। केन्द्र और परिधि के बीच में जब प्राण एवं अपान की रोचना या ज्योति संचरण करती है, तो महिष उस मण्डल को छोड़कर स्वयं हट जाता है।

यह कोई भुक्त इतिहास नहीं है। यह सदा सर्वत्र रहने वाला प्रक्रान्त इतिहास है। यह चक्र सदा चलता रहेगा। ब्रह्मा की सृष्टि का यह चरित्र शाश्वत है। सृष्टि का तत्ववाद नित्य है। सृष्टि चरित्र में इन्द्र और महिषासुर का बल घटा, तभी यह सृष्टि सम्भव हुई। सर्ग प्रक्रिया कभी बन्द नहीं होती। सब आयुधो से सुसज्जित होकर सिंहवाहिनी देवी ने अपने घोर गर्जन–तर्जन से आकाश को भर दिया।

सम्मानिता ननादोच्चैः सादृहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरित नभः।।

(मार्क.पु. * .)

यह परमेष्ठी के दोधूयमान अलातचक्र की ओर संकेत है। जिससे नीहारिका आदि बने और बन रहे है। वेद में उसे ही क्रन्दसी लोक कहा जाता है। क्रन्दसी लोक की शक्ति ही प्रचण्ड चण्डिका है। अंघारि, भंभारि जैसे घोर गन्धर्व पारमेष्ठय तत्व है। और भी इस प्रकार की अनेक भयंकर शक्तियाँ है। सिंह भी उसी के योग्य शक्ति का प्रतीक है। सिंह आरण्य पशु है। पाँच यज्ञीय पशुओं मे उसकी गिनती नहीं है। शक्ति के बिखरे हुए और छन्दहीन रूप को अरण्य कहते है।

महिष का वध करने से पूर्व देवी मधुपान करती है और महिष से कहती है–

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत् पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।।

(मार्क.पु. * .)

यह मधु पारमेरूष्ठय सोम का प्रतीक है। परमेष्ठी लोक ऋत या सोम से भरा हुआ है। इसीलिए उसे वरूण या समुद्र या आयः या सलिल भी कहते है। उसी सोम या सर्वव्यापक भौतिक दृव्य से आगे की पिण्ड–सृष्टि का निर्माण होता है, अर्थात प्रकृति की साम्यावस्था से विषम वैकारिक भूत सृष्टि का निर्माण होता है। परमेष्ठी का सोम निरन्तर सूर्य मे आ रहा है। उस ब्रह्मणस्पति सोम की आहुति बराबर हो रही है, तभी सूर्य का जीवन सकुशल है। मधु सोम का प्रतीक है। वे एक दूसरे के पर्याय है। जब तक केन्द्र कापरिपाक नहीं होता है, तब तक महिष जीवित रहता है। जैसे ही मण्डल में केन्द्र का निर्माण हुआ, वैसे ही शक्ति पूर्ण हुई और महिष का वध हो गया। सौर संस्था के महिषासुर के मरते ही सौर देवता से निर्मित संवत्सर–चक्र का गर्जन प्रारम्भ हो जाता है। अर्थात जो वाक्तत्व महिष के अधिकार में था, वह सौर देवों को प्राप्त हो जाता है।

महिषासुर का स्थूल रूप तो हत हो गया, पर उनका निपात, नाश या सर्वथा अभाव कहाँ होता है? अतएव यहाँ कहा गया है कि उसका सूक्ष्म शरीर उसके कण्ठ से अर्धनिष्क्रान्त या निर्गत हुआ। (८३.४१)।

मार्कण्डेय–पुराण के ८४वे अध्याय में देवो के विजय–महोत्सव का वर्णन है। यहाँ पर देवी की एक भव्य स्तुति है। देवी ही अव्यक्त परा पृथिवी है। वह समस्त देवगण की शक्तियों के समूह कर मूर्ति है –

देव्या यया ततमिंद जगदात्मशक्त्या

निश्शेष देवगण शक्ति समूह मूर्त्या।

तामम्बि कामखिल देवमहर्षि पूज्यां

भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः।।

(मार्क.पु. * .)

उस देवी के प्रताप से सौरमण्डल असुरविहीन हो जाता है और सूर्यरूपी त्रयीविद्या निर्बाध तपने लगती है –

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान –

मुद्गीथरम्मपदपाठवतां च साम्नाम्।

देवी त्रयी भगवती भवभावनाय

वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।।

(मार्क.पु. * .ॅ०)

यहाँ देवी को भद्रकाली कहा गया है –

इति प्रसादिता देवैजगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।

तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप।।

(मार्क.पु. * .ॅ)

काली उस आद्या शक्ति का कृष्ण या तामस रूप है। ऋग्वेद में उसे कृष्ण रजस् कहा गया है। कृष्ण रज की शक्ति से ही सूर्य का पुनः पुनः आवर्तन होता है–

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यं च।

हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

महाकाल की शक्ति कृष्ण रजस् या महाकाली है। प्रत्येक सत्यात्मक पिण्ड शुक्ल रूप है। वह अमृत तथा ज्योति का रूप है। किन्तु वह कृष्ण रजस् रूप ऋत के गर्भ में प्रतिष्ठित रहता है। दिन सत्य और रात्रि ऋत का रूप है। दिन संचर–क्रम या विज्ञान है। रात्रि प्रतिसंचर–क्रम या ज्ञान का प्रतीक है। वेद शास्त्र अहम शास्त्र है। आगम शास्त्र रात्रि शास्त्र है। यही कारण है कि हम देवीचरित्र में कई रात्रियों का उल्लेख हुआ है।

मार्कण्डेय–पुराण के ८१वें अध्याय में देवी को काल–रात्रि, महारात्रि एवं मोहरात्रि कहा गया है–

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारूणा।
त्वं श्रीस्त्मीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।।

(मार्क.पु. ¤१.)

ये पौराणिक संज्ञाये है। फाल्गुन मे शिवरात्रि की संज्ञा कालरात्रि, आश्विन में विजयादशमी की संज्ञा महारात्रि और भाद्रपद मे जन्माष्टमी की संज्ञा मोहरात्रि है। मोहरात्रि पारमेष्ठय विष्णु की रात्रि का नाम है। सूर्य में अहः और रात्रि दोनों तत्व है। चौदह मन्वन्तर तक अहः और चौदह तक रात्रि रहती है। अहः की प्रतिद्वन्दनी जो प्रलय–रात्रि है, वह कालरात्रि है। स्वयम्भू की रात्रि जो महामाया से सम्बन्ध रखने वाली है, महारात्रि है। स्वयम्भू और परमेष्ठी दोनो मिलकर बल्शेश्वर कहे जाते हैं उन दोना की रात्रि या लयावस्था का नाम महारात्रि है। स्वयम्भू की दो स्थितियाँ है–एक निरपेक्ष स्वयम्भू तथा दूसरा पुण्डीर स्वयमभू। निरपेक्ष स्वयम्भू स्वंय अश्वस्थ है और पुण्डीर स्वयम्भू उस अश्वत्थ की एक–एक शाखा है। निरपेक्ष स्वयम्भू वृत्तौजा है, अर्थात वह पूर्ण वृत्त के समान मण्डल वाला है। उसका ओजस् या तेज अपने ही केन्द्र अभिमुखी या एक बिन्दु पर केन्द्रित रहता है। जब वह पुण्डीर या शाखा–भाव में आता है,तो पञ्चपर्वा हो जाता है। जिस बिन्दु पर वह वृत्त से निर्गत होता है, उसकी संज्ञा पुण्डीर स्वयम्भू और अगले पर्वों की संज्ञा क्रमशः परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी एवं चन्द्रमा होती है। सृष्टिमूला सृष्टि प्रक्रिया में चन्द्रमा अन्त में आता है, क्योंकि चन्द्रमा पृथिवी–पुत्र है। दृष्टिमूला सृष्टि–प्रक्रिया में चन्द्रमा ही पहले रखा जाता है। पुराण चन्द्रमा को परमेष्ठी का प्रवर्ग्य होने के नाते सूर्य या शिव से पहले रखते है और उसे रूद्र के ललाट पर मानते है।

स्वायम्भुव तम को महारात्रि, पारमेष्ठय तम को मोहरात्रि एवं सौर तम को कालरात्रि कहा जाता है। चान्द्र तथा पार्थिव तम की संज्ञा दारूण रात्रि है। ये पाँचों पिण्ड सत्यात्मक है। सत्य ऋत के गर्भ में रहता है। ऋत इनका मौलिक स्वरूप है। अतएव प्रत्येक पिण्ड रात्रि के गर्भ में है।

इसके अतिरिक्त देवी के और भी पाँच विशेषण है। स्वयम्भू या ऋषि–प्राण की दृष्टि से वह महाविद्या है। परमेष्ठी या पितृतत्व की दृष्टि से उसकी संज्ञा महामाया है। जगत् की आद्या शक्ति सबसे पहले स्वयम्भू को ही तम या मोह से आवृत करके सृष्टि–प्रक्रिया या सिसृक्षा भाव में लाती है। उसी के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में कहना पड़ा।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

सूर्य की दृष्टि से वह शक्ति महामेधा है–**'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते'**। यह सूर्य के ही मेधतत्व के लिए कहा जाता है अश्वमेध इसी मेधा से होता है। क्रान्तिवृत्त का ही नाम अश्व है। क्रान्तिवृत्त विद्या की संज्ञा अश्वमेध विद्या है। गतितत्व की विद्यमानता के कारण क्रान्तिवृत्त के अश्व कहा जाता है। आशु ग्रहणशील बृद्धि का नाम मेधा होता है। ऐसी बुद्धि जहाँ जाती हे, वहीं चिपक जाती है। मेध्यभाव मे चिपकने का गुण होता है। उसमें सोम होता है। अतएव सोम संयुक्त मेधा की विशेषता चिपकना ही है। पारमेष्ठय सोम वही मेधा है। किन्तु परमेष्ठी की मेधा असुरों की है। वही मेधागुण जब सूर्य मे आता है, तो दोनो का उपास्य बनता है। सौर अग्नि या सावित्र अग्नि से उसी मेधा की याचना की जाती है। देवता तथा पितर उसी की उपासना करते हे। अक्षर या प्राणतत्व या ज्ञान की संज्ञा देव है। क्षरभूततत्व एवं कर्म का सम्बन्ध पितरों से है। मेधा तत्व मे दोनो का समावेश है।

देवी की महास्मृति संज्ञा चन्द्रमा, की दृष्टि से हैं, क्योंकि चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ है और स्मृति गुण मन का ही है महामोहा,महादेवी महासुरी – ये तीनो नाम पर मेष्ठी को ही लक्ष्य करते हे। वे व्यापक नाम हैं। अज्ञान से आवृत ज्ञान का नाम मोह है। अथर्व से आवृत त्रयी का नाम मोह है। सुब्रहम आवृत ब्रह्म मोह है। सर्वप्रथम परमेष्ठी में ही मोह उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न है कि परमेष्ठी में उत्पन्न असुर कैसे मरे? उनमें जब तक मोह उत्पन्न न हो, तब तक वह असुर बल, कैसे परास्त हो? असुर प्रसन्न हुए कि

पाँच सहस्र वर्ष तक हमारा मुकाबला कोई नही कर सकेगा। असुरो में मोह कैसे हुआ? केन्द्र विच्युति का ही नाम मोह है। असुरों को केन्द्र का पता होता तो वे विष्णु से वर माँगने को नहीं कहते। केन्द्र संयुत परिधि का नाम ब्रह्मौदन है। केन्द्र – विच्युत परिधि का नाम प्रवर्ग्य है।

शुम्भ – निशुम्भ–

शुम्भ–निशुम्भ तथा चण्ड–मुण्ड चन्द्रमा के असुर है। रक्त बीज पृथिवी का असुर है। सूर्य का स्वरूप देवतात्मक भूतों का है। वहाँ भूत देवताओं के वश में रहते है। सूर्य में भूतों की सत्ता है। इसीलिए सूर्य की मृत्यु होती है। भूतों की सत्ता के कारण सूर्य का लय हो जाता है। मनु में जो **'कालं कालेन पीडयन्'** कहा है, उसका अभिप्राय सूर्य के सापेक्ष काल से स्वयम्भू परमेष्ठी के निरपेक्ष काल को पकड़ना है संवत्सर अग्नि तत्व है। संवत्सर विद्या अग्नि विद्या है। संवत्सर विद्या, सृष्टि विद्या, यज्ञ विद्या एवं अग्नि विद्या परस्पर पर्याय है। अस्यवामीय सूक्त मे जिसे वामपलित होता कहा गया है, वह अग्नि ही है। उसी की रौंद से आगे का संसार बनता है। सत्वप्रधान होने के कारण उसके पलित या श्वेत तथा अव्यक्त भाव के कारण वाम कहा जाता है। वह एकर्षि प्राण है। उसके मूल स्वरूप या ब्रह्मौदन की क्षति नहीं है। उसका पारिभाषिक नाम अक्षिति है। इसलिए कहा जाता है–

'एषं नित्यो महिमा ब्रह्मणो न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्'।

(बृहदारण्यकोपनिषद्. . . .)

स्वयम्भू के मूल स्वरूप से जो प्रवर्ग्य भाग निकलता है, उसी से विश्व का निर्माण होता है।

मार्कण्डेय–पुराण ८५ से ७३वें अध्याय तक उत्तर चरित्र के वर्णन में चान्द्री तथा पार्थिव शक्तियों का निरूपण किया गया है। सूर्य संवत्सर बन जाने से महिषासुर पराजित हो गया। परन्तु चन्द्रमा पृथिवी में आते–आते असुर पुनः बलवान हो गये। सारा अधिकार असुरों ने ले लिया। सूर्य में केवल अदिति भाव है। वह आदित्य है। उसमें दिति भाव नहीं है, किन्तु

चन्द्रमा में दिति और अदिति दो भाव हो जाते है। उसमें ॉ दिन प्रकाश तथा ॉ दिन तम का प्राधान्य रहता है। अदिति–भाव देव या प्रकाश है तथा दिति – भाव असुर –भाव या तम है। सब असुर राहुमूलक है। चान्द्र असुर और पार्थिव असुर सभी राहुमूलक है।

चन्द्रमा का राहु विधुन्तुद और पृथिवी का राहु सैहिकेय कहा जाता है। चन्द्रमा विधु है, पृथिवी सिंहिका है। शक्तिमयी विघृति या धरणी होने से वह सिंहिका कही जाती है। सूचीमुख विवर्त को राहु कहते है। कभी तो वह देवों के समक्ष होता है, कभी असुर उसके समक्ष आते हैं। सूर्य स्वज्योतिर्मय है तथा चन्द्रमा परज्योतिर्मय है। पृथिवी रूपज्योतिर्मय है। चन्द्रमा का दक्षवृत्त और पृथिवी का अक्षवृत्त–दोनों प्रकाश के सामने आते है और हट जाते है। असुरो का सांकेतिक नाम पूर्व देव है। देवता शक्ति का नाम है। पहले शक्ति आसुरी थी, पीछे वह देवात्मिका हुई। ज्योति देव है। यह बात सूर्य में प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

पृथिवी का दिति–भाग अत्रिमय है। वही चन्द्रमा की उत्पत्ति का कारण बनता है। चन्द्रमा अत्रिपुत्र कहलाते है। धामच्छद या प्रकाश को रोकने वाले प्राण की संज्ञा अत्रि है। पृथिवी का तमोमय प्राण अत्रि कहा जाता है। इसके संघात से ही चन्द्रपिण्ड का उदय होता है। इसी से ऋतु–भाव पैदा होता है। चन्द्रमा ही ऋतु का जन्मदाता है। अत्रि के रस का प्रस्रवण ही पृथिवी का आर्तव भाव है। इस आर्तव भाव के कारण ही पृथिवी के असुर का नाम रक्तबीज रखा गया। मासिक धर्म के समय स्त्री, आत्रेयी होती है। जो आर्तव भाव स्त्री मे आता है, वह पृथिवी का अत्रि–भाव ही है। स्त्री का आर्तव भाव ही रक्तबीज है।

पृथिवी माता है। उसमे प्राण प्रस्तुत होता है। वह आर्तव पहले पतला रहता है, पीछे वही घनता का सम्पादन करता है, जैसे खांड़ की चासनी से राब बनती है। पानी का अंश माप बनकर उड़ता है। स्वंय पृथिवी इसके प्रस्तुत होने से पिण्डात्मक बनी है। सूर्य की गर्मी से उसमे से रस टपकता है या भाप बनती है। उसे सूर्य के चारों ओर घूमना पड़ता है। वही पानी,

जिससे पृथिवी नामक पिण्ड बना है, सूर्य के ताप से चू–चू कर चन्द्रमा का निर्माण करता है। चन्द्रमा के तमोभाग का नाम वृत्र एक सामान्य संज्ञा है–

'यदवृणोत् तस्माद् वृत्रः'। जिसमें अवरण करने का गुण विद्यमान है, उसे वृत्र कहते हैं। पृथिवी का तमोभाग भी असुर मण्डल है। वही राहु या सैंहिकेय है। वृत्र और राहु–इन दोनों असुरों से देवता पलायित हो जाते है।

देवों ने विजय के लिए पार्थिव शक्ति और चान्द्री शक्ति की आराधना की। सौरी शक्ति हेमवती उमा है। वहीं पृथिवी पर पार्वती कहलाती है। उत्तर – चरित्र के अधिपति सूर्य या शंकर उसके पति है।

पार्वती या पर्वत की पुत्री इस नाम का भी एक विशिष्ट हेतु है। परमेष्ठी का सोम सलिल था। वह रस सरणशील था। उसे सरिर या इरामय भी कहा जाता है। वह पृथिवी पर आते–आते गाढ़ा होकर शिला–भाव मे परिणत हो जाता है। वही अश्मा या पर्वत है। उसी अश्मा सोम ने पृथिवी को पकड़ रखा है। चट्टान अश्मा सोम का प्रतीक है। अश्मा सोम या पाषाण रस का साक्षात् प्रतीक शिलाजतु है।

उत्तर चरित्र में जितना भी वर्णन है, वह देवी के पार्थिव तथा चान्द्र रूप का वर्णन है। स्वयम्भू और परमेष्ठी की गौरी यहाँ पृथिवी में पार्वती बनती है। जो गौरी पारमेष्ठय सलिल का तक्षण करती है, वही यहाँ पृथिवी में पार्वती कहलाती है। यथा–

'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'।

(ऋ. ॉ.ॉ .ॉ)

पर्वतराज हिमवान् अश्या सोम के प्रतीक है। वही हिमालय पर पार्वती की शरण में देवगण गये–

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया।।

(मार्क.पु. * .)**

हिमालय के उत्तर पार्श्व में उन्हे देवी मिली। सौरी शक्ति का विकास उत्तर भाग में ही होता है। सूर्य की हेमवती उमा का ही पार्थिव रूप पार्वती है। सूर्य या शम्भु उत्तर चरित्र के अधिष्ठाता है। इनकी शक्ति भी उत्तर में विकसित होती है, दक्षिण मे नहीं।

देवी के इस महनीय स्तोत्र में **'नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः'** यह मन्त्र का स्वरूप आता है। इसमें 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै' यह जो तीन बार कहा जाता है, वह शक्ति का वितान है, जो त्रिक रूप में होता है। **'त्रिषत्या वै देवाः'**– यही अग्नि के तीन जन्म या देवों के तीन सत्य कहलाते हैं। शक्ति का पूर्व–चरित्र स्वयम्भू परमेष्ठी से तथा मध्यम चरित्र सूर्य से एवं उत्तर – चरित्र पृथिवी से सम्बन्धित है। सृष्टि का स्वरूप पिपीलिकामुखी है। मुखभाग स्वयम्भू, चक्षुस्थानीय सूर्य और पादस्थानीय पृथिवी–ये तीन अन्नाद अग्नियाँ है, जिन्हे क्रमशः ब्रह्माग्नि, देवाग्नि तथा भूताग्नि कहते है। इनके बीच में परमेष्ठी और चन्द्रमा – ये दो अन्न या सोम है।

'नमो नमः'– यह शिव – शक्ति की सम्मिलित आराधना है। यह विश्राम – भूमि है, जिसमें शिव शक्ति का समुच्चय है।

मार्कण्डेय–पुराण के पचासीवें अध्याय मे कहा गया है कि माँ पार्वती गंगा में स्नान करने आई थी–

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जान्हव्या नृपनन्दन।।

(मार्क.पु. * .*)

पारमेष्ठय सोम का प्रतीक गंगा है। उस सोम समुद्र से वह शक्ति अपने को संयुक्त करती है, भले ही वह पृथिवी में उत्पन्न हो। गंगा में स्नान करते हीवह सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हुई और शिवा बन गयी। उसके शरीर–कोश से शिवा कौशिकी उत्पन्न होती है। यथा–

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूभवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीर कोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा।।

स्तोत्रं ममैतत् क्रियेत शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः।।
शरीर कोशाद्यतस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति समंस्तेषु ततो लोकेषु गीयते।।

(मार्क.पु. * . *-*)

शरीर में और विराट् में भी कौशिकी है। जब सौम्यभाव शरीर–कोश से निकल गया, तो पार्वती कृष्णा या कालिका बन गयी। असुरों को भयभीत करने के लिए कालिका रूप आवश्यक है। कालिका रूप तामसी रूप है। कौशिकी अम्बिका के सौम्य रूप को खाने के लिए चण्ड–मुण्ड दौड़े। अमृत – मन्थन के समय असुरगण अमृत को खाना चाहते थे। वहाँ भगवान् विष्णु को दूसरे रूप से उनका मोहन करना पड़ा। सोम या अमृत जड़ मोहन था। उससे अधिक नारी रूप से मोहित किया।

मस्तक सैंहिकेय और मध्यभाग की संज्ञा विधुन्तुद है। देवों की ऊर्ध्वगति होती है, असुरो की अर्वाक। वे मस्तक नीचा करके चलते है। मस्तक पृथिवी का भाग सैंहिकेय है और धड़ चन्द्रमा का भाग है। ये ही दोनो चण्ड–मुण्ड है। केन्द्र की शक्ति मुण्ड और परिधि भी शक्ति चण्ड है। दोनों एक दूसरे के सहयोगी है। केन्द्र ब्रह्मौदन है, परिधि प्रवर्ग्य है। केन्द्र की शक्ति धन और परिधि की शक्ति ऋण होती है। प्रवर्ग्य भी शक्ति है, जैसे तम में भी राशियों का प्रसार रहता है। शक्ति का सूत्र है –

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्ययोहति।
यो में प्रतिबलो लोके स में भर्ता भविष्यति।। (मार्क.पु. * /१०)

मार्कण्डेय पुराण में ८६वें अध्याय में धूम्रलोचन नामक दैत्य के युद्ध का वर्णन है। वह अन्धकार स्वरूप है। अग्नि के मन्द तेज से धूम्र उत्पन्न होता है। इधर देवी का वाहन जो सिंह है, वह क्षात्र तेज का प्रतीक सूर्य है। चण्ड–मुण्ड के वध के कारण देवी का नाम चामुण्डा पड़ता है–

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि।।

(मार्क.पु. * .)

सब असुरों के प्रवर्ग्य उसी एक शक्ति में लीन हो जाते है। वह चण्ड तथा मुण्ड दोनो को अपने भीतर समेट लेती है। संहार भूतो का ही होता है, प्राणों का नहीं। शरीर असुर या भूत है। असुर–सृष्टि के विनाश का अर्थ है– भूत–सृष्टि का संवरण। देव भाव से असुर भाव का संयमन हो जाता है। वह लयमात्र है, नितान्त नाश नहीं।

चण्डिका चान्द्री शक्ति है। इसकी सहायता के लिए सप्तमातृकाएँ योगिनियाँ उत्पन्न होती है। यही ऋग्वेद की **'सप्त स्वसारः'** या सात बहने है (ऋ॰ ॰ .)। इन्हे स्वसृविध प्राण कहा जाता है, जो एक ही मूल प्राण शक्ति के सात रूप है। इन सातों का अलग–अलग नैदानिक ध्यान है। जो देवताओं के ध्यान हैं, वे ही इनके भी है। उनके आयुधों की एक–एक निदान विद्या में व्याख्या है।

ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही तथा ऐन्द्री – ये सात देव–शक्तियाँ चण्डिका की सहायता के लिए उपस्थित हुईं। स्वंय शिव ने उन्हें प्रेरित किया। इसी मातृगण के द्वारा रक्तबीज नामक असुर का वध किया गया। वस्तुतः ये सातों एक ही देवी शक्ति के रूप हैं या उसकी विभूतियाँ हैं, जैसे एक देवमाता अदिति के सप्तपुत्र सात आदित्य हैं। जैसा कि मार्कण्डेय – पुराण में वर्णित है –

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः।।
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका इति।।

चतुर्थ अध्याय

(शक्ति स्वरूप तथा शाक्त सिद्धान्त)

1. वेदों में शक्ति स्वरूप

2. जगत में शक्ति तत्व की कल्पना तथा वेद में शक्ति का ब्रह्म रूप

3. वेद में शक्ति का क्षर एवं अक्षर रूप, क्षर की नश्वरता तथा अक्षर शाश्वत् दृष्टि

4. वेद में शक्ति का प्रकृति एवं पुरूष रूप, शून्य एवं अशून्य रूप, क्षर एवं अक्षर में भेदाभेद, जीव एवं जगत की उत्पत्ति तथा विनाश में शक्ति का महत्व

5. उपनिषद में शक्ति के महामाया, महाविद्या आदि शक्ति स्वरूप की उपासना एवं उसका महत्व

!! चतुर्थ अध्याय !!

शक्ति स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्त

वेदो में शक्ति स्वरूप

शक्ति–तत्व की उपासना अनादि काल से ही इस जगत में होती आ रही है। लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों विषयों की सिद्धि इससे होती है, इसीलिए आर्य जनता सनातन काल से ही बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, सौन्दर्य तथा निःश्रेयस प्रभृति तत्वों को अपने ध र्म एवं समाज के अंगरूप में मानती आ रही है। ये सारी वस्तुयें शक्ति–तत्व के ही रूपान्तर हैं। उपनिषदों में जिसे ब्रह्म कहा गया है, वह शक्ति–पदार्थ का अभिन्न रूपान्तर ही है इसीलिए आचार्य श्री शंकर भगवत्पाद ने सौन्दर्य लहरी में कहा है :–

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभावितुं।

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।

अर्थात ब्रह्म शक्ति–तत्व से युक्त होकर ही कार्य करने में समर्थ है, अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। अनुभव से भी यह बात प्रत्यक्ष है कि शक्तिमान ही कोई ी कार्य करते देखा गया है। संसार के इतिहास से भी यह बात स्पष्ट होती है कि जगत में सदैव शक्तिशालियों का ही बोलबाला रहा है। आर्य जाति ने अतीतकाल में जो कुछ भी ऐश्वर्य, ज्ञान, तप आदि के निमित्त जो उन्नति की थी, उसका मूल कारण शक्ति–तत्व की विधिवत् उपासना ही है, क्योंकि बिना शक्ति के यह सब असम्भव है।

जगत के सबसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के अवलोकन से भी यह बात पुष्ट होती है, जिनका उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा। वैदिक–वांग्डमय में भी सबसे प्राचीन संहिता–ग्रन्थों के अनेंक मन्त्रों में शक्ति–तत्व का रहस्य निरूपित किया गया है।

देवीसूक्त, रात्रिसूक्त तथा सरस्वती सूक्त को प्रसिद्ध ही हैं। यहाँ प्रथमतः अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूक्त पर ही विवेचन किया जा रहा हैं, जिससे शक्ति–विषयक ईश्वरीय आदेशो का रहस्य समझने का भाव हृदयंगम किया जा सके। शक्ति रूप का प्रधानतयाः निरूपण करने वाले तान्त्रिक साहित्य के भावों का सामंजसय भी यथास्थान किया जायेगा, जिससे तान्त्रिक साहित्य के विषय में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का निवारण हो सके। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ तान्त्रिक सिद्धान्त का मिलान करते हुए विचार किया जायेगा।

इस सूक्त के कुल चार मन्त्र हैं। भृगु आंडिगरस करके ऋषि है और इसके देवता विद्युत् हैं। इस विद्युत तत्व के द्रष्टा या अविष्कारक भृगु मुनि की शक्ति का उहाहरण महाभारत पुराण प्रभृति गन्थों मे जिस प्रकार निरूपित किया गया है, उस तरह का कोई दूसरा उदाहरण आर्य ग्रन्थों में नही मिलता है। वे इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने ब्रम्हा, विष्णु एवं महेश की भी परीक्षा ली थी और विष्णु को भी लात मारी थी। यजुर्वेद में भृगु आंडिरस के विषय में इस प्रकार कहा गया है–

'भृगूणामाङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्'।

अर्थात् आंडिरा गोत्र वाले भृगुओं के तेज से तेजस्वी हो जाओ। इसी के अनुसार माध्यन्दिन शतपथ–ब्राम्हण में भी कहा गया है–

'इत्येतद्वै तेजिष्ठं तेजो यद् भृग्वांङ्गिरसाम्'।

अर्थात् भृगु आंडिरसों का ही यह सर्वश्रेष्ठ तेज है। गोपथ–ब्राम्हण में भी कहा गया है– **'एतद्वै भूमिष्ठं ब्रम्ह यद् भृग्वांडिरसाम्'।** **(गोपथ–१,३,४)**

यह सब महत्व शक्ति–तत्व का ही है। **'ऋषयो मन्त्र–द्रष्टारः'** के अनुसार उक्त शक्तिशाली भृगु आंडिरा मुनि इस रहस्यमय सूक्त के ऋषि हैं। उन्होंने ही इस अनादि शक्ति–विज्ञान को संसार के समक्ष प्रकट किया है। विद्युत् इस सूक्त का प्रतिपाद्य देवता रूप शक्ति–पदार्थ है। 'द्युत् दीप्तौ' इस धातु से क्विप् प्रत्यम होने पर कर्त्रर्थक दीप्ति, प्रकाश आदि अर्थों की सिद्धि के अनन्तर विद्युत् का स्पष्ट अर्थ होता है कि विद्युत् सबका प्रकाशक है और स्व–स्व कार्यों के निष्पादन मे समस्त पदार्थों को वह योग्यता प्रदान कर रही है। आजतक पाश्चाच्य विज्ञान के प्रचार–प्रसार से विद्युत् तत्व का जो प्रचार एवं उपयोग हो रहा है, वह तो इसका स्थूला ही रूप है। शुद्ध चेतन रूप, जो सारे जगत् का नियामक है, इससे व्यतिरिक्त है। वही इस सूक्त का प्रतिपाद्य विषय है। उसे ही दार्शनिक ग्रन्थों में सच्चिदानन्दरूपिजी बतलाया गया है। वही ब्रम्ह–तत्व है। यह भाव सूक्त के अक्षरों पर ध्यान देने से प्रकट होता है, जिसका प्रथम मन्त्र इस प्रकार है–

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।

नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि।।

अर्थात हे प्रकाश रूप वाली देवि विद्युत शक्तिरूप! आपको नमस्कार हैं। शब्द रूप से गर्जना करने वाली आपको नमस्कार है। अश्म वज्र भी आपका ही रूप है, अतः उसे नमस्कार है, जिससे आप हमारे कष्टों को नष्ट करती हैं।

विद्युत् का मुख्य सम्बन्ध जल से है। उसका कारण रूप मेघ है। उसतें विद्युत की चमक, गर्जना तथा वज्रपति तीनों होते हैं। ये तीनों विद्युत शक्ति के भौतिक स्वरूप हैं।

जगत् के व्यवहार में इन तीनों वस्तुओं का उपयोग करके आज भौतिक विज्ञान अनेक चामत्कारिक दृश्य नित्यनमे रूप में दिखा रहा है, परन्तु इससे लोग केवल ऐहिक लाभ ही उठा सकते हैं, मानसिक या अध्यात्मिक उन्नति में इसका कोई साक्षात् उपयोग नहीं हैं, केवल बाह्योपकरण मात्र में ही इसका उपयोग है। इसलिए इसे मनुष्य जीवन कर लक्ष्य मानने वाले पाश्चाज्य समाज का इस समय विनाशोन्तुखी प्रवाह हो रहा है। इलेक्ट्रान–प्रोट्रान तथा न्यूट्रान इन दो प्रकार की बिजलियों से समस्त पार्थिव पदार्थो की सृष्टि हुई है। पृथिवी का यह वर्तमान रूप इन्हीं दोनों बिजलियों के योग का परिणाम है। यह विशिष्ट विज्ञानवेत्ताओं का गत है। इसी से मिलता–जुलता वैदिक सिद्धान्त भी है–

'इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा'।

(श०ब्रा० १४.१.२.१०)

अर्थात भूत–भौतिक सृष्टि के पहले यह पृथिवी ही उत्पन्न हुई। विद्युत के विषय में इस मन्त्र में जितने शब्द आये हैं, उनकी निरूक्ति वैदिक ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न प्रकरा से की गयी है। यथा–

'विद्युत शक्तिः तान् देवान् व्यद्यत् पाप्मनः सकाशात्
वियोगितवान् यद् विद्युत तस्माद् विद्युत'।

(तै०सं० ३.१०.७.१)

अर्थात देवताअरों को पायों से मुक्त करने के कारण उसका नाम विद्युत हुआ।

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते

तद्दैवतो समन्त्रो भवति, तास्त्रिविधाः ' परोक्षकृताः, प्रत्यक्ष-

कृताः, आध्यात्मिक्यश्च'। (निरूक्त-७.१)

अर्थात-जिस अर्थ की इच्छा से ऋषि जिस देवता की स्तुति करता है, वह मन्त्र उस देवता का होता है। उसके तीन भेद हैं- परोक्ष, प्रत्यक्ष तथा अध्यात्मिक। अन्य पुरूष की अपेक्षा से जो वर्णन होता है, उसे परोक्ष, मध्यम पुरूष भी अपेक्षा वाले वर्णन प्रत्यक्ष तथा उत्तम पुरूष (अहम्) के रूप से तादात्म्य करके बतलाने वाले मन्त्रों को आध्यात्मिक कहते हैं। इस नियमानुसार सूक्त की यह ऋचा प्रत्यक्षकृत है। ऋषि प्रत्यक्ष रूप में उस महाशक्ति का वर्णन कर रहे हैं। वेदान्त शास्त्र में अन्य पुरूष का अन्तर्भाव मध्यम तथा उत्तम पुरूष में किया जाता है।

'युष्मदस्मद्गोचरयोः' इत्यादि भाष्म में स्वामी श्री शङ्करा-चार्य जी ने अहम् और त्वम् को ही निकट सम्बन्धी माना है। इनमें भी 'अहम्' ही मुख्य है। 'त्वम्' का व्यवहार भी कल्पित हैं, क्योंकि व्यवहार काल में 'त्वम्' का उपयोग मानकर भी अपने को सब कोई 'अहम्' ही कहते हैं। इसलिए 'त्वम्' का व्यवहार कल्पित ही हैं, क्योंकि भेद मायिक है और भेदकृत समस्त वर्णन मायिक है। परमार्थ आध्यात्मिक वर्णन है। परोक्ष, प्रत्यक्ष वर्णनों का अभिप्राय अध्यात्मवाद में तात्पर्य रखता है।

महर्षि व्यास जी भी 'तत्तु समन्वयात्' (वे.द.१.४.४) इस सूत्र से समस्त वैदिक वाक्यों का तात्पर्य ऐसा ही मानते हैं। महर्षि मास्क ने **'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि'** इस देवी सूक्त को आध्यात्मिक अर्थ में ही बतलाया है। अतएवं अध्यात्मवाद की अपेक्षा से इस मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है (वैदिक अर्थ अध्याम्यवाद के ही अन्तर्गत है)- 'हे देवि! विद्युतरूपे! मूलाधार चक्र में सार्धत्रयवळय रूप से रहोवाळी तुझे नमस्कार है। ध्वनि, वर्ण रूप से गर्जना करने वाली, तुझे

नमस्कार है! स्वाधिष्ठान आदि चक्रों के भेदन में बज्र का कार्य करने वाली तुझे नमस्कार है'।

इन तीनों कार्यो की सिद्धि शक्ति से ही होती है, जिसे तन्त्रशास्त्राभ्यासी साधक अच्दी तरह से जानते हैं। इनके सुसम्पन्न होने पर सभी साधको के कष्ट तथा पाप विनष्ट हो जाते हैं। इसीलिए ऋषि ने कहा है- 'येनादूडाशे अस्यसि'। अर्थात हमारे (साधकों के) सभी क्लेशों को दूर करती हैं।

शक्ति-पदार्थ का विवाद रूप में निरूपण करने वाले तन्त्र-ग्रन्थों में भगवान शिव ने बतलाया है कि मूलाधार चक्र में सोये हुए कार्य के आकार में सार्ध त्रिवळय रूप में जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण शक्ति-तत्व है, जो आन्तरिक साधन से जागृत होता है। उक्त मन्त्र के वर्णन के अनुसार ही तान्त्रिक साधना में शक्ति पदार्थ का वर्णन किया गया है। त्रिपुरासारसमुच्चय में कहा गया है -

शक्तिः कुण्डलिनीति या निगदिता आईमसंज्ञा जग-
न्निर्माणे सततोद्यता प्रबिलसत्सौदामिनीसन्निभा।
शंखावर्तनिभां प्रसुप्तभुजगाकारां जगन्मोहिनीं
तन्मध्ये परिभावयेद् विसतातन्तूपमेयाकृतिम्।।
हूँकारेण गुरूपदिष्टविधिना प्रोत्थाप्य सुप्तां ततः
कृत्वा तां कलया तथापरमया चिद्रूपया सङ्गताम्।
माया-कुण्डलिनी-समहितमनास्तामुच्चरेत् काशिकां
शक्ति ब्रह्म महापथेन सहितामाधारतः स्वात्मना।।

(त्रिपुरासारसमुच्चय-४.१०.११)

अर्थात आईम संज्ञा वाली, जगत् की रचना में सदैव उद्यत, चमकती हुई विद्युत के समान, शंख के मुख के सदृश आवर्त के समान (चक्करदार), सोये हुए साँप के समान, समस्त जगत् को

मुग्ध करने वाली, विसतन्तु के समान कुण्डलिनी शक्ति मानी गयी है। गुरूपदिष्ट रीति से 'हूँ'। बीजाभ्यास द्वारा सोपी हुई कुण्डलिनी को उठाकर परम चित्कळा से उसका योग करके आधार-पक्ष से लेकर सहस्रार-पर्यन्त समस्त पट्चक्रों का समाहित मन द्वारा अनुभव करना चाहिए।

इसी मार्ग में योगी साधकों को शब्द या नाद का भी अनुभव होता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है -

आदौ मत्तालिमाला गलपथविगलत्तार झंकारहारी

नादोऽसौ वंशिकां स्यानिलभरितलसद्वंशनिस्वानतुल्यः।

घण्टानादानुकारी तदनु जलनिधिध्वानधीरो गभीरो

गर्जत्पर्जन्यघोषः पर इह कुहरे वर्तते ब्रह्मनाडयाः।।

(त्रिपुरासारसमुच्चय-४.३)

अर्थात प्रथमतः मत्त भृङ्ग की गुंजार होती है। इसके अनन्तर वेणु की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है। तत्पश्चात् घोष ब्रह्म-नाड़ी में सुनाई पड़ता है। नौ नाद तथा वर्णो की उत्पत्ति भी तन्त्रशास्त्र में कुण्डलिनी के जागरण पर ही मानी जाती है। कुण्डलिनी का यह रहस्य षट्चक्रों के सहित वेद में भी माना गया है -

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षति एकपदी द्विपदी सा

चतुष्पदी नवपदी बुभूषुधी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।

(ऋग्वेद-१.१६४.४७)

अर्थात गौरी वाक् कुण्डलिनी महाशक्ति जलों को तोड़ती हुई (जल से पंचतत्वों का उपलक्षण हैं, जो षट्चक्रों में चिन्तित होते हैं। तोड़ने से बज्रपाती ब्रहीत होता है। इस प्रकार 'तक्षू-तनू करणें'

की अर्थ–सङ्ग होती है।) एकपदी, ऊँ द्विपदी, सोऽहम् सा ऊँ चतुष्पदी, ऊँ भूर्भुवः स्वः अष्टापदी, अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तथा नवपदी नवनाद वाली हैं। सहस्रार में सहस्राक्षर वाली भी हो जाती है।

यह रहस्य तत्ववेत्ता योगियों को भलीभाँति विदित है। यहाँ इसे लिखने का अभिप्राय यह है कि सूक्त के प्रथम मन्त्र में 'विद्युते' स्तनमित्नवे, अश्मने'– इन शब्दों द्वारा जन्त्रोक्त सिद्धान्त का भी एकीकरण होता है। षट्चक्रों में जिन–जिन देवताओं का वास माना जाता है, वे व्यष्टि रूप हैं। 'यः पिण्डे स ब्रह्माण्डे' की उक्ति के अनुसार वे देवतागण भी उसी परा महाशक्ति के अंश है। जैसे शरीर के संचालन में उनका उपयोग है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में भी उनका रूप है।

पिण्ड–ब्रह्माण्ड के अभेद का अनुभव कर अद्वैत तत्व पर पहुँचना ही शाक्तवाद का परम लक्ष्य है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार प्रथम मन्त्र में कहा हुआ शक्ति का स्थूल रूप इस पराशक्ति का ही रूपान्तर है, जो गुण–वैचित्र्य से नानाकार प्रतीत हो रहा है, **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' का यही अभिप्राय है। द्वैत अवस्था में रहते हुए योग–क्षेम की प्राप्ति करना भी अत्यन्त आवश्सक है। अतः सूक्त के द्वितीय मन्त्र द्वारा ऋषि कहते हैं –**

नमस्ते प्रवतो न पाद्यतस्तपः समूहसि।

मृडया नस्तनूभ्यः मयस्तोकेभ्यस्कृधि।।

अर्थात हे देवि! प्रकृष्ट ज्ञान वाळों को अराप पतन की ओर नहीं ले जाती हैं, इसलिए आपको नमस्कार हैं, क्योंकि आप तय, ज्ञान आदि श्रेष्ठ वस्तुओं का समूह हैं।

अपने कल्याणात्मक रूपों से आप हमारी रक्षा करें। हम आपकी सन्तान हैं। हमारे लिए कल्याण – मार्ग का दर्शन करायें।

भुक्ति–मुक्ति दोनों प्रकारों की प्राप्ति शक्ति–साधना से होती है। इसी अभिप्राय से दुर्गासप्तशती ग्रन्थ में सुरथ तथा समाधि इन दोनों अधिकारियों को मेधा महर्षि ने उपदेश दिया है। **'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'** वाला सिद्धान्त इसी तत्व रप माना गया है। सूक्त के उक्त मन्त्र में यही बात कही गयी है। दुर्गासप्तशंती के निम्नलिखित मन्त्र में भी ऐसा हीर कहा गया है –

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे–

ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वन्या।

ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे

विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।। (दुर्गासप्तशती-११.३१)

इस मन्त्र की व्याख्या सर्वस्वकार ने जैसी की है, उसका तत्व यह है कि 'हे देवि! ज्ञान उपाय के साधन आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं में, जिससे लोक के योग–क्षेम का विधान होता है, मनुस्मृति प्रभृति शास्त्रों द्वारा प्रवृत्ति तथा विवेक के दीपस्वरूप वेदान्त प्रभृति शास्त्रों का जो अनादर करते हैं, उन्हें अहम् –मम अभिमान रूप संसार में, जो अन्धकार रूप है, आप घुमाती रहती है।

'अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते'।

इस मन्त्र में भी उक्त तत्व का ही निरूपण किया गया है, अर्थात अविद्या की उपासना करने वाले घोर अन्धकार में चले जाते हैं। यही पतन है। **'विद्ययाऽमृतश्नुते'** – विद्या से ही अमृत की प्राप्ति होती है। इस लिए आप विद्धानो को पतन की ओर नहीं ले जाती हैं। अतः हमें भी वही मार्ग बतायें, क्योंकि –

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि–स्वधे ध्रुवे।

महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते।।

(दुर्गासप्तशती-११.२२)

अर्थात् ऐश्वर्य, लज्जा (शुभ गुण), महाज्ञान (अविद्या–निवर्तक ज्ञान), श्रद्धा, पुष्टि रूप स्वधा, नित्य, महारात्रि रूप अन्धकार, अज्ञान–स्वरूपावरण करने वाला भी हे नारायणि! आपका स्वरूप है, अतः आपको नमस्कार है।

वेद में इसे ही कल्याण रूपवाली शिवा–तनु कहा गया है –

'या ते रूद्र शिवातनूरघोरा पापकाशिनी।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीमहि।।

(यजुर्वेद–16.2)

अर्थात हे रूद्र! आपकी कल्याणकारी शान्ति तथा ऐश्वर्यादि को प्रदान करने वाली जो शिवा महाशक्ति तनु है, उसके द्वारा आप हमारा निरीक्षण करें। हम सब आपके पुत्र है, आप हमारा कल्याण करें।

'अमृतस्य पुत्राः'– इस श्रुति के अनुसार समग्र विश्व उसकी ही सन्तति हैं, श्यह सिद्ध होता है। **'यद्वै शिवं तन्मयः'** (तै.स. २.२..५.५) – यहाँ पर कल्याण के वाचक 'मय' शब्द का प्रयोग किया गया है। उक्त बातों की सिद्धि के लिए वैदिक कर्मकाण्ड एवं तान्त्रिक कर्मकाण्डों का निर्माण महर्षियों ने किया है, जिनका आचरण करके सभी प्रकार के ऐश्वर्ये की प्राप्ति होती है। महर्षि कणादने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है – **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**, अर्थात जिससें अभ्युदय, ऐश्वर्य और मोक्ष की प्राप्ति होती है, वही धर्म है। यह लक्षण शाक्त धर्म में पूर्णतया घटित होता है।

अब तीसरे मन्त्र से श्री परा शक्ति के अस्त्र–शस्त्रों को नमस्कार करते हुए उसके पर उत्कृष्ट सर्वव्यापक तथा योगियों के ह्रदय में निवास करने वाले स्वरूप को महर्षि बतलाते हैं–

प्रवतोनयान्नमः एवास्तु तुभ्यं

नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः।

विद्यते धाम परमं गुहायां

यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः।।

(यजुर्वेद-१६.३)

अर्थात उच्च पदवी पर आरूढ़ योगियों को आप गिराती नहीं हैं, प्रत्युत उन्हें अपनी सायुज्य पदवी प्रदान करती हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आपके अस्त्र–शस्त्रों को भी हमारा नमस्कार है, जिन्हें आपने असुरों के विनाशार्थ ग्रहण किया गया है। परत धाम गुप्त ह्रदय–प्रदेश है, उसमें आधार रूप से आप छिपी हुई हैं, उसे हम अच्छी तरह से जानते हैं।

अहं मम रूप अविद्याजन्य संसार में ही लगे रहने वाले जीव बार–बार जन्म मरण रूप संसार में आते रहते हैं। क्योंकि उनके सुख का आधार क्षणिक, विनाशी, आपातरमणीय यह संसार ही हैं। उन्हे शाश्वत शान्ति नहीं प्राप्त होती। अतः मुमुक्षु इससे विरत होकर विद्या का अनुसरण करता है, उसी को **'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** (गीता) वाली उक्ति से कहा गया है।

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति यस्माद् भूयों न जायते'।

(कठोपनिषद्)

अर्थात ब्रह्म को प्राप्त होने पर मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा रखने वाला) पुनः संसार में नहीं आता है। इसी तत्व को 'प्रवतोन पात्' इस पद से कहा गया है। यही शक्ति का परम धाम है। श्रीदुर्गा–सप्तशती में कहा गया है।

या मुक्ति हेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व–

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रिय तत्वसारै।

मोक्षार्थिभिःर्मुनिभिरस्त समस्त दोषै–

र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि।।

(दुर्गासप्तशती–४.७)

अर्थात् समस्त अविद्या–दोषो से रहित होकर मोक्षार्थी मुनिगण विद्या रूप से तुम्हारा ही अभ्यास करते हैं। वह विद्या तुम ही हो। जब–जब भक्त समुदाय असुरों से पीड़ित होता है, तब–तब असुरों के विनाशार्थ श्री आदिशक्ति का आविर्भाव होता हैख जिसे किसी न किसी प्रकार से समस्त आस्तिक समुदाय मानता ही है।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

(दुर्गासप्तशती–११.५५)

इस मन्त्र से भी यही बात कही गयी है। उस समय अनेक तेजःस्वरूप अस्त्र–शस्त्र में सुसज्जित होकर श्री अम्बा प्रकट होती हैं। इसे ही सूक्त में 'हेतये च तपुषे' पद से कहा गया है। श्री दुर्गासप्तशती में भी श्री भगवती के अस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना की गयी है। यथा –

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।

करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।

(दुर्गास्पतशती–४.२७)

अर्थात् हे अम्बिके! खड्ग, शूल, गदा प्रभृति तुम्हारे जितने भी अस्त्र–शस्त्र हैं, उनसे तुम हमारी सब ओर से सर्वविध रक्षा करो।

हे देवि! समुद्ररूपी परमात्मा में अभेद सम्बन्ध से सामरस्य–भावापन्न होकर आप छिपी हुई हैं, इस रहस्य को हम उप–निषद् द्वारा जानते हैं। **'मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे'** (देवीसूक्त–7)

इस मन्त्रांश में भी समुद्र पद आधारार्थो में व्यवहृत हुआ है। सायणाचार्य ने इसका अर्थ परमात्मा ही किया है –

'समुद्रवन्त्यस्माद् भूतानि इति समुद्रः परमात्मा'।

अर्थात–समस्त प्राणिसमूह जिससे प्रकट होते हैं। इसलिए परमात्मा को समुद्र कहा जाता है। बहुत लोग इस मन्त्रांश से ब्रह्म को कारण तथा शक्ति तत्व को कार्य समझते हैं, परन्तु यह केवल भ्रम की स्थिति है। श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म का योनि–कारण शक्ति को भी कहा गया है –

'मम योनिर्महद ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्'।

वास्तव में निमित्त की अपेक्षा से ब्रह्म तथा शक्ति–दोनों के परमकारणत्व का व्यवहार होता है।

'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।

(तैत्तिरीयोपनिषद्)

इस उपनिषद्–वचन में भी मन्त्रार्थ को विशद किया गया है।

उक्त तीनों मन्त्रों द्वारा शक्तितत्व का भौतिक, दैनिक तथा अध्यात्मिक रहस्य बतलाया गया है। वैदिक, तान्त्रिक एवं पौराणिक मतों में जो शक्ति का स्वरूप माना जाता है, उसका अभेद प्रतिवादित किया गया है। जो लोग पौराणिक तथा तान्त्रिक सिद्धान्त को वेदबाहच अनार्यो की वस्तु बताते है, तथा उसमें वर्णित महाकाली आदि शक्ति रुपों की पूजा को अनार्य पूजा कहते हैं, उन्हे वैदिक सिद्धान्त को विचारपूर्वक देखना चाहिए तथा समझ–बूझकर अपनी सम्मति देनी चाहिए।

वैदिक – साहित्य में अनेक बार 'देवी' या 'शक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा–

'प्राणो वाऽपानो व्यानहितस्तो देव्यः'।

(ऐतरेय–2.४)

अर्थात यहाँ पर प्राण, अपान और व्यान – इन तीनो को देवी बताया गया है। अपान तथा व्यान की प्राण के ही रूप है। वास्तव में प्राण ही शक्ति है। इसी के लोक में कहा जाता है। इसीलिए ऐसी कहावत है कि दम से ही आदम है, अन्यथा मुर्दा है। इसी प्राण, अपान तथा व्यान को पौराणिक सिद्धान्त में महाकाली, महालक्ष्ती तथा महासरस्वती कहा जाता है। महाविद्या–क्रम में यही काली, तारा तथा षोउशी के नाम से अभिहित है।

अथैषकः प्रजापतिस्तद्देव्यश्च कश्च।
तस्माद्देविकाः पञ्च भवन्ति पञ्च हि दिशः।।

(श0ब्रा0६.५.१.३६७)

अर्थात प्रजापति (परमात्मा) और उसकी देवियाँ पाँच है, क्योंकि दिशाएँ पाँच ही हैं। पच्चाक्नाम में ही देवी – देवताओं का समस्त विभाग है। दीक्षा–काल में दिशा–क्रम से ही घटनास्थापन करके पाँच आम्नायों का उपदेश किया जाता है। षष्ठाम्नाय अधराम्नाय कहा जाता है अथवा अनुतत्राम्नाय। उसका उपदेश अमुख्य होने से पाँच में ही गतार्थ होने के कारण पाँच ही कहा गया।

'ता वा एता देव्यः दिशो ह्येताः (देव्यो दश दिशः)।

(श0ब्रा0६.५.१.३१)

अर्थात ये दशों दिशाएँ ही दश देवियाँ है। महाभागवत में ऐसी कथा आयी है कि जब सती अपने तिपा दक्ष के घर जाने लगी, तब उन्हें भगवान् श्री शंकर ने रोका। उस समय अपने भयानक रूप से प्रकट होकर उन्होनें अपना महत्व दिखाया। श्री महादेव उसे न देख सकने के कारण उठकर भागे। तब श्री भगवती ने दशों दिशाओं में अपने दश महाविद्या रूप धारण कर श्री शंकर को रोका था।

इस कथा का मूल उक्त श्रुति ही है। दशों विद्याओं की लय–भावना की भी कथा वहीं पर कही गयी है। सभी रूपो का लय श्री महाकाली रूप में किया गया है। यही रूप समस्त शक्ति रूपो में मुख्य है। इसका एक स्वतन्त्र ही विज्ञान है। काली रूप की प्रधानता क्यों है, यह लेख के बाहर की बात है। अतः इसकी चर्चा प्रकृत प्रसड़ग में समीचीन नहीं प्रतीत हो रही है।

रूद्र रूप श्री शिव की ही ये शक्तियाँ है। रूद्र अग्नि को कहते हैं। यथा –

अग्निर्वै स देवः तस्मैतानि नामानि। शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते। भव इति यथा वाहीकाः। पशूनां पती रूद्रोऽग्निरिति।।

(श.ब्रा.१.७.३.८.)

अर्थात उस देवी को शर्व, पूर्व देश वाले उसी को भव, वाहीक–देशोद्भव पशुपति, रूद्र, अगिन प्रभृति नामों से कहते हैं। अथ च–

'रूद्रो हि वै एष देवानामशान्तः सञ्चितो भवति'।

(कौ0ब्रा0 18.4)

देवताओं में रूद्र अशान्त अग्नि–तत्व है। इसीलिए रूद्र रूप में ही संहार, युद्ध आदि कार्यो के लिए मुख्यतः इसकी उपासना की जाती है। रौद्र रूपों में काली–रूप प्रधान होने के कारण मुण्डकोपनिषद् में–

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी
लेलायमाना इति सप्तजिहवा।। प्रमितः निर्दिष्ट है।
'पञ्च शून्यस्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता'।,

इस तन्त्रवाक्य द्वारा भी काली की प्रधानता सिद्ध होती है।

'चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता।
विद्याराज्ञी सिद्धविद्या कलौ शीघ्रफलप्रदा'।।

(शक्तिसङ्गम–तन्त्र)

'कलौ काली विशिष्यते' आदि वचनों से सर्वत्र काली रूप की प्रधानता ज्ञात होती है।

रौद्र रूप की प्रचण्डता को लक्ष्य करके शिल्प–विज्ञान के अनुसार शक्तियों की मूर्ति – कल्पना की गयी है। वैदिक साहित्य में शक्ति – तत्व की प्रचण्डता का निरूपण

अनेक स्थानो पर किया गया है। इस सूल के चतुर्थ मन्त्र में यही तत्व तथा संगठन शक्ति का रहस्य बताया गया है, जो श्री दुर्गासप्तशती के मध्यम चरित की कथा का मूल है। इसी रहस्य को लेकर मार्कण्डेय–पुराण में अत्यन्त विस्तार, पूर्वक वर्णन किया गया है। यथा –

यां त्वा देवा असृजन्त विश्व
इषुं कृण्वाना असलय ध्रष्णुम्।
सा नौ मृड विदथे गृणाना
तस्यै ते नमो अस्तु देवि।।४।।

अर्थात जिस महाशक्ति को धृष्णृ–समस्त देवगण को कष्ट देने वाले महिषासुर के वध के निमित युद्ध में स्तुति द्वारा समस्त देवगणों बाण, अर्थात–महिषासुर के विनाश के साधन–रूप से बनाया था, वह पराम्बा देवी हमारी रक्षा करें। हे देवि! आपको नमस्कार हैं, क्योंकि युद्ध में आपकी ही स्तुति होती है।

दुर्गासप्तशती के द्वितीय अध्याय में यह क्या है कि महिषासुर नामक दैत्य ने एक समय अपने आतंक से समस्त देवगणों को अत्यन्त पीड़ित किया था। देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के साथ मिलकर एक महान् तेज प्रकट किया। वह तेज एक दिव्य स्त्री–रूप में प्रकट हुआ। समस्त देवगणों ने उसे अपने–अपने अस्म–शस्य प्रदान किये। सभी के अड़ग–रूप से उस महाशक्ति का आविभवि हुआ था, जिसे कहा गया है –

अर्थात् समस्त देवताओं के शक्ति–समूह से ही वह मूर्ति बनी थी। इसे ही सूल में–

'यां त्वा देवा असृजन्त विदधे गृणाना'।

इन रहस्समय पदों से कहा गया है। उस सामूहिक शक्ति ने महिषासुर को युद्ध में मार गिराया, जिसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी नहीं मार सके थे।

दुर्गासप्तशती के तृतीय अध्याय में यह प्रसड़्ग स्पष्ट रूप से निरूपति किया गया है। चतुर्थ अध्याय में उसी महत्वपूर्ण महती देवता की स्तुति भी देवताओं ने की है, जो अपूर्व है। **'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'**– इस वैदिक एकता के रहस्य को प्रकट करने के लिए ही यह मध्यम चरित्र की कथा निरूपति की गयी है।

शक्ति–तत्व के समस्त रहस्यों को प्रकट करने वाले इस श्री दुर्गासप्तशती नामक ग्रन्थरत्न में यदि संगठन–शक्ति का निरूपण न होता, तो एक बड़ी भारी कमी रह जाती, क्योंकि **'संधे शक्ति'** वाली युक्ति ही सर्वश्रेष्ठ शक्तिवाद की उक्ति है। 'यूनियन इजस्ट्रेन्थ–डिवाइडेड वी फाल' परम तत्व है। इसी का निदर्शन यह मध्यम चरित है। इसलिए श्री दुर्गा सप्तशती के तीनों चरितों में यह चरित सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। प्रथम तथा उत्तर चरित का पाठ अकेले करना निषिद्ध है, परन्तु मध्यम चरित के विषम में यह बात नहीं है। इसका पाठ अकले भी किया जा सकता है'–

'एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह'। (वे रहस्य – ३२)

अर्थात एकमात्र मध्यम चरित के पाठ से ही पूर्णता हो जाती है, परन्तु प्रथम तथा उत्तर चरित का पाठ अकेले नहीं किया जा सकता – इत्यादि।

इसी एकता के विषय में वेद का प्रतिपादन है–

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु पश्यतः'। (यजुर्वेद – ४०.४)

अर्थात एकता देखने वाले ज्ञानी – समाज को शोक कहाँ और मोह कहाँ? युद्ध के समय ही एकता का परम उपयोग होता है। इसीलिए 'विदथे गृणाना' कहा गया, क्योंकि युद्ध ही महान् आपत्ति है। स्वार्थ परायणता के समय ही युद्ध होता है। अप–स्वार्थ में ही कुमति (फुट) का बीज होता है। किसी देश, संस्कृति तथा जाति के पतन में व्यक्तिगत अप–स्वार्थ की प्रधानता रखकर सामूहिक स्वार्थ की उपेक्षा करनी पड़ती है, जिसे इतिहासज्ञ पूर्ण रीति से जानते हैं। ऐसे समय में महालक्ष्ती जी ही सुमति प्रदान कर अपने राष्ट्रभच्यों की रक्षा करती है। अतः उनकी स्तुति–पूजा का सदैव स्मरण रखना चाहिए।

महाभारत–युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिए गीतोपदेश के पूर्व श्री दुर्गा भगवती की स्तुति करने को कहा था, जिसे महाभारत के भीष्म–पर्व मे बड़े ही सुन्दर रूप में वर्णन किया गया है। जो इस महाशक्ति की श्रद्धापूर्वकः उपासना करते है, उन्हें पुनः किसी और की उपासना करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिए सूक्त के तृतीय मन्त्र में कहा गया है– "नम एवास्तु तुभ्यम्', अर्थात एक आप को ही हमारा नमस्कार है। इस सूक्त में सात बार 'नमः' शब्द का प्रयोग होने संसम् की संचालिका सप्तमातृका रूप को तथा निवृत्ति की सप्त–भूमिका को नमस्कार किया गया है।

'तस्यैते नमो अस्तु देवि'– इन स्त्रीलिड़ग वाचक 'तस्यै–, 'देवि' पदो से यह सूक्त शक्तिवाद का ही पोषक है, यह निःसन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है। 'देवि' पद सम्बोधन का होने के कारण प्रत्येक सूक्त के मन्त्र से इसका सम्बन्ध है।

युद्ध के निरूपण–प्रसंग में एक बात कहनी अवशिष्ट रह गयी है कि विजय प्राप्त होने के अनन्तर अभियान का होना नितान्त स्वाभाविक है, जिसे बताने के लिए केनोपनिषद् की दाक्ष की आख्यायिका बतायी गयी है। असुरों पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर देवताओं के अभियान को निवृत्र करने के लिए साक्षात् कृपामयी हेमवती उमा देवी का आविर्भाव उपनिषत्कार ने अत्यन्त ही सुन्दर रूप से लिखा है, जिसका दूसरा उदाहरण वैदिक साहित्य में मिलना कठिन है।

ब्रस्म–विद्या ही अभिमान–अहंकार आदि रहित शाश्वत शान्ति को देने वाली है। उसके बिना लौकिक विजय पुनः पतन का हेतु हो सकती है। इसीलिए उपनिषत् का उपसंहार 'ज्येये स्वर्गे प्रतितिष्ठति' रूप में किया गया है।

आजकल केवल ऐहिक भावना से प्रेरित होकर ही शक्ति की उपासना एवं साधक लोग परिश्रम करते रहते है, जिससे यह परम रहस्य लुप्त होता जा रहा है। अतः श्री जगन्माता से बार–बार यही प्रार्थना है कि अपनी सभी सन्तानो के अन्दर अपने सभी रहस्यों को प्रकट करते हुए सभी का कल्याण करें।

जगत् में शक्ति–तत्व की कल्पना तथा वेदों में शक्ति का ब्रह्मा–रूप–

प्रकाशमानां प्रथमं प्रयाणे
प्रति प्रयाणेऽप्यम् तायमानाम्।
अन्तः पदव्यामनुसच्चरन्ती–
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये।।
न विद्यते बलं यस्याः समानमन्यत्रेत्यबला।

शक्ति–नाम की वस्तु का प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर सकता है। कोई भी कार्य शक्ति के बिना नहीं हो सकता। एक मनुष्य बीमार होकर बिस्तर पर पड़ा था। बीमारी के प्रतिदिन बढ़ने के कारण वह बिस्तर से उठकर बाहर नहीं आ सकता था। एक दिन उसका मिन उसे देखने आया और दरवाजे के बाहर से ही उसे पुकारा। बिस्तर पर लेटे हुए रोगी ने मित्र से कहा कि 'हे मत्र! बिस्तर से उठकर बाहर आने की शक्ति मुझमें नहीं है, अतः तुम अन्दर ही आ जाओं'। इस प्रकार रोगी मनुष्य के कथन से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि शक्ति एक वस्तु है, ज़िसके बिना वह बिस्तर से उठकर बाहर नहीं आ सकता। रोगी मनुष्य की शक्ति क्षीण हो गयी है, परन्तु दामें जीवत तो है। शक्त (रोगी मनुष्य) जीवन होने हुए भी शक्ति के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता । शक्ति के बिना बैठना–उठना, चलना – फिरना आदि सामान्य क्रियाएँ भी नहीं हो सकतीं। शक्ति के द्वारा ही सब कार्य हो सकतू हैं। शक्ति से सब कार्य हो जाते, तो शक्त की आवश्यकता न होती, यह कथन भी समीचीन नहीं है।

कुछ माह के आनन्तर रोगी रोग मुक्त हो गाय तथा उसका शरीर बल एवं शक्ति से पूर्ण हो गया। पुनः उसका मित्र उससे मिलने आया और पूर्ववत् ही उसे पुकारा। तदनन्तर उसने उत्तर दिया कि 'शक्ति होते हुए भी मेरी बाहर आने की इच्छा नहीं है, तुम्ही अन्दर आ जाओ'। इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसमें शक्ति तो है, परन्तु इच्छा न होने से वह बाहर नहीं आया। तात्पय्र यह हुआ कि शक्ति स्वतन्त्र नहीं है तथा शक्ति के बिना शक्त भी अकेले कुछ नहीं कर सकता। इस प्रमाण से स्पष्ट होता है कि शक्ति तथा शाक्त के सम्बन्ध से जगत् के प्रत्येक कार्य सिद्ध होते हैं।

ब्रह्म, परमात्मद, चिति आदि शक्ति के नाम हैं तथा माया शक्ति, प्रकृति आदि शक्ति के नाम हैं। अग्नि में दाह शक्ति है। उस दाह शक्ति का अग्नि के साथ जो सम्बन्ध है, वैसा ही ब्रह्म का ब्रह्म की शक्ति के साथ सम्बन्ध है। ब्रह्म स पृथक नहीं है। शक्ति चिदानन्दरूपिणी है और परमातमा की सत्ता आदि सब कार्यो को करने वाली है।

माया शक्ति अचेतन मानी जाती है तथा ब्रह्म को अक्रिय कहा जाता है। मनुष्य के सदृश इनमें प्रेर्य–प्रेरक भाव नहीं होता। परन्तु जिस प्रकार अक्रिय चुम्बक के सामीष्य से जड़ लोहे में चेष्ठा आ जाती है, उसी प्रकार अक्रिम ब्रह्म की समीपता से अचेतन ब्रह्म में प्रत्येक कार्य करने की शक्ति आ ज़ाती है। यह प्रकृति ब्रह्मा से लेकर स्थावर–जंगम प्रभृति सृष्टि की रचना करती है, ऐसा ही शास्त्र का सिद्धान्त है।

चिदानन्दमयब्रह्म प्रति बिम्बसमन्विता।
तमोरजः सत्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा।। (पच्चदशी–१.१५)

ब्रह्म चिदानन्दस्वरूप है। उसकी प्रतिच्छाया से युक्त प्रकृति दो प्रकार की है। सत्व, रज एवं तमो गुण की समानावस्था का नाम प्रकृति है। ब्रह्म के सामीय्य से जो शक्ति प्रकृति को प्राप्त होती है, उस शक्ति का नाम ही प्रतिबिम्ब या प्रतिच्छाया है।

सत्तव शुद्धंविशुद्धिभ्यां मायाऽविधे चते मते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः।। (पच्चदशी–१.१६)

सत्तव की शुद्धि तथा अविशुद्धि के भेद से एक का नाम माया है और दूसरी का अविद्या। जब सत्तवगुण रजस् और तमोगुण के पराभूत करता है, तो वह सत्तवगुण की शुद्धि कहलाती है और जब रजस् एवं तमोगुण सत्तवगुण को पराभूत करते हैं, तो वह सत्तवगुण की अविशुद्धि कहलाती है। इसीलिए शुद्ध सत्तवप्रधान माया और मलिन

सत्तवप्रधन अविद्या कहलाती है। माया में प्रतिफलित चिदात्मा मााय को वश में रखता है। इससे चिदात्मा में सर्वज्ञता आदि गुण रहते हैं। इस चिदात्सा का नाम ईश्वर है।

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वै चित्र्यादनेकथा।
सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्।। (पच्चदशी–१.१७)

अविद्या में प्रतिफलित चिदात्मा अविद्या के अधीन रहता है। इससे अविद्या मे सर्वज्ञता आदि गुण नहीं रहते। इस चिदात्मा का नाम जीव है। उपाधिरूप अविधा के नाना रूप होने के कारण जीव भी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि भेद से नाना प्रकार का होता है। यह अविद्या स्थूल तथा सूक्ष्य शरीर का कारण होने से कारण–शरीर कहलाती है। इसीलिए कारण शरीर में 'मै हूँ, इस प्रकार के अभिमानवाले जीव को प्राा कहा जाता है। उक्त प्रमाण से ईश्वर तथा देवता आदि नाना प्रकार के जीवों का कारण माया–शक्ति ही कही जाती है।

तमं प्रधानप्रकृते स्तद्भो गायेश्वराज्ञया।
वियत्पनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिये।। (पच्च्दशी–१.१८)

उन प्राज्ञरूप जीवों के भागो क लिए तमोगुणप्रधान प्रकृति से ईश्वर की आज्ञानुसार आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी–इन पंचम महाभूतों की उत्पत्ति होती है। पंचमहाभूतों के प्रत्येक सत्गुण अंश से श्रोयदि पंचज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण पंचमहाभूतों के सत्वगुण अंश से अन्तःकरण की उत्पत्ति होती है। पंचमहाभूतों के प्रत्येक रजोगुण अंश से वाक् आदि कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। समस्त पंचमहाभूतों के तमोगुण अंश से प्राणों की उत्पत्ति होती है। वृत्ति के भे से प्राण को भी प्राण, अपान, उदान, समन और व्यान आदि नामों से पुकारा जाता है। पाँच ज्ञानेन्दियों,

पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि – इन सत्रह तत्वों के मेल से सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्य शरीर में 'मै हूँ, ऐसा अभिमान वाला जीव तैजस् कहा जाता है। इस जीव के भोग के लिए भोग्य पदार्थ तथा भोग के योग्य शरीर के लिए परमेश्वर ने पंचमहाभूतों का पंचीकरण किया, अर्थात एक–एक के पाँच–पाँच भेद से पच्चीस विभाग किये। इन पच्चीय विभागो में विभक्त हुए पंचमहाभूतों से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है।

ब्रह्माण्ड में चतुर्दश भुवन तथा विभिन्न भुवनों में रहने योग्य स्थूल शरीर की सृष्टि हुई। सूक्ष्य शरीर के अभिमानी तैजस् को स्थूल शरीर में अभियानी होने से 'विश्व' नाम से पुकारा जाता है। कारण सूक्ष्य तथा स्थूल–इन तीनो शरीरो में ईश्वर तथा जीव दोनों को अभिमान होता है। ईश्वर को समष्टि में अभिमान है तथा जीव को व्यष्टि में। समष्टि का अर्थ सब तथा व्यष्टि का एक है। समष्टि–कारण शरीर के अभिमान वाले ईश्वर को समष्टि–सूक्ष्म शरीर का अभिमान होने पर हिरण्यगर्भ नाम से पुकारा जाता है। तथा समष्टि – स्थल शरीर का अभिमान होने से वह विराट् कहलाता है। इस प्रकरा ईश्वर से लेकर सम्पूर्ण स्थावर–जंगम का कारण माया–शक्ति ही शास्म में प्रतिपादित है।

देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब माया से उत्पन्न हुए है। वेद में शिव, विष्णु आदि परमात्मा के नाम हैं। पुराणों में सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा, स्थिति के कर्ता विष्णु तथा लय के कर्ता रूद्र कहे गये है। विष्णु आदि माया उपाधि वाले ईश्वर की विभूतिरूप होने के कारण ईश्वर से भिन्न नहीं हैं। ईश्वर का कारण माया है और माया उपाधि के बिना ईश्वर रह नहीं सकता है। इससे ईश्वर के भेदरूप विष्णु आदि भी माया के कार्य है।

इस श्रुति में ईश्वर की ईक्षणपूर्वक सृष्टि का वर्णन है। माया–वृत्तिरूप ईश्वर के संकल्प का नाम ही ईक्षण है। प्रकृति नाम की माया–शक्ति ही सब प्रकार की सृष्टि की रचना करती है।

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिःसा प्रकीर्तिता।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण–२.१.५)

प्र शब्द का अर्थ प्रकृष्ट है तथा कृति सृष्टिवाचक है। सृष्टि में जिसकी उत्कृष्टता है, उस देवी का नाम प्रकृति है। प्रकृति शब्द का ऐसा ही अर्थ पुराणों में भी कहा गया है। ईश्वर की माया–शक्ति प्रत्येक वस्तु को नियम में रखती है और यदि वह माया–शक्ति नियम में न रखें, तो जगत् में विप्लव मच जाय।

परमेश्वर जिस–जिस देव तथा मनुष्य आदि की उपाधि को धारण करते हैं, वह सब परब्रह्मास्वाती माया–शक्ति की उपाधि है। परमात्मा जब सगुण रूप धारण करते है, तब चिदानन्दस्वरूपिनी शक्ति भी सगुण रूप धारक का परमात्मा के साथ ही रहती है। उपर्युक्त नाना प्रकार के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि समस्त सृष्टि की रचना करने वाला केवल शक्ति–तत्व है, इसमे संशय का कोई स्थान नहीं है।

'एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं ततम्'।

एक ही महाशक्ति भिन्न–भिन्न नामों एवं रूपों से प्रकट होकर भिन्न–भिन्न कार्यो का सम्पादक करती है। एक ओर वह रचनात्मक कार्य करती है, तो दूसरी ओर विध्वंसात्मक कार्यों के द्वारा सृष्टि को व्यवस्थित तथा नियन्त्रित करती है। एक और वह

विश्वप्रसूता के रूप में माता कहलाती है, तो दूसरी ओर जगद्रक्षक तथा पालक रूप में जगन्पिता कहलाती है।

एक और लक्ष्मी रूप मे जगत् को सरस, सुरम्य एव सुखपूर्ण बनाती है, तो दूसरी ओर अलक्ष्मी रूप में ऐश्वर्योन्त्र, स्वेच्छाचारी तथा कुमार्गरत प्राणियों को नाना प्रकार के दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर लाती है। वही अचिन्त्य विराट् शक्ति एक और भगवान् और दूसरी ओर भवगती के नाम से विख्यात होती है। ईश्वर–ईश्वरी, महेश्वर–महेश्वरी, ब्रह्म–शक्ति सब कुछ वही है। वही आदि पुरूष के रूप में एक ओर मुमुक्षुओं को तारती है, तो दूसरी ओर आदिशक्ति के रूप में भक्तो का त्रयताप निवारण करती है।

आदि शक्ति का अर्थ है– 'आरम्भिक शक्ति' और आदि पुरूष का अर्थ है 'आरम्भिक व्यापक'। व्यापकत्व भी एक शक्ति है। शाक्ति रहित व्यापक नहीं हो सकता। ईश्वर व्यापकत्व शक्ति से ही तो सर्वव्यापक है और संज्ञा की भिन्नता से संज्ञी भिन्न नहीं हो सकता। उदाहरणनार्थ तल–नीर, क्षीर–दूध, गिरि–भूधर, रवि–दिनकर, राशि–चन्द्र, विधाता–ब्रह्मा, हरि–विष्णु तथा हर–शिव आदि शब्दो में भेद होने पर भी वाच्यार्थ में भेद नहीं है। इसी तरह ब्रह्म तथा शक्ति में लिंगभेद तथा नाम–भेद होने पर भी अनन्यता तथा एकरूपता में कोई भेद नहीं हैं। यदि शक्ति और ब्रह्म में भेद माना जाय, तो ब्रह्म की भिन्न–भिन्न शक्तियों की पृथक–पृथक सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी। इस तरह एक ब्रह्म के स्थान में अनेक ब्रह्म की कल्पना करनी पड़ेगी और शक्तियों के पृथक–पृथक होने से शक्तिमान् के अभाव में धारक का लोप हो जाएगा। अतएव ब्रह्म तथा शक्ति में सदैव अभेद सम्बन्ध मानना ही यथार्थ एवं समुचित है। शास्त्रों मे कहा भी गया है–

न तस्य कार्य करणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते।

पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च।।

उस ईश्वर का कोई कार्य–कारण नहीं, उससे अधिकया उसके समान कोई नहीं, वह पराशक्ति (ब्रह्म) अनेक प्रकार से सुना जाता है। ज्ञान बल और क्रिया उसकी स्वाभाविक शक्त है।

यदि ब्रह्म से ज्ञान शक्ति निकल जाय, तो ब्रह्म अज्ञानी तथा यदि बल निकल जाय, तो अशक्त और यदि क्रिया शक्ति निकल जाय, तो अकर्मण्य हो जाएगा। ब्रह्म को आनन्दमय भी कहा गया है– 'आनन्द–मयोडभ्यासात्' (वेदान्तसूत्र)। यदि उससे आनन्द – शक्ति पृथक कर दी जाय, तो वह निरानन्द हो जाएगा। इस तरह ब्रह्म मे ब्रह्म की परिभाषा घट नहीं पायेगी। इससे सिद्ध होता है कि स्वभाव और स्वभाववान् का तादात्म्य अविच्छिन्न, नित्य सम्बन्ध है। यहाँ पर कोई यह कह सकता है कि संसार मे शक्ति तथा शक्तिमान् सदा भेद देखा जाता हैं, किन्तु वास्तव में संयोग–सम्बन्ध का तिरोभाव या नाश होता है, समवाय का नहीं। आत्मा और आत्मा की चैतन्यता सदा अभिन्न एवं अविच्छिन्न है या यों कहें कि चैतन्यता ही ब्रच हे। वेद–शास्त्रों मे शक्ति का रूप चैतन्यता ही माना गया है। दुगसिप्तशती का श्लोक है –

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

अर्थात – जो देवी सब भूतो ? में चेतना रूप से विद्यमान है, उसे नमस्कार है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के षष्ठ अध्याय में वर्णन हे कि दिव्य गुण मुक्त अकेला, सर्वभूतों

मे छिपा, सर्वव्यापक, सर्वान्र्यामी, सर्वकर्मफलदाता, सर्वाधिकारी होकर निवास करने वाला, सदा देखने वाला चेता (चैतन्य) सत–, रत तथा तम से रहित है। पुनश्च प्रथम अध्याय मे कहा गया है कि ऋषियों ने ध्यान–योग के द्वारा देवात्शक्ति (भगवान् की आत्मशक्ति) को देखा। इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि चैतन्य ब्रह्म ही आदि–शक्ति है।

ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण रूप से दो भेद हैं। निर्गुण ब्रह्म संकल्प–शक्ति से रहित मूकवत्–, जड़वत् और सृष्टि, पालन, नाश, अनन्तत्त्व, व्यापकत्व ईश्वरत्व, निर्विशेषत्व प्रभृति देवी शक्तियों से शून्य रहता है। वही फिर चित्शक्ति (जो निर्गुण अवस्था में भी ब्रह्म को सगुण रूप देती रहती है) की प्रेरणा से नित्य – बुद्ध नित्य–शुद्ध, दयामय, उत्पादक, पोषक, नाशक, सर्वगत, सर्वातम, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूप मे परिणत होता है।

'एकोऽहं बहु स्याम्' इस प्रकार इच्छा करने से ही वह आनन्द शक्ति ईश्वर एक से अनेक रूपो मे विभाजित हो जाता है, किन्तु उसके निज स्वरूप में कोई विकार नहीं होता। वह सदा अभेदमय, अविकारी और एकरस रहता है। काल जिस तरह कल्प, मन्वन्तर, चतुर्युग, शताब्दी, वर्ष, मास, पथ, सप्ताह, दिन प्रहर, घटी, पलख पिवल आदि कई भागों में विभाजित होने पर भी एकरस, अखण्ड रहता है, ठीक उसी प्रकार विकृत सृष्टि मे अनेकत्व भास होने पर भी वह चित्शक्ति, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी माता सदा एकरस तथा अविच्छिन्न रहती है। दृश्यादृश्य सारी सृष्टि शक्तिमय है। देव, दैत्य, मानव, पशु, पक्षी, कृमि, स्थावर, जंगम प्रभूति सब कुछ शक्ति से उत्पन्न है और उसी के द्वारा प्रेषित हो रहा है तथा सदैव शक्ति की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्नशील है। यह एक

सर्वमान्य, विज्ञानसिद्ध सिद्धान्त है कि जो जिससे उत्पन्न होता है, वह अन्त में उसी की इच्छा करते हुए उसी में विलीन हो जाता है। अतएव सब में शक्ति की चाह होने से यह निर्विवाद सिद्ध है कि सम्पूर्ण सृष्टि शक्ति से ही उत्पन्न है।

शक्ति शब्द के स्त्रीलिंग तथा ब्रह्म शब्द के पुल्लिंग होने से स्त्रीत्व तथा पुरूषत्व का निरूपण ब्रह्म–शक्ति में नहीं होता। एक ही सूत्र कुर्ता, मुरैठा, अँगौछा आदि नामों में पुरूषवाचक तथा टोपी, साड़ी, धोती, पगड़ी आदि नामों में स्त्रीवाचक कहा जाता है, किन्तु सूत्र वास्तव में स्त्रीत्व और पुरूषत्व से रहित होता है। इसी प्रकार एक ही चैतन्य विभिन्न नाम रूपो से स्त्रीवाचक और पुरूषवाचक शब्दो में व्यवहृत होने पर भी वस्तुतः स्त्रीतव और पुरूषत्व से रहित है। शास्त्र–ग्रन्थों में कई जगह ईश्वर के लिए –

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'।
'माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः'।
'त्वं हि माता त्वं हि पिता'।

आदि वाक्यों का व्यवहार हुआ है। इस तरह भगवान को माता और पिता दोनो कहा गया है। हम बहुधा परस्पर दो पर्यायवाची शब्दो को विभिनन लि1õगें में व्यवहृत होते देखते है, किन्तु उससे अर्थ में कोई भेद नहीं आता। जैसे–शक्ति, बल, बुद्धि, ज्ञान आदि। इसी तरह ब्रह्म और शक्ति की संज्ञाओं में भिन्नता होने पर भपी मूलतः उनमें स्वरूप भेद नहीं है।

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न'।

शक्ति वस्तुतः स्वरूपिणी है, यह बात देवशास्त्र क मत से सिद्ध है। ऋग्देव के दशम मण्डल के १२५वें सूत्र में कहा गया है –

मै सबकी ईश्वरी स्वामिनी हूँ, उपासको को धन देने वाली, सूर्य–चन्द्रादि नक्षत्रों को चलाने वाली, परब्रह्म ज्ञानास्वरूप मै ही हूँ, ऐसी गुण्मेंवाली, सच्चिदानन्दस्वरूपिणी, सब प्राणियों में चैतन्य रूप से रहने वाली मुझको सब कर्मो में विधान करते है। विश्व की सृष्टि मै ही करती हूँ, मै किसी अन्य अधिष्ठता की अपेक्षा नहीं रखती, स्वंय अपनी इच्छा से अत्यन्त दृतगति से प्रवृत्तिमार्ग को चलाती हूँ, पृथिवी से आकाश पर्यन्त दृश्यादृश्य, स्थूल–सूक्ष्य संसार से पृथक् निर्विकार, अकल्पित, असङ्ग एकरस, अचल ब्रह्म चैतन्यरूपा मैं ही हूँ। इनके अतिरिक्त और भी ऐसे मन्त्र आये है, जिनसे शक्ति और ब्रह्म का अभेद प्रकट होता है।

देवी भागवत के चतुर्थ अध्याय में ऐसा वर्णन आता है कि ब्रह्मा ने विष्णु भगवान से पूछा कि आप किसका ध्यान और किसकी तपस्या करते है? तब विष्णु भगवानृ न उत्तर दिया कि यद्यपि संसारासक्त लोग तुम्हें स्रष्टा, मुझे पालक और शिव को नाशक शक्ति समझते है, परन्तु वेदपारङ्गत व्यक्ति तुम्हारी राजस, मेरी पालक और शिव की संहारक शक्ति को पराशक्ति के आश्रित समझते है।

शक्ति की ही प्रेरणा से मै क्षीरशायी होता, युद्ध करता और पालन करता हूँ। अतः मै उस आदिशक्ति का ही ध्यान करता हूँ। देवी भागवत में अन्यत्र भी विश्वप्रसूता, सर्वभूतेशी, माहेश्वरी, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी, सृष्टि स्थितिसंहार कारिणी, ब्रह्मस्वरूपिणी, चैतन्यरूपा, आत्मस्वरूपिणी, ब्रह्मा–विष्णु–शिवरूपा आदि नामों से सम्बोधित कर देवी की स्तुति की गयी है।

देवी भागवत के सप्तम स्कन्ध में बत्तीसवें अध्याय में स्वंय देवी ने अपना स्वरूप इस प्रकार बतलाया है – 'मैं ही चिक्ष्छक्ति, परब्रह्म–स्वरूपिणी हूँ, मै अग्नि ही उष्ठता,

सूर्य की किरणों, कमल की शोभा के समान ब्रह्म से अभिन्न हूँ। मे ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, ब्रह्माणी, वैष्णवी, सूर्य, तारागण, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, चाण्डाल, व्याथ, क्रूरकर्मा, सत्यकर्मा, महाजन, स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग दृश्यादृश्य, श्रव्य तथा सपर्शनीय सब कुठ हूँ'।

अतएव सब उपर्युक्त युक्ति और वेदादि शास्त्र–ग्रन्थों के प्रमाणों से यह निर्विवाद सिंद्ध होता है कि वास्तव में त्रिकालाबाधित शक्ति ही ब्रह्म है।

वेद में शक्ति का क्षर एवं अक्षर एवं रूप, क्षर की नश्वरता तथा अक्षर की शाश्वत दृष्टिः–

शक्ति–तत्व का ज्ञान उतना ही सूक्ष्म है जितना कि ब्रह्मतत्व का। ये दोनों दुर्ज्ञेय हैं। दोनों को यथार्थ प से मझने के लिए ही अनेक दर्शनों का प्रपंच हुआ है। एक का यथार्थ ज्ञान दूसरे का सम्यक् ज्ञान कराने के लिए पर्याप्त समर्थ है अथवा इन दोनों में किसी एक का ज्ञान कर ही दूरे को समझना है। दोनो में से किसी एक का ज्ञान ही परमपुरूषार्थ है। इसी परम प्रयोजन के उद्देश्य से शास्त्रों, आयमों तथा दर्शनों की प्रवृत्ति हुई है। इनमें से किसी एक की आराधना न कर जीवन व्यतीत करना ही बृद्धि–वैभव को प्राप्त कर पशुतुल्य रहना है। इसी ज्ञान के लिए त्रिवर्ग–धर्म, अर्थ तथा काम प्रवृत्त हुए है। इन तीनों का साफल्य तभी है, जब पुरूष अपने जीवन का लक्ष्य इन दोनो में से किसी एक का ज्ञान कर लेना समझता है। इन दोनों में से किसी एक तत्वप का ज्ञान जिसने कर लिया, उसके लिए कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है –

'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'।

जिसको प्राप्त कर उससे बढ़कर कोई लाभ नहीं है, ऐसा मान लेता है अथवा–

'एतद् बुद्धया बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत'।

जिसके नाम से बुद्धिमान तथा कृतकृत्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह विचार करना आवश्यक है कि इस परम तत्व का रहस्य तथा स्वरूप क्या है?

यदि कोई कहता है कि मै इस तत्व के स्वरूप को जाना है और आपको मै उसे समझा दूँगा, तो उसके लिए श्रति का वचन है – **'यस्य मतं न वेद सः'**। अर्थात जो कहता है कि मैनें समझा है, वह कुछ नहीं जानता। इसके विपरीत जो व्यक्ति उसको समझ ही नही पा रहा है, जह्मँ कि यह स्थिति रहती है –

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'।

जहाँ पर वाणी मन के साथ न पहुँचकर वापस आ जाती है, अर्थात मूक हों जाती है, उसी की समझ में कुछ आ गया – **'यहयामतं तस्य मतम्'**। तब शक्ति–तत्व के प्रतिपादन को ही मूक्त उपहासास्पद कहना चाहिए ? नहीं, मन के साथ वायी वहाँ पर कैसे नहीं पहुँच पाती, इसका जब तक अनुभव नहीं होगा, तब तक उसके परे कोई तत्व है, इसका ज्ञान होना असम्भव ही है। इसलिस मन के साथ वाणी कहाँ तक जा सकती है, यहाँ पर यही जानने की कोशिश की जा रही है। जिसको उस तत्व का स्वरूप ज्ञान कहा जाएगा और जिसके ज्ञान से इस तत्व की आराधना में प्रवृत्ति होगी। योग्यतानुरूप एक या अनेक जीवन मे उसकी आराधना करने के ाद उस वस्तु का तत्वज्ञान होना सम्भव होगा तथा उस ज्ञान का उदय होने से अविद्या का नाश होकर मनुष्य कृतकृत्य होगा।

यहाँ प्रसङ्गतः शक्तितत्व की व्याख्या की जा रही है। यदि परमात्मा सर्वव्यापी है, तो उसकी परा शक्ति भी सर्वव्यापी है। इसी परमात्मा को हम सर्वशक्तिमान् कहते हैं। शक्तिमान् का ज्ञान कराने में उसकी शक्ति ही कारण है। सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों के उदयास्त का नियमन, समुद्र–पर्वत आदि का अपनी मर्यादा को न छोड़ना, यथासमय वृद्धि, सर्दी, गर्मी आदि की आविर्भाव प्रभृति दैवी नियमों का पालन देखकर उनकी नियामिका शक्ति का अनुमान स्वाथाविक है। अथवा सर्वशक्तिमानृ की कल्पना ही शक्तिमान् परमात्म तत्व को कोई परब्रह्म, परमेश्वर, पुरूषोतम, आदिशक्ति, अदितत्व आदि कहते है। वेदशास्त्र इस तत्व के स्वरूप को अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य, निर्गुण, निराकार, नित्य, सर्वगत, सनातन, अचल आदि शब्दों से प्रतिपादित करते हैं। जब परमात्मा ही अव्यक्त, अचिन्त्य, नित्य तथा सनातन है, तो उनकी शक्ति भी उसी प्रकार की होना चाहिए और है भी वैसी ही। किन्तु यह शक्ति अव्यक्त होती हुई अव्यक्त परमात्मा से भिन्न है। इस अव्यक्त शक्ति से व्यक्त भाव प्रकट होते हैं–

'अव्यक्ताद्वयक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे'

इस वचन में निर्दिष्ट अव्यक्त यही है। परमात्मा पर, अव्यक्त होते हुए भी अविकार्य है, किन्तु यह शक्ति विकारों की प्रसवित्री है। यह स्वयं नित्य होती हुई अनित्य तत्वों की जन्दात्री है। परमात्मतत्व केवल चेतनस्वरूप है, किन्तु यह शक्ति तत्व चेतनाचेतन दोनो हैं। श्रृति–स्मृति में यह शक्तितत्व को परमात्मा की मूल प्रकृति कहा गया है, जिसके प्रधान, अव्यक्त, माया आदि शब्द पर्याय हैं। जैसे मनुष्य की पृकृति मनुष्यरूप ही होती है, उससे भिन्न नहीं कही जा सकती, अथवा मनुष्य की विशेषता मात्र उसकी प्रकृति पर निर्भर रहती है, उसी प्रकार परमात्मस्वरूप की पहचान उसकी

पृकृति की वहचान पर निर्भर है, इसीलिए वह परमात्मस्वरूप ही है। तन्त्रशास्त्र में यह स्पष्ट है। यथा–

सर्वद्या तु भवेच्छक्तिरानन्द द्यनगोचरा।
ब्रह्मरूपचिदानन्दा परब्रह्मैव केवलम्।।

सबसे प्रथम जो आदिशक्ति प्रतीत है, वह ब्रह्मरूप सच्चिदानन्द केवल परब्रह्म ही है। यही प्रकृति परमा शक्ति कही जाती है। यह जगद्रूपी विकृति इसी शक्ति का प्रतिबिम्ब है। कहा भी गया है –

प्रकृतौ विद्यमानायां विकृतिर्न बलीयसी।
प्रकृतिः परमा शक्तिर्विकृतिप्रतिबिम्बता।।

प्रकृति के रहते अधिकबलवती नहीं हो सकती। प्रकृति ही परमाशक्ति है और विकृति प्रतिबिम्ब है।

परमात्मतत्व तथा शक्तितत्व अर्थात उस परमात्माकी अनादि मूल प्रकृति, ये दोनों अव्यक्त हैं। अव्यक्त परमात्मतत्व सर्वदा निर्विकार है और वह परतत्व विकार शक्ति अव्यक्त मूल प्रकृति से परे है–

'परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तात्सनातनः'।

मूल प्रकृतिभूत शक्तितत्व के दो रूप हैं– एक पर और दूसरा अपर/अपरा प्रकृति की व्याख्या भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीभद्भगवद्गीता में इस प्रकार की है –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अङ्कार द्वितीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयम् ....।। (श्रीभद्भगवद्गीता– ७.४.)

अर्थात पृथिवि, जल, तेज, वायु तथा आकाश–इन पंचमहाभूतों के तन्मात्र, मन से अहड़कार, बुद्धि से तहत्तव और अहड़कार शब्द से मूलप्रकृति (चैतन्यरहित)–यह आठ प्रकार की अपरा पृकृति है, जो अचेतन अथवा जड़ है। परा प्रकृति के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि में पराम्।
जीवभूतां महाबाहो यमेदं धार्यते जगत्।।

(श्रीभद्धगवद्गीता–७.५)

इससे भिन्न जो पकृति है, वह परा है, क्योंकि वह जीवभूता है एवं जगत् की ध ारिका है। यह परा प्रकृति चेतन स्वरूप, अतः परमात्मता का अंशभूत है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः वष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

(श्रीभद्धगवद्गीता– १५.७)

ऐसा भगवान कहते है। इसलिए यह चेनाचेतनात्मक परा तथा अपरा प्रकृति ही परब्रह्म परमा शक्ति है। संख्यशास्त्र में यह स्पष्टतः कहा गया है कि केवल जड़ परन्तु अव्यक्त मूल प्रकृति से ही सृष्टि का आरम्भ नहीं हो सकता। जब तक उस अव्यक्त मूलप्रकृतिं में चेतन किन्तु अव्यक्त पुरूष का अधिष्ठान न हो। अर्थात परब्रह्म अथवा परमात्मा की यह उभयविध प्रकृति प्रतिबिम्ब स्वरूप है, जो कि चराचर जगत् के रूप में भासमान होती है। जैसा कि कहा है –

'ब्रह्मबिम्बासर्वमेव जगदेतच्चराचरम्'।

ब्रह्मबिम्ब से ही यह सब चराचर जगत् निर्मित है। इस प्रकार परमाशक्ति के दो अंग है – एक चिच्छक्ति तथा दूसरी जड़शक्ति के अजड़ा शक्ति भी कहते है। अथवा में दोनो पुरूष पद से भी बोधित है। जड़ा शक्ति क्षर पुरुष है और अजड़ा अक्षर पुरुष।

जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते है –

द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।

(श्रीभद्गवद्गीता– १५.१६)

इस लोक में क्षर और अक्षर ये दो पुरूष है। सब प्राणिमात्र क्षर हैं और कूटस्थ यह अक्षर कहा जाता है।

उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः।।

(श्रीभद्गवद्गीता– १५.१७)

इन दोनों से भिन्न उत्तम पुरूष है, जो कि परमात्मा है और जो सब का प्रभू होता हुआ तीनो को व्याप्त कर धारण करता है और स्वंय निर्विकार है।

यस्मात् क्षरमतीतोऽहम क्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः।।

(श्रीभद्गवद्गीता– १५.१७)

यतो हि क्षर के पार करके अक्षर से भी उत्कृष्ट में हूँ, इसीलिए शास्त्र और वेद में पुरूषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

इस पुरूषोत्तम की परमाशक्ति स्वंय अव्यक्त होती हुई इन दोनों प्रकार की व्यक्त प्रकृति के रूप में प्रकट हो जाती है। ये दोनों अव्यक्त प्रकृति – पुरूष अनादि हैं। सत्व, रज तथा तम – ये तीनों गुण औश्र उसका विकार ये अव्यक्त प्रकृति के धर्म है, न कि अव्यक्त पुरुष के। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्धचनादी उभावपि।
विकाराँश्च गुणाँश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।

(श्रीभद्गवद्गीता– १३.१७)

परमा शक्ति के इन दो अडगों को क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ भी कहा गया है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का ज्ञान भगवान् ने गीता के त्रयोदश अध्याय में विस्तृत रूप से कराया है और अन्त मतें वे कहते हैं –

यावत् सञ्जायते किञ्चित् सत्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्र क्षेत्र संयोगात्तद्विद्धि भारतर्षभ।।

(श्रीभद्भगवद्गीता– १३.२६)

स्थावर या जंगम सभी प्रकार के सत्व क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होते है। हे भारतश्रेष्ठ अर्जुन। ऐसा तुम समझो। यहाँ पर क्षेत्र शब्द से क्षर पुरूष, अर्थात जड़ शक्ति अथवा अपरा प्रकृति तथा क्षेत्रज्ञ शब्द से कूटस्थ पुरूष का तात्पर्य गृहीत है। इस प्रकार अपराध तथा परा प्रकृति, क्षर और अक्षर पुरूष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, जड़ और अजड़ शक्ति – ये सब उसी अव्यक्त परब्रह्म की अव्यक्त परमशक्ति के ही दो व्यक्त स्वरूप है, जिससे इस चराचर जगत् का प्रादुर्भाव है। नारदीय – पुराण में यही बात स्पष्टता प्रतिपादित है–

प्रकृती हेतु देवस्य जड़ा चैवाजड़ा तथा ।
अव्यक्ताख्या जड़ा सा च सृष्टया भिन्नाऽष्टधा पुनः ।।
महान बुद्धिर्मनश्चैव पञ्चभूतानि चेतिह।
अवरा सा जड़ा श्रीश्च परेयं धार्यते तथा ।।
चिद्रूपा सा त्वन्ता च अनादिनिधना परा।
यत्समं तु प्रियं किञ्चनास्ति विष्णोर्महात्मनः ।।
नारायणस्य महिषी माता सा ब्रह्मभे पि हि ।
ताभ्यानिदं जगत् सर्व हरिः सृजति भूतराट् ।।

क्षेत्रा का ज्ञान भगवान् ने गीता के त्रयोदश अध्याय में विस्तृत रूप से कराया है और अन्त में वे कहते हैं –

यावत् सज्जायते किच्चित् सत्तवं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ संयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।

(श्रीभद्भगवद्गीता– १३.२६)

स्थावर या जंगम सभी प्रकार के सत्व क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होते है। हे भारतश्रेष्ठ अर्जुन। ऐसा तुम समझो। यहाँ पर क्षेत्र शब्द से क्षर पुरूष, अर्थात जड़ शक्ति अथवा अपरा प्रकृति तथा क्षेत्रज्ञ शब्द से कूटस्थ पुरूष का तात्पर्य गृहीत है। इस प्रकार अपराध तथा परा प्रकृति, क्षर और अक्षर पुरूष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, जड़ और अजड़ शक्ति – ये सब उसी अव्यक्त परब्रह्म की अव्यक्त परमशक्ति के ही दो व्यक्त स्वरूप है, जिससे इस चराचर जगत् का प्रादुर्भाव है। नारदीय – पुराण में यही बात स्पष्टता प्रतिपादित है–

प्रकृती द्वे तु देवस्य जडा चैवाजडा तथा।
अव्यक्तख्या जडा सा च सृष्टया भिन्नाडष्टघा पुनः।
महान् बुद्धिर्भनश्चैव पत्र्चभूतानि चेतिह।
अवरा सा जडा श्रीश्च परेयं धार्यते तथा।।
चिद्रूपा सा त्वनन्ता च अनादिनिधना परा।
यत्समं तु प्रियं किञ्चिन्नास्ति विष्णोंर्महात्मनः।।
नारायणस्य महिषी माता सा ब्रह्मणोऽपि हि।
ताभ्यामिंद जगत् सर्वं हरिः सृजति भूतराट्।।

इन पद्यों का अर्थ स्पष्ट है और भाव वही है, जो पूर्व–वर्णित है। सारांशतः यह स्थावर – जंगमात्मक सृष्टि परमात्मा का शरीर है, जिसकी संज्ञा क्षेत्र है। उस चराचरात्मक क्षेत्र को अवष्टब्ध कर व्यापक रूप से रहने वाला चतैन्य ही क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र

तथा क्षेत्रज्ञ आपस में मिलकर परमात्मा की परमा शक्ति हैं, जिसका आराधन धर्मग्रन्थों मे विहित है।

परमा शक्ति के उक्त दो रूपों में परातो जीवभूत चितिशक्ति है, जिसको काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा–सम्प्रदाय में भगवती संवित् या प्रत्यभिज्ञा कहा गया है। यह आध्यात्मिकी शक्ति है। इसके अधिष्ठान में जो अपराध शक्ति मून प्रकृतिरूपा तथा त्रिगुणात्मिक है, वह जब तक तीनों गुणों की साम्यावस्था रहती है, तब तक अव्यक्त रहती है। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था अथवा समप्रमाण में रहना जब बिगड़ जाता है, तब वह व्यक्त हो जाती है और इस चराचर रूप सृष्टि के द्वारा आसमान हो जाती है। इन तीनों गुणों में से जिस गुण का आधिक्य हो जाता है, उस गुण की शक्ति अधिक भासमान होती है। जैसे साच्विकी, राजसी तथा तानसी। सात्विकी शक्ति में सत्व गुण अधिक रहता है तथा अन्य दो में कम प्रमाण में रहता है। इसी प्रकार से राजसी शक्ति में रजोगुण का आधिक्य और तामसी शक्ति में तमोगुण का आधिक्य रहता है। इन तीनों गुणों के आधिक्यानुरूप तीन प्रकार की अधिष्ठान शक्तियाँ कल्पित हैं, जो कि परमा शक्ति की अंगभूत तीन देवता मानी गयी है। जैसा कि कहा गया है –

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाऽविकृता शिवा।
योगगम्याऽ खिलाधारा तुरीया याच संस्थिता।।
तस्यास्तु सात्विकी शक्ति तामसी तथा।
महालक्ष्तीः सरस्वती महाकालीति च स्त्रियः।।
तासां तिसृणां शक्तीना देहाङ्गीकारलक्षणात्।।

इत्यादि तीन अवस्थाओं से पर चतुर्थ अवस्था में रहने वाली शक्ति, अर्थात् परमा शक्ति, निर्गुण, नित्य, व्यापक, विकाररहित, मंगलकारी, योगगम्य तथा समस्त जगत् का

आधार है। वह शक्ति जब व्यक्त होती है, तब सात्विकी, राजसी तथा तामसी रूप से तीन प्रकार की होती है। इसे ही क्रमशः महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली नाम से लोक में जाना जाता है। ये तीन प्रकार की शक्ति के तीन स्त्री नाम हुए। जब इन्ही के पुरूष शरीरधारी देवताओं की कल्पना की जाती है, तो वे ही विष्णु, ब्रह्मा तथा रूद्र कहे जाते है। विष्णु सात्विक शक्तिमान् देव और उसकी शक्ति लक्ष्मी, ब्रह्मा राजस शक्तिमान् तथा शक्तिमान् तथा शक्ति सरस्वती और रूद्र तामस शक्तिमान् तथा शक्ति काली –ये माने गये है। मूल महाशक्ति परब्रह्मा स्वरूप ही है। परब्रह्म और उसकी परमाशक्ति मे ठीक वही भेद है, जो अग्नि और उसकी दाहकता में है। अग्नि का अग्नित्व दाहकतामूलक ही है। दोनों का अभेद है। एक कार्य है, तो दूसरा कारण। दोनों की स्थिति साथ–साथ है, किन्तु कार्यभेद से नामभेद है, जैसा कि परमा शक्ति के विषय में प्रतिपादित है –

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या साच तनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता।।

एक महाशक्ति के अनेक प्रकार कल्पित है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश–इन तीनों की तीन शक्तियाँ हैं, यथा –

परमात्मा यथा देव–एक एव त्रिधा स्थितः।
प्रयोजनव शाच्छक्तिरेकैव त्रिविधाऽभवत्।।

कुछ लोग आठ शक्तियों की कल्पना करते है, तो कुछ नौ की, कुछ लोग पचास विष्णु–शक्तियाँ मानते है, तो अन्य लोग पचास रूद्र की शक्तियाँ मानते है। अनेक कुछ–शक्तियाँ भी कल्पित है। अथवा थोड़े में कहें तो जितने देव है, उतनी ही उनकी

शक्तियाँ हैं, जैसे इन्द्र में ऐन्द्री शक्ति, वरूण में वारूणी तथा विष्णु मे वैष्णवी इत्यादि। सारांशतः कह सकते है कि शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं हो सकता। एक धर्म है, तो दूसरा धर्मी और दोनों अभेद रूप से है। इसलिए शक्ति की उपासना शक्तिमान् की ही उपासना है अथवा शक्ति के बिना शक्तिमान् की उपासना अप्रशस्त मानी गयी है। भगवान् शिव ने भी माँ पार्वती से कहा है –

शक्तिं बिना महेशानि सदाऽहं शवरूपकः।
शक्तिमुक्तों यदा देवि शिवोऽहं सर्वकामदः।।

हे पार्वति। शक्ति के बिना मै हमेशा शव के समान हूँ, अर्थात प्राणरहित। मै जब शक्ति से मुक्त रहता हूँ, तभी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला मंगलरूप हूँ।

मन्त्र का जप हमेशा शक्तियुक्त करने के लिए शास्त्रों में विधान है। शक्ति युक्त गायत्री के जप से ब्रह्म की सिद्धि होती है, क्योंकि सावित्री शक्ति साथ में है। शक्ति तो साथ रहती ही हैं, किन्तु उपासना में उसकी भावना की आवश्यकता होती है। जैसा कि कहा गया है –

शक्ति युक्तं जपेन्मन्त्रं न मन्त्रं केवलं जपेत।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा सिद्धोऽभून्नगनन्दिनि।।

इसी शक्ति को उपनिषदों में माया और अविद्या कहा गया है। यही प्रकृति है। इसी प्रकृति को जीव–शिव अथवा अर्धनारीश्वर भी कहा जाता है। यथा–

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमाँश्च दक्षिणार्धाङ्गे वामार्धा प्रकृतिः स्मृता।।

इस माया अथवा अविद्या का स्वरूप नृसिंहोत्तरतापनीय उपनिषद् में इस प्रकार वर्णित है –

'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति सैषा विचित्रा
सुदृढा स्वंय गुणभिन्नाङऽकुरेष्वपि गुणभिन्ना सर्वत्र
ब्रह्म–विष्णु शिवरूपिणी चैतन्यदीप्ता तस्मादात्मन एवं
त्रैविध्यम्' इत्यादि।

यहाँ पर यह भी निरूपति है कि समग्र संसार के वटवृक्षों की वृद्धि जैसे एक वट बीज से सम्भव है, अर्थात एक वट – बीज में संसार भर के वट – वृक्षो की वृद्धि करने की शक्ति विद्यमान है। इसी प्रकार बीज रूप इस मूल शक्ति में भी जानना चाहिए।

वेद में शक्ति का प्रकृति एवं पुरूष, शून्य एवं अशून्य रूप तथा क्षर एवं अक्षर में भेदाभेद, जीव एवं जगत् की उत्पत्ति तथा विनाश में शक्ति का महत्व–

सर्वशक्तिमान श्री भगवान् के द्वारा प्रथित, निर्मित तथा संवर्धित प्रपंच में परिदृश्यमान इस जगत् में आत्मरक्षार्थ एवं जगत् के कल्याणार्थ निर्मित–मादधती, पोषयित्री तथा संहर्त्री शक्ति ही प्रथमतः प्रतिष्ठित की गयी। वह चाहे – **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नांक महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।** (ऋ.सं. १०.९०.१६) के रूप मं सृजानात्मिका शक्ति हो, चाहे मन्त्र की शक्ति हो या स्वर्ग की शक्ति हो धर्म की शक्ति हो या देवताओं अथवा देवियों की शक्ति हो अथवा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की शक्ति हो, इन सबकी शक्ति में विविध रूपों में शक्ति के साथ 'परा' शब्द अन्तर्निहित है, जिसका अभिधेयार्थ ही है – सर्वोच्च शक्ति। इसे हम अंग्रेजी में सुप्रीम पावर (Supreme Power) कहते है, जिंससे बढ़कर कही कुछ भी

कोई भी नहीं हो सकता। यद्यपि शक्ति के लिए अंग्रेजी में Power, Energy एवं Capacity शब्द आते हैं, किन्तु मेरी दृष्टि में यहाँ जो शक्ति शब्द विवेच्य है, उसके लिए Power शब्द ही उपयुक्त है। खींचतान कर Capacity को भी इसके अर्थ में लिया जा सकता है, किन्तु किसी भी प्रकार से Energy शब्द इस परा शक्ति के अर्थ में उचित नहीं बैठता। वैसे शक्ति–शब्द विशुद्ध प्राचीन भारतीय शब्द है, जो वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की वाणी से स्फुरित हुआ है। प्राचीन विश्व की भाषाओं में इस पद के समकक्ष कोई सगोत्री शब्द भी नहीं मिलता, जो शक्ति शब्द में निहित वास्तविक शक्ति शब्द की शक्ति को द्योतित करता हो। व्याकरण शास्त्र में यह शक्ति शब्द पराशक्ति के रूप में शब्द शब्दतत्व के चार रूपों में वाणी के रूप में परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के रूपों से प्राप्त होता है –

परावाक् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभि संस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।।
अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेदर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

(वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड)

अतः व्याकरणशास्त्र वाक्शक्ति को ही परा शक्ति के रूप में स्वीकार करता है, जिसे वेदों में मन्त्र शक्ति के नाम से प्रतिपादित किया गया है। मीमांसाशास्त्र धर्म–क्रिया–भावना की शक्ति को ही परा शक्ति के रूप में स्वीकार करता है, तो दर्शन शास्त्र जिसे अदृष्ट शक्ति के रूप में मानता है, चाहे वह आत्मा, ब्रह्म, परमेश्वर अथवा अदृष्ट शक्ति के रूप में ही क्यों न हो। इसे ही साहित्यशास्त्र कवित्वबीज रूप संस्कार विशेष की शक्ति स्वीकार करता है –

'शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः'।

(काव्यप्रकाश, १.३ की वृत्ति)

इसके बिना काव्य का उद्भव असम्भव है। यह संस्कार विशेष देवी होता है, क्योंकि काव्य किया नहीं जाता, बल्कि काव्य हो जाता है, जो अपने मौलिक अर्थो में अपौरूषेय ही होता है। यहीं पर परा शक्ति या को वाक शक्ति या मंत्र शक्ति के रूप में स्वीकार करने की विवशता हो जाती है।

शक्ति शब्द अपने मौलिक रूप में ऋक्संहिता में विविध रूपों में कुल सोलह बार प्रयुक्त है? इनें चार बार कर्ता[2] (शक्ति), चार बार कर्म[3] (शक्तिम्) एवं दो बार कारण[4] (शक्तिभिः) तथा छः बार इसके स्वतन्त्र प्रयोग[5] (शक्ति, शक्तीऽव, शक्तीऽवन्त, शक्तीः) दिखाई देते है।

स्वतन्त्र उल्लेखों में दो–दो बार शक्ति[6] एवं शक्ती[7] तथा एक – एक बार शक्तीऽव[8] एवं शक्तीऽवन्त[9] के प्रयोग हुए हैं।

शक्ति शब्द भी व्याकरण की दृष्टि से वस्तुतः कारण कारक के एक वचन शक्त्या का पूर्वरूप अथवा प्राग्रूप है'[10] एक स्थल पर शक्ति के साथ ही शक्तम्[11] भी प्रयुक्त है,

---

(1) ऋ.सं. १.३१.१८, १.८३.३, १.१०६.३, २.३६.७, ३.३१.१४, ३.५.७.३., ४.२२,८, ४.४३.३, ५.३१.६, ६.७५.६., ६.२०.१०, ६..२१.१०, १०.२५.५, १०.८८.१०, १०.१३४.६।

(२) ऋ.स. १.८३.३, ४.२२.८, ७.२०.१०, ७.२१.१०।

(३) ऋ.सं. २.३६.७, ३.५७.३, ४.४३.३, १०.१३४.६।

(४) ऋ.सं. १०.२५.५, १०.८८.१०।

(५) ऋ.सं. १.३१.१८, १.१०६.३, ५.३१.६, ३.३१.१४, ६.७५.६, ७.६८.८।

(६) ऋ.सं. १.३१.८, ७.६८.८।

(७) ऋ.सं. १.१०.६.३, ३.३१.१४।

(८) ऋ.सं. ५.३१.६।

(९) ऋ.सं. ६.७५.६।

(१०) ऋ.सं. १.१०६३, ३.३१.१४।

(११) ऋ.सं. ७.६८.८।

जिसका अर्थ सायण ने 'अभिमतं धनमदत्तम्' किया है। सामान्यतः शक्तः का अर्थ है समर्थ, जिसे अंग्रेजी के Capacity शब्द से जाना जा सकता है।

वेदोत्तर कालीन ब्राह्मण धर्म–दर्शन के इतिहास में शक्ति पद की अवधारणाओं के प्रसंग में अधिकांशतः इन्द्र और यत्र तत्र अश्विन्द्वय, अग्नि, इन्द्राग्नी, सोम, विश्वेदेवाः एवं रथगोपा की स्तुति में प्रसंगत प्रयुक्त शक्ति के अभिप्राय ज्ञातव्य हैं।

शक्ति के ऋग्वेदीय सन्दर्भ जिन देवताओं से सम्बद्ध हैं, उनमें इन्द्र प्रमुख हैं। इन्द्र के साथ सातबार, अश्विन्द्वय के साथ तीनबार, अग्नि के साथ दो बार, और सोम, इन्द्राग्नी, विश्वेदेव तथ स्थगोप के साथ एक–एक बार शक्ति शब्द के प्रयोग हुए है। ये शक्ति शब्द के मौलिक प्रयोग हैं। इसके अतिरिक्त अवान्तर अर्थो के रूप में इन्द्र, विष्णु, अग्नि, वाक् सूक्तों में तथा अग्नि मरूत् सूक्त में शक्ति के लिए क्रतु शब्द का प्रयोग हुआ हे, जो शक्ति के अर्थ को द्योतित करता है। वाक्सूक्त में 'अहंराष्ट्री' या 'राष्ट्री' शब्द शक्ति या सामर्थ्य को द्योतित करता है।

इन्द्र की व्युपति के प्रकरण में ऋक्संहिता–१.३२.१ में सायण–भाष्य की टिप्पणी में 'इदि परमैश्वर्य' धातु से रन्–प्रत्यम करके–इन्दति, इन्द–तेर्वा ऐश्वर्यकर्मणः (निरूक्त–१०१), स्वमायया जगद्रूपत्वं परमैश्वर्यम्, तद्योगादिन्द्रः (सामण, ऋ.सं. १.३.४.) अपनी शक्ति से जगद्रूप परम ऐश्वर्य का प्रतिपादन 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'–ऋ.सं. ६.४७.१८, श. ब्रा. १४.५.५.१६, बृ.उप. २.५.१६ में है। इन्दति शासन करोतीतीन्द्रः[3]।

---

1. का.शक्रत्स्न धातु पाठ 1.9 (भानु जी दीक्षित) अमर कोश 1.41

शक्ति के अर्थ में क्रतु शब्द का प्रयोग अग्निसूक्त[1], अग्निमरूत् सूक्त[2] में स्पष्टतया हुआ है। वहाँ पर पीटर्सन ने शक्ति के अर्थ मे क्रतु का प्रयोग किया है, अर्थात 'कोई देवता या मनुष्य तुम्हारी शक्ति का उल्लंघन नहीं कर सकता'। यहाँ यह ध्यातव्य है कि क्रतु शब्द ग्रीक भाषा के क्रतोस (Kratoxs) के समान ही शक्तिवाचक है।

अग्निसूक्त १.१.५ में रॉथ (Rath) इसका अर्थ शक्ति तथा मैकडोनल (Macdonal) इसका अर्थ सामर्थ्य करते हैं। पेत्रोगार्द कोश का अनुसरण करते हुए मोनिया विलियम्स इसका अर्थ अन्तर्दृष्टि, शक्ति या विचार करते हैं। ऋक्संहिता – १.१२.१ इन्द्रसूक्त [3] में क्रतुना, अर्थात–

'वृत्रवधादिलक्षणेन स्वकीयेन कर्मणा । शक्त्या वा सर्वान् यागदेवान् पर्यभूषत् रक्षकत्वेन पर्यभूवत् परिग्रहीत इति'।

शक्ति के अर्थ में वीर्य शब्द का प्रयोग ऋक्संहिता (१.३२.१) इन्द्रसूक्त[4], विष्णुसूक्त[5] (ऋ.सं. १.१५४.२ में शक्ति के अर्थ में हुआ है। ग्रासमान के अनुसार वीर्य का अर्थ सामर्थ्य (Capacity) है। लुडविंग के अनुसार विष्णु अपनी बल–शक्ति के कारण प्रशंसित होता है। वही एक स्थान पर इन्द्रसूक्त (ऋ.सं. २.१२.१) में शुष्म (शुष्मात्) का अर्थ पीटर्सन ने श्वास अर्थात शक्ति किया है। इसी प्रकार देवत्व तथा महित्व[6] शब्द भी शक्ति को ही द्योतित करते हैं। उपर्युक्त शक्ति के अवान्तर अर्थों में प्रयुक्त ये सभी शब्द अपने स्थान पर अपने–अपने अर्थो में प्रसंगानुकूल पराशक्ति को ही द्योतित करते है।

ऋक्संहिता के तृतीय मण्डल की एक ऋचा में इषीरथ–पुत्र कुशिक विश्वामित्र का वचन है – हे इन्द्र। हम तुम्हारे महत् संख्य एवं शक्ति की कामना करते है– 'मह्या

---

१. अग्निर्होता कविक्रतुः। (ऋ.सं. १.१.५)

२. नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतं परम्। (ऋ.सं. १.१२.२)

३. यो जात एव ..... देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्। (ऋ.सं. २.१२.१)

५. इन्द्रस्य नुवीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। (ऋ.सं. १.३२.१)

६. प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण। (ऋ.सं. १.५४.२)

७. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं ....। (ऋ.सं. १.११५.४)

ते सख्यं वश्मि शक्तिः'। शक्ति पद में वस्तुतः प्राप्ति की कामना है और तदनुकूल योग्यता अथवा विशेषाधिकार भी, जो देवस्तुति की फलश्रुति के रूप में प्रतिफलित है।

'शक्तीऽव' का उल्लेख ऋग्वेद में मात्र एक स्थान पर हुआ है, इन्द्र के सम्बोधन के रूप में। सायण ने इसका अर्थ सम्बोधन के अर्थ में शक्तिमान् तथा शक्ति के रूप में बज्र अथवा कार्य का द्योतक बताया है[2]। ऋक्संहिता ७.१.१० तथा ७.२१.१० में वशिष्ठ ऋषि का वचन है – तुम्हारे (इन्द्र के) स्तोत्र में मेरे लिए शक्ति हो। स्तोत्र में निहित शक्ति की कामना विशिष्ट वाक्शक्ति अथवा मन्यशक्ति को प्रतिबिम्बित करती है, जो पराशक्ति स्वरूपा है। शक्ति का आयुध रूप झलकता है, इन्द्र के लिए ही दशम मण्डल में। इन्द्र शक्तिधारक है और शक्ति विशाल अंकुश के समान हे –

'दीर्घ ह्यंकुशं यथाशक्तिम बिभर्षि मन्तुमः।

पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो देवी।

जनित्रमजीजनद् भद्रा जनित्रमजी जनत्।।

(ऋ.सं. १०.१३४.६)

अर्थात 'हे ज्ञानी इन्द्र। विशाल अंकुश के समान शक्ति नामक अस्त्र को तुम धारण करते हो। हे मधवा! जैसे छाग अपने अगले चरणों से वृक्ष–शाखा को खींचता है, उसी प्रकार तुम उस शक्ति से शत्रु को खींच कर गिराते हो। कल्याणकारी देवी माँ ने तुम्हे उत्पन्न किया है'। यहाँ उस शक्ति से परा–शक्ति की तरफ ही संकेत है।

इन्द्र के अनन्तर अश्विन्द्वय ऐसे देवता हैं, जिनके मन्त्रों में शक्ति का प्रयोग प्राप्त होता है। अश्विमद्वय के लिए तीन बार प्रयुक्त इस शब्द के प्रयोग त्रिविध हैं[3]।

---

1. शक्ती, तत्सम्बन्धीनि दानानि। (दृष्टव्य – सा.भा., ऋ.सं. ३.३१.१४)
2. शक्तीऽव शक्तिमान् शक्तिर्वज्रं कर्म वा। (ऋ.सं. ५.३१.६)
३. ऋ.सं. २.३.७ ४.४३.३, ७.६८. ८।

अश्विनद्वय की प्रशस्ति में गृत्समद की प्रार्थना है – दोनों हाथों के समान शक्ति के तथा पृथिवी के समान लोक को प्रदान करके हमें अलंकृत करों। हे अश्विन्। हमारी इन स्तुतियों को धारदार 'स्वाहा इति' के समान तीक्ष्ण करो[1]। यहाँ 'हस्तेन शक्ति', 'क्षामेव रजांसि' तथा 'श्रोत्रेणैव स्वधितिम्' के साथ 'इमा गिरः' का प्रयोग सामान्य नहीं, यहाँ शक्ति मात्र हाथों का पराक्रम ही नहीं, अपितु आयुध भी प्रतीत होता है।

इसी तरह पृथिवी के समान लोक तथा तीक्ष्णीकृत स्वधिति (अस्त्र से भिन्न युद्धास्त्र–कुल्हाड़ी) की धार के समान स्तुति–वाक् की कामना भी साधारण नहीं, अपितु 'इमा गिरः' जैसे वचनों को प्रकारान्तर से मन्त्ररूपा वाक् की तरह प्रभावशाली कहा गया है। शक्ति पद अग्नि से दो बार जुड़ा है। प्रथम ऋग्वेद के अन्तिम स्तर में [2] तथा दूसरा एक अन्य स्थल पर आया है 'शक्ति', जिसके देवता है इन्द्राग्नी।इस विवेच्च सन्दर्भ में कहा गया है कि सन्तति का क्रम भंग नहीं होना चाहिए। इस प्रार्थना के साथ पैतृक शक्ति (पितरों की सन्तानोत्पादन–परम्परा) का निरन्तर नियमन करते, वेदिगर्भ में इन्द्राग्नी द्वारा (मन्त्ररूपा वाक्जन्म) जो सुष है, उसे उत्पादन–समर्थ यजमान आह्लादित होकर स्तुति करते हैं[3]। यहाँ – 'पितृणां शक्तिः' में पितरों से अर्जित सन्तानोत्पत्ति की क्षमता की व्यंजना

तुलनीय– 'अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे यशसं वीरवत्तमम्' है। स्पष्ट है कि शक्ति का एक विशिष्ट अर्थ है – सृजन कर्म अथवा सन्तति उत्पादन शक्ति। इसी

१– हस्तेव शक्तिर्माय संसदीनः क्षामेव नः समजतं रजांसि। इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः श्रोत्रैण्वै स्वाधितिंसंशिशीतम्।। (ऋ.सं. २.३६.७)

२– ऋ.सं. ३.१.१८, १०.८८.१०।

3. माच्छेझ रश्मिरिति नाधमानाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमाणाः। इन्द्राग्नीभ्यां कं वृषणा मदान्ति ता हृदी धिषणाया उपस्थे।। (ऋ.सं. १.१०६.३)

अर्थ में हिरण्यस्तूप ऋषि भी अग्नि से सन्तति उत्पादन की प्रार्थना करता है –

(ऋ.सं. १.३.३)

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्रणेष्यभिवस्यों अस्मान्त्सं नः सृजे सुमत्या वाजवत्या।।

(ऋ.सं. १.३१.१८)

यहाँ 'सुमत्या वाजवत्या' के द्वारा प्रजा एवं सम्पत्ति के सृजन की कामना की गयी है। विश्वेदेव को सम्बोधित विश्वामित्र की एक ऋचा में शक्ति का अभिप्राय स्पष्टतः गर्भाधन शक्ति है, जो गर्भ–धारण कराने तथा करने दोनो अर्थो में है –

या जामयोवृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्ती जनिते गर्भमस्मिन्।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावसाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंसि।।

(ऋ.सं. ३.५७.३)

अर्थात् जो पत्नियाँ कामवर्षक (रेतःसेचक) के लिए शक्ति सामर्थ्य को चाहती हैं। 'जामि' का अर्थ पत्नी होता है। इस प्रकार ऋग्वेद में शक्ति मूलतः तीन अर्थो में प्रयुक्त है –

१. मन्त्रशक्ति या वाक्शक्ति के रूप में[1]।

२. उत्पादन् या प्रजनन शक्ति के रूप में[2]।

३. आयुद्य (अस्त्र–शस्त्र) के अर्थ में[3]।

---

१. ऋ.सं., अग्नि सूक्त– १.३१.१४, इन्द्रसूक्त – ७.२०.१० एवं ७.२१.१०, सोमसूक्त–१०.२५.५, अश्विनद्वय–सूक्त – २.३६.७।

२. ऋ.सं. १.१०६.३, ३.५७.३, १०.८८.१०।

३. ऋ.सं. १०.१३४.६, ६.७५.६.२७, २.३०.७।

इस प्रकार ऋग्वेद में शक्ति शब्द उपर्युक्त त्रिविध सामर्थ से अनुप्राणित है। अतः ऋग्वेद के समस्त देवताओं की भिन्न–भिन्न शक्ति भिन्न–भिन्न रूपों में स्तुत है, उसके विविध प्रयोजन भी हैं, किन्तु वह अपने सम्बन्धित अर्थो मे पराशक्ति ही है। वहीं वाक्देवी ऋग्वेद से होती हुई ब्राह्मण – ग्रन्थों तथा पुराणों में मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत श्री दुर्गासप्तशती में पराम्बा शक्ति दुर्गा के रूप में प्रयोजनविशेषवशात् स्वंय सभी देवताओं के साथ मिथुन का जोड़ा बनाकर सभी देवताओं को अलग–अलग रूपों मे उत्पन्न करती है तथा पुनः सभी देवता युद्ध के काल में शुम्भ–निशुम्भ, रक्तबीज, मधु–कैटभादि के वधार्थ उस पराम्बा शक्ति में ही प्रविष्ट होते हैं तथा सर्वशक्तिमयी परमेश्वरी पराम्बा शक्ति ही धर्म के रक्षणार्थ लोक कल्याणार्थ असुरों का वध करती है। तदनन्तर पुनः सभी देवों को तत्तत् रूपो मे व्यक्त कर अन्तर्निहित हो जाती है और यहीं प्रमाणित हो जाता है ऋग्वेदीय एकेश्वरवाद। अतः वह पराशक्ति एक ही है, जो प्रयोजनवशात् भिन्न–भिन्न देवों के रूप में एक होते हुए भी अलग–अलग स्तुत होता है।

सृष्टि के लिए अमृत की तरह मृत्यु भी आवश्यक है। दोनों ही शक्ति के रूप है। एक में शक्ति का आविर्भाव तथा दूसरे में तिरोभाव होता है। इसे ही प्रकाश और अप्रकाश भी कहते है। एक स्थिति है, तो दूसरा संसार। एक उदय है, तो दूसरा अस्त। दोनों के सहयोग से चक्र बनता है। वहीं भवचक्र तथा कालचक्र है। मार्तण्ड या सूर्य में प्रकाश तथा अन्धकार, उदय तथा अस्तु, अमृत तथा मृत्यु दोनों की स्थिति है। अतएव देवमाता अदिति या विश्व की विधात्री मूलशक्ति ने प्रत्येक मण्डल के केन्द्र में सूर्य की प्रतिष्ठा की है। सूर्य के एक ओर भौतिक जगत् है, जो मृत्यु का रूप है तथा दूसरी ओर

देवों का अमृतलोक है। देवों तथा भूतों के सम्मिलन अथवा अमृत–मृत्यु की संसृष्टि से इस विश्व की स्थिति है। सूर्य की संज्ञा अदिति–पुत्र होने से आदित्य है। सूर्य को प्रजाओं का प्राणतत्व कहा गया है। प्राण के भी दो पक्ष हैं – एक प्राण तथा दूसरा अपान। प्राण का सम्बन्ध देवों से तथा अपान का भूतों से है। प्रत्येक प्राणि–केन्द्र में दोनों की सत्ता है। देव या प्राणात्मक शक्तियों को भौतिक अन्न की आवश्यकता है। भूतों के धरातल पर या भौतिक देह में प्राणों का आवरण ही जीवन है।

इसी द्वन्द्व के प्रतिनिधि वर्ष के दो नवरात्र है। एक नवरात्र उत्तरायण में तथा दूसरा दक्षिणायन में होता है। विश्व की द्वन्द्वात्मक स्थिति के लिए दोनों आवश्यक हैं। दोनो के पारस्परिक सन्तुलन या संघर्ष के बिना कालचक्र की गति सम्भव नहीं है। एक में चक्र के अर्धांश का उद्ग्राभ या उत्थान और दूसरे में निग्राभ या नियान होता है। उद्ग्राभ के प्रत्येक बिन्दु का प्रतिबिन्दुचक्र के निग्राभ अंश में परिवर्तन आवश्यक है। उन्ही के परस्पर आकर्षण से गति उत्पत्ति होती है। इसे ही मनुने 'कालं कालेन पीडयन्' कहा है। चैत्र नवरात्र में राम का जन्म हुआ तथा आश्विन नवरात्र में राम ने रावण पर विजय प्राप्त की। दोनों समय महाशक्ति की पूजा का विधान है। यह लोकोत्सव तथा कथा के रूप में लोकमान्यता अत्यन्त प्राचीन है। स्वंय राम सूर्यवंश की शक्ति के अवतार हैं। वेदों में शक्ति के व्यापक स्वरूप का वर्णन है और उसके विषय में कितनी ही कल्पना की गयी है।

भारतवर्ष मातृ–पूजा का देश है। 'द्यौः पिता पृथिवी माता' के अनुसार पृथिवी सब प्राणियों की माता तथा पोषण करने वाली धात्री है। कीट, पतंग, वृक्ष, वनस्पति,

पशु–पक्षी, स्त्री–पक्षी, स्त्री–पुरूष सब की माता पृथिवी है। पृथिवी की दुग्धधारिणी मुद्रा से सब जीवित रहते है। 'एको देवः' के समान देवी भी एक है, किन्तु वही बहुधा नियम के अनुसार अनेक रूपों में प्रकट हो रही है। पुराणों के अनुसार वही शतरूपा है जो ब्रह्मा की पत्नी हुई और जिसकी कुक्षि से विश्व का नानात्व जन्म लेता है। दुर्गा, सरस्वती लक्ष्मी आदि उसी के नाम तथा रूप हैं। जितनी विद्याएँ है, जितनी स्त्रियाँ हैं, जितनी मानवी उपलब्धियाँ और अभिव्यक्तियाँ है, सब देवी के रूप हैं। इस प्रकार देवी के सहस्र रूप हैं। रूद्रयामल तन्त्र में देवी के सहस्र रूपो की गिनती करते हुए एक बहुत ही सार्थक नमः स्तोत्र की रचना की गयी है। उसके अनुसार देवी ही परम पुरूष का रूप है।

'त्वं स्त्री त्वं पुमान्' की कल्पना के अनुसार परतत्व के विषय में देव–देवी दोनो ही मान्यताएंयथार्थ हैं। वह देवी परब्रह्म को सृष्टिलीला के लिए प्रबुद्ध करने के कारण परब्रह्मबोधिनी कही जाती है। वह चित्स्वरूपा है। सप्तशती मे उसे ही विष्णुमाया और चेतना कहा गया है। वही बुद्धि, क्षुधा तथा निद्रा है। मेधा, प्रज्ञा वहीं है। सब रूप, सब भाषाएँ, सब देश, सब नदियाँ, सब क्रीड़ाएँ, सब राग, सब नीतियाँ, सब धर्म, सब देवता, नृत्य और गीत, सप्त स्वर, मूर्च्छना और ग्राम, अप्सराएँ, मेघमाला और वृष्टि, सब अक्षर और शब्द, वैद्यविद्या, औषधि, चिकित्सा, सुपथ्य और रोग भी उसी के रूप हैं। वही स्थूल और सूक्षम देवशक्ति है। उसके अनन्त रूपों को प्रणाम है।

उपनिषद् में शक्ति के महामाया, महाविद्या आदि स्वरूप, शक्ति स्वरूप की उपासना एवं उसका महत्व, शक्ति स्वरूप, और उसके मुख्य सिद्धान्त, शाक्त–सिद्धान्त में मोक्ष की कामना तथा मोक्ष का स्वरूप एवं शाक्त–सिद्धान्त का महत्व–

प्राचीन काल के आत्मदर्शी महापुरूषों ने, जो अपनी सूक्ष्म अमोघ अन्तर्दृष्टि अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान के कारण ऋषि कहलाते थे, इस तत्व का उद्घाटन किया कि ब्रह्म में अन्तर्निहित शक्ति ही सृष्टि का आदि कारण है। उन लोगों ने ध्यानावस्थित होकर यह अनुभव किया कि ब्रह्म की निज शक्ति ही, जो उसके स्वरूप में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है, कारण है। ब्रह्मा ही समस्त कारणों का संचालक है, जिसमें काल और अहं भी सम्मिलित हैं। जैसा कि श्वेताश्वतरों पनिषद् (१.३) में कहा गया है–

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देहात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।।

यहाँ आलंकारिक ढंग से गुण गुणी से भिन्न कर दिया गया है। यह प्रत्यक्ष भी हो गया है कि श्रुति ने अन्ततोगत्वा इस गुणशक्ति को गुणी से अभिन्न माना है। यही परा शक्ति है, यही अन्तरचेतना है और यही सूक्ष्म तथा कारण शरीर की संचालिका है। यही आन्तरिक तथा बाह्म समस्त वस्तुओं को प्रकाश देने वाली है। इस शक्ति को सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न माना गया है और इसका बह्वृचोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया गया है –

'सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वय–मेकैव विभाति'। (बह्वृचोपनिषद्–1ख) अर्थात 'वह शक्ति स्थूल, सूक्ष्म और कारण – शरीर की परम शोभा है। वह सत्, चित् तथा आनन्द की लहरी है। वह भीतर–बाहर व्याप्त रहती हुई स्वंय प्रकाशित हो रही है'।

वह समस्त दृश्य पदार्थो के पीछे रहने वाली वस्तु–सत्ता (प्रत्यक्चिति) है। वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् और अनात्य है। यथा– **'सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा'** (बह्वृचोपनिरूषद् – 1ख)। वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय परमात्मा की परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है। – **'चिदाद्याद्वितीय ब्रह्मसंवित्तिः'** (बह्वृचोपनिषद्–1ख)।

श्रीभद्भगद्गीता, जो सभी उपनिषदों का सार है, यह घोषित करती है कि आत्मा और मूल प्रकृति दोनो अनादि है तथा विकारशील दृश्य पदार्थो एवं गुणों की उत्पत्ति प्रकृति से होती है। यथा –

प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्धचनादी उभावपि।
विकाराँश्च गुणाँश्चैत्र विद्धि प्रकृति सम्भवान्।।

(गीता – १३.१६)

गीता का यह भी कथन है। कि आत्मा प्रकृति के द्वारा प्रकृतिजन्य गुणों को भोगता है और जिस गुण में उसकी आसक्ति होगी, उसी के अनुसार भला या बुरा जन्म उसका होगा–

पुरूषः प्रकृतिस्योहि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।

(गीता – १३.२१)

श्रीभद्भवद्गीता यह भी घोषित करती है कि प्रकृति का पुरूष से भिन्न कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह स्वयं पुरूष के अन्दर स्थित है, वह पुरूष की ही प्रकृति है और इसी कारण सदैव आत्मा के साथ रहती है। आत्मा की इस प्रकृति के दो विभाग

है– अपरा तथा परा। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, यह आत्मा की अष्टधा अपरा शक्ति है और इससे भिन्न दूसरी जीव–शक्ति आत्मा की परा–शक्ति है, जो इस विश्व को धारण करती है। यथा –

भूमिरापोऽनलों वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहड़कार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।

(गीता – ७.४-५)

प्रकृति के इन दो विभागों में पहला इन्द्रियगोचर तथा बाह्म है और दूसरा इन्द्रियातीत तथा बुद्धिगोचर है। ये ही ब्रह्म के दो मुख्य रूप है, जिनके अन्दर सब का अन्तर्भाव हो जाता है।

वस्तुतः ब्रह्म के जड़ तथा चेतन दो रूप है। जड़ असत् तथा परिवर्तनशील व विनाशशील है। चेतन सत् है, वही ब्रह्म है, वही प्रकाश है, जैसा कि मैत्रयुपनिषद् (५.३) में कहा गया है –

'दे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्त्तञ्चाथ यन्मूर्तं तदसत्यम्,
यदमूर्तं तत्सत्यम्, तद् ब्रह्म यद् ब्रह्म तज्ज्योतिः।।

शाक्तों ने परब्रह्म परमात्मा के उपर्युक्त दोनों रूपों को एकत्र कर शक्ति के नाम से निद्रिष्ट किया है। महर्षि बादरायण के ब्रह्मसूत्रों में भी, जो उपनिषदों की एक समन्वयपूर्ण तथा समालोचनात्मक व्याख्या है, हमें इसी सिद्धान्त की प्रतिध्वनि मिलती है। महर्षि बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद में सृष्टि के कारण सम्बन्धी भिन्न–भिन्न प्रचलित सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है और १. जड़

प्रकृति, २. परमाणुओं के संयोग, ३. भाव तथा संस्कार, ४. शरीर और आत्मा का अनादि ५. निष्क्रिय आत्मा का प्रकृति के साथ संयोग तथा ६. शक्ति की आत्मा से सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता का तर्क के द्वारा खण्डन किया है। अन्ततोगत्तवा वे इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यदि इसके विपरीत यह स्वीकर कर लिया जाय कि चैत न्यादिविशिष्ट शक्ति ही सृष्टि का कारण है, तो इस सिद्धान्त से हमें कोई विरोध नहीं हैं, क्योंकि उस स्थिति में ब्रह्म और शक्ति एक ही हो जाते हैं। यथा – **'विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेध ाः'** (ब्रह्मसूत्र–२.२.४४)। वेदान्त यह भी स्वीकार करता है कि ब्रह्म के अन्दर शक्ति स्वभावतः विद्यमान रहती है और विश्व की उत्पत्ति उसी शक्ति से होती है।

इस सर्वव्यापी, चिन्मय परा–शक्ति की, जो सगुण तथा निर्गुण, निराकार तथा साकार दोनो हैं अथवा संक्षेप में जिसे परब्रह्म परमात्मा का पर्यायवाची शब्द कह सकते हैं, समस्त हिन्दू जाति अनादिकाल से पूजा और ध्यान करती आ रही हैं। संसार के किसी भी भाग में प्रचलित किसी धर्म से उपरि निरूपित शक्तिवाद का कोई विरोध नहीं है। शाक्त लोग सभी धर्मों में एक परम दिव्य शक्ति की ही अभिव्यक्ति देखते हैं।

वे इसी अनन्त परा–शक्ति को ही विश्व का चेतन कारण समझते हैं और इस परा शक्ति को वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म से अभिन्न मानते हैं। उनके मत से मोक्ष अथवा निरतिशय स्वतन्त्रता इस परम शक्ति के अथवा अपरिमेय आत्मा के वास्तविक स्वरूप में स्थित होने का ही नाम है। यह स्थिति सच्चे ज्ञान तथा सच्ची भक्ति के समान अनुपात में सम्मिश्रण से ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा ज्ञान सर्वव्यापक आत्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध करा देता है और सच्ची भक्ति अनन्य प्रेम को जगाती है, जिसको पर्यवसान अहंकार के सम्पूर्ण समपर्ण में हो जाता है।

तन्त्रों में इस महाशक्ति की उपासना का पूर्ण विकास हुआ है, जिसका अन्तिम उददेश्य वेदान्त शास्त्र का अद्वैतवाद ही है। इस दृष्टि से कुलार्णवतन्त्र तथा महानिर्वाणन्त्र सबसे आगे बढ़े हुए है। परमात्मा में स्थित हो जाना ही सर्वोत्कृष्ट पूजा है। इसके बाद दूसरे नम्बर पर ध्यान की प्रक्रिया आजी है। सबसे निम्न श्रेणी की पूजा में स्तुति के कुछ पद गाये जाते हैं ओर प्रार्थना के कुछ शब्द कहे जाते हैं और बाह्म पूजा को तो अधम से भी अधम कहा गया है। जैसा कि महानिर्वाणन्तन्त्र में कहा है–

उत्तमों ब्रह्मासद्भावों ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिजपोऽधमो भावो बाह्मपूजाऽधमाधमा।।

पुराणों में भी शक्ति का वही रूप माना गया है, जो वेदान्त में सगुण, निर्गुण उभयात्मक ब्रह्म का माना गया है। श्रीमद्देवी भागवत में जगज्जनी शक्ति की एक स्तुति है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। वह इस प्रकार है–

नमो देव्यै प्रकृत्यैच विधात्र्यै सततं नमः।
कल्याण्यै कामदायै च विध्यै सिद्धयै नमो नमः।।
सच्चिदानन्दरूपिण्यै संसाररणये नमः।
पच्चकृत्यविधात्र्यै ते भुवन्नेश्यै नमो नमः।।
सर्वाधिष्ठान रूपायै कूटस्थायै नमो नमः।
अर्ध मात्रार्थभूतायै ह्रल्लेखायै नमो नमः।।
नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।
सर्वज्ञानप्रकाशं में देहि सर्वार्थ दे शिवे।।

अर्थात जगत् का नियन्त्रण करने वाली, सृष्टि की आदि भूता माता प्रकृति देवी की मै सदा वन्दना करता हूँ। मै पुनः कल्याणी, कामदा, सिद्धिदा तथा ज्ञानदा का अभिवादन करता हूँ। मै तुम्हारी वन्दना करता हूँ, जो सच्चिदानन्दरूपिणी

हो और जो विश्व को प्रकाश देने वाली हो। मै पंचकृत्यों का विधान करने वाली भुवनेश्वरी की बारम्बार वन्दना करता हूँ। मै बारम्बार सर्वाधिष्ठात्री कूटस्था की वन्दना करता हूँ। मै पुनः सृष्टिकारिणी को नमस्कार करता हूँ। मै हृदय की अधिष्ठात्री, प्रकृति की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना करता हूँ। मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ। तुम मुझे सम्पूर्ण ज्ञान की ज्योति प्रदान करो। हे शुभे, हे देवि, हे सर्वार्थदे शिवे। मै तुम्हारी बारम्बार वन्दना करता हूँ।

शाक्त मतावलम्बियों ने ठीक–ठीक उपनिषदों के अनुसार शक्तितत्व का प्रतिपादन करके अनन्तरवर्ती धार्मिक साधकों के ज्ञान तथा साधन की सुगमता के लिए वेदान्त की सृजनकारिणी चैतन्य शक्ति के सिद्धान्त की ही पुष्टि की है। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि वेदान्त के परब्रह्म को तन्त्रों में परा–शक्ति कहने लगें। इस प्रकार अन्तर तो केवल पारिभाषिक शब्दों में ही रह गया। तत्वतः मूक्त में तो सर्वथा एकता ही है।

माँ काली के प्रसिद्ध उपासक स्वामी रामकृष्ण परमहंसदेव ने अपने व्यक्तिगत जीवन में यह दिखला दिया कि भिन्न–भिन्न धार्मिक सिद्धान्तो में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। अपने साधक जीवन के भिन्न–भिन्न काल में अपनी दिव्य समाधि की अवस्था में भिन्न–भिन्न धर्मो के, भिन्न–भिन्न मतों के, भिन्न–भिन्न पथों का उन्होनें अनुसरण किया और उनके मन में संसार के किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात अथवा द्वेष नहीं था। हृदय के भीतर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि धर्म एक ही उद्देश्य की ओर ले जा रहे है और वह उद्देश्य

है ब्रह्म का ज्ञान! इसीलिए अपने जीवन के पिछले भाग में वे बहुधा शक्ति की साधना में ही निमग्न रहने लगे और किसी भी धर्म–विशेष की परिभाषा विधि अथवा साम्प्रदायिक सिद्धान्त का आश्रय उन्होनें नहीं लिया–यही है शाक्त धर्म।

यह सबको भलीभाँति ज्ञात है कि वर्तमान समय में हिन्दू धर्म का जो जीवित स्वरूप है, उसका सार–तत्व शक्ति सिद्धान्त ही है। देश तथा विदेश के कतिपय समालोचकों का यह विचार है, जिसे समय–समय पर वे व्यक्त भी करते रहे है, कि वैदिक काल के हिन्दू धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र रूप में शाक्तमत की उत्पत्ति हुई और समय पाकर इसने वैदिक धर्म पर अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया, परन्तु वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। शाक्त मत उतना ही पुरातन है, जितना वेद। इसीलिए यह जीवन का सनातन तत्व और विचारो का एक मुख्य अंग है। इसी से हम विशुद्ध शक्ति सम्बन्धी उपनिषदों के अतिरिक्त केनोपनिषद् में **'बहुशोभमाना उमा हैमवती'** का स्पष्ट उल्लेख पाते हैं। इसी देवी ने इन्द्र को परब्रह्म का ज्ञान कराया।

शक्ति सम्बन्धी उपनिषदों में स्वभावतः शक्ति के स्वरूप एवं व्यापार के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ शक्ति का तीन विभिन्न रूपो में वर्णन किया गया है–माया, अविद्या तथा विद्या। विश्व की आदि जननी के रूप में वही मूल–प्रकृति कही जाती है। जब हम उसे जागतिक व्यापार की दृष्टि से देखते हैं, तो जगत् के तीन व्यापार मानने पर यही सृष्टि – स्थिति संहारकारिणी और पाँच व्यापार मानने पर पञ्चकृत्यपरायणा कही जाती है। ज्ञान, इच्छा और

क्रिया–जगत् के इन तीन व्यापारों की दृष्टि से वह ज्ञान शक्ति, इच्छाशक्ति तथा क्रिया शक्ति – स्वरूपिणी कही जाती है। अपने वास्तविक स्वरूप में तो वह सच्चिदानन्दरूपिणी ही है।

शक्ति ही ब्रह्म है। उपनिषद्, ऋग्वेद, पुराणादि के प्रमाण तथा सब के अनुभव से यह सिद्ध है। मीमांसा शक्तितत्व का दर्शन शास्त्र है। योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने कहा है–

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।। (अ.१)

१– शिक्षा – जिसके पढ़ने से वेद का यथाविधि उच्चारण होता है।

२– कल्पसूत्र – जो यज्ञादि के अनुष्ठान का उपदेश करते हैं।

३– व्याकरण – यह शास्त्र तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है।

४– निरुक्त – इसे वैदिक शब्दानुशासन या अभिधान कहते हैं।

५– ज्योतिष – इस शास्त्र के द्वारा काल–निर्णय होता है।

६– छन्दःशास्त्र – यह वैदिक मन्त्रों के छन्दोबोध का साधन है।

इन छः वेदाङ्गों के अतिरिक्त चार वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय तथा मीमांसा – ये चौदह शास्त्र ही विद्या तथा धर्म के आश्रय हैं।

मीमांसा वैदिक दर्शन है। इसके पूर्व मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा नामक दो भाग है। पूर्वमीमांसा व्यास जी के शिष्य महर्षि जैमिनी द्वारा प्रणीत है तथा

उत्तरमीमांसा स्वंय भगवान् वेदव्यास के द्वारा प्रणीत है। वेद के पूर्वभाग कर्मकाण्ड का विचार पूर्वमीमांसा में किया गया है तथा वेद के उत्तरभाग ज्ञानकाण्ड उपनिषद् का विचार उत्तरमीमांसा में किया गया है। इन दोनों भागों को मिलाकर सम्पूर्ण मीमांसादर्शन बनता है।

इस अखण्ड मीमांसादर्शन का प्रतिपाद्य विषय शक्ति ही है। अन्तर मात्र इतना ही है कि पूर्वभाग का प्रतिपाद्य विषय औपाधिकी शक्ति है और उत्तरभाग का प्रतिपाद्य विषय स्वाभाविकी शक्ति। औपाधिकी शक्ति धर्म आदि नामों से जानी जाती है और स्वाभाविकी शक्ति का अपर नाम ब्रह्म है। उत्तर भाग से ज्ञात होता है कि औपाधिकी शक्ति स्वाभाविकी शक्ति की विभूति है। दोनो शक्तियाँ एक सूत्र में ग्रथित दिखाई पड़ती है–

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च। (श्वेताश्वतरोपनिषद्–६.८)

अस्य पदसे यहाँ सन्देह होता है कि शक्ति तथा शक्तिमान् एक नहीं हैं और शक्तिमान् ही ब्रह्म है, न कि शक्ति। परन्तु इसका खण्डन भी उसी उपनिषद् के प्रारम्भ में है। जैसा कि ब्रह्मवादियों ने कहा है–

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्मः जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।
ते ध्यान योगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।

याः कारणानि निखिलानि तानि

कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्–१.२–३)

अर्थात् वेद कहाँ से आये? हम लोगों के जन्म का कारण क्या है? इत्यादि चिन्तन के अनन्तर ब्रह्मवादी ऋषियों के मन में इनके काल, स्वभाव तथा अदृष्ट आदि अनेक कारण उत्पन्न हुए, परन्तु वे पूर्ण सन्तोषजनक नहीं हुए। इसलिए ऋषियों ने पुनः विचार किया कि वे कारण भी किसी मूल कारण के अधीन होंगे। अतः उस मूल कारण का निश्चय करने के लिए वे समाधि में लीन हो गये। अन्ततः योग दृष्टि से उन ऋषियों को यह प्रत्यक्ष हुआ कि उपर्युक्त कारणों का मूल कारण स्वगुणों से निगूढ़ा एक देवात्म शक्ति है। देव शब्द का अर्थ द्योतमान है, जिसका तात्पर्य स्वप्रकरण होता है।

आत्म–शक्ति का अर्थ है चित्–शक्ति। 'स्वगुणैः' का अर्थ है, अपने से सम्बन्धित होने वाले सत्व, रज तथा तमोगुण से (सत्व, रज तथा तमोगुण का सम्मिलित रूप है अचित्–शक्ति)! 'निगूढ़ात्' का अर्थ है छिपी हुई।'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' का अर्थ है परस्पर नित्य सम्बन्ध युक्त चित्–शक्ति तथा अचित–शक्ति ब्रह्म। मकड़ी जिस तरह अपने तन्तु में प्रच्छना होकर रहती है, सामान्यतः लोग तन्तु को मकड़ी का आश्रय समझते हैं, परन्तु तन्तु मकड़ी से अलग नहीं होता, उसी प्रकार शक्ति भी अपने गुणा में गुप्त रूप से रहती है तथा गुणों को सभी लोग शक्तिमान् समझते हैं। परन्तु गुणों शक्ति से भिन्न नहीं हैं। शक्ति ही काळ तथा स्वभाव आदि की अधिष्ठात्री है।

'ते ध्यानयोगानुगता' इस मन्त्र का अभिप्राय तो पूर्वोक्त ही है। यह मन्त्र सूत्रस्वरूप है, इसके आगे के तीन मन्त्रो में इसकी व्याख्या की गयी है। इसके अनन्तर चतुर्थ मन्त्र हैं –

उद्गीतमेतत् परमं तु ब्रह्म

तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरञ्य (श्वेताश्वतरोपनिषद – १.७)

अर्थात वह शक्ति ब्रह्म है, शब्द–ब्रह्म नहीं बल्कि परब्रह्म है। चित, अचित तथा नित्य सम्बन्धी रूप यह त्रितत्व इस परब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं। यह सर्वाश्रय तथा अक्षर हैं। श्वेताश्वतर ऋषि अन्तिम अध्याय में मोक्ष के लिए इसी शक्ति–ब्रह्म के शरणागत हुए। यथा –

तं ह देवमात्यबुद्धि प्रकाशं

मुमुक्षुवैं शरणामहं प्रपद्ये । (श्वेताश्वतरोपनिषद – ६.१८)

देव तथा आत्म शब्द तो पूर्वोक्त 'देवात्मशक्तिम्' पर में जिस अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, उसी अर्थ में यहॉ भी है। उचित को समझाने के लिए इस मन्त्र में बुद्धि शब्द आया हैं। शक्ति के स्थान पर यहां प्रकाश शब्द प्रयुक्त है। राज शक्ति जिस प्रकार राजा को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार सम्मिलित चित्, अचित शक्ति आत्मा तथा बुद्धि को प्रकाशित करती है। 'आयुर्धृतम्' के समान प्रकाश शब्द से ही यहाँ ऐसा प्रतीत होता है। मन्त्र में जो लिंग भेद है, उसका तात्पर्य आगे स्पष्ट हो जायेगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् के षष्ठ अध्याय का अष्टम मन्त्र, जो कि पूर्व में उद्धृत है, नित्य सम्बन्धित चित्, अचित शक्ति का स्पष्ट ज्ञान कराता है।

ज्ञान शक्ति ही चित–शक्ति है तथा क्रिया–शक्ति ही प्रकृति है। वही अचित है तथा इन दोनो के मध्य में जो बल शब्द है, उससे दोनों का सम्बन्ध सूचित होता है। बल–शक्ति ही सम्बन्ध हैं। बल–शक्ति ही काल हैं। काल में दोनों का नित्य सम्बन्ध है। पुराण के 'कालों हि बलवत्तरः' इस वाक्य से भी काल की बलवत्ता का उत्कर्ष सिद्ध होता है। साक्षात बलस्वरूप कहने का तात्पर्य बलवत्ता के उत्कर्ष का कथन है।

'अस्य शक्तिः' जैसा प्रयोग 'पुरुषस्य चैतन्यम्' तथा 'राहोः शिरः' इत्यादि के समान औपचारिक है। वस्तुतः पुरुष तथा चैतन्य में तथा राहु एवं उसके शिर में भेद नहीं रहने पर भी जैसे भेद रूप में उनका प्रयोग होता है, उसी प्रकार ब्रह्म एवं शक्ति में कोई भेद नहीं रहने पर भी 'अस्य शक्तिः' ऐसा प्रयोग हुआ है। अखण्ड स्वाभावि की शक्ति का विचार उत्तरमीमांसा में किया गया है तथा परिच्छिन्न आधार में परिच्छिन्नावत् प्रकाशमानं शक्ति को ही मैने औपाधिकी शक्ति कहा है। दर्पण में सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान एक–एक बुद्धि में प्रतिबिम्बित ब्रह्म का स्वरूप जीव है, वह भी औपाधिकी शक्ति ही है।

कर्मकाण्ड में यज्ञीय वस्तुओं में प्रथम वस्तु अग्नि या आग्नेय शक्ति, जिला या शिखा है, जो अग्नि का ही परिच्छिन्नतर अंश हैं। ऋग्वेद के देवीसूक्त में देवात्मशक्तिभूत आम्भृणी ने कहा है – 'प्रथमायज्ञियानाम्' । इसी की विवृति मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार है –

काली कराली च मनोजवा च

सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।

स्फुलिडिंगनीविश्वरुची च देवी

लेलायमाना इति सप्त जिब्हा ।। (मु0उप0 १.२.४)

ये अग्नि की सात जिब्हायें हैं, इनमें काली प्रथमा हैं। यह बात उपनिषद तथा देवीसूक्त के मन्त्र की एकवाक्यता से स्पष्ट हो जाती है। 'प्रथमा यज्ञियानामें' अर्थात सर्वव्यापिनी आद्याा काली ही अग्निरूप आश्रय से परिच्छिन्न आग्नेय शक्ति हैं। उनका प्रथम विकास रूप होने के कारण प्रथम जिव्हा का नाम काली हैं। अग्निशिखा का दृश्यमान अचेतन रूप ही उपाधि है। अधिष्ठात्री चेतना काली शक्ति उपाधि आश्रय से अधिकतर परिच्छिन्न हो गयी हैं। यह परिच्छिन्न शक्ति आद्या शक्ति काली की विभूति है। परिछिन्न शब्द का अर्थ है – धटादि के आभ्यन्तर स्थित आकाशवत् स्वल्पाहार में प्रतीत होना। अग्निशिखा के अचेतन रूप से पृथक उसकी अधिष्ठात्री चेतन शक्ति है। इसका प्रमाण मुण्डकोपनिषद के निम्नलिखित मन्त्रों में है –

एतेषु यश्चरत भ्राजमानेषु

यथाकालं चाहुतयो हयाददायन ।

तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो

यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ।।

एहयेहीति तमाहुतयः सुवर्चसः

सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।

प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य

एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।।

अर्थात भ्राजमान इस सप्तजिव्हा में जो यजमान यथाकाल आहुतिन्दान करते हैं, वह सप्तजिव्हा उस आहुतिदाता को मरणान्त में सूर्यराशि की सहायता से प्रिय वाक्य कहकर आदरपूर्वक ब्रह्मलोक को ले जाती हैं और कहती हैं कि यही तुम्हारा पुण्यार्जित ब्रह्मलोक है। इससे ज्ञात होता है कि वे चेतन हैं। चेतन हुए बिना बोलने की शक्ति कहाँ से आती ? अतः अग्नि–शिखाओं में परिच्छिन्न अधिष्ठात्री चेतना–शक्ति है और भी बहुत सी औषधियों शक्तियों की प्रतिष्ठा पूर्व मीमांसा मे है। यथा–मन्त्रशक्ति, हवनीय शक्ति, होतृ–शक्ति तथा कर्मशक्ति (धर्म) आदि। अत एवं मीमांसा के दोनों भागों की एकवाक्यता अव्याहत है। भगवान श्री शंकराचार्य ने प्रपंच सार में शक्तित्व का निरूपण इस प्रकार किया है कि ज्योतिमूर्ति श्री हरि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर से कहते हैं :–

प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते।

या युष्मानीय मां नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते ।।

साहं यूयं तथैवान्यद् यद्वेद्यं तत्तु सा स्मृता ।

प्रलये व्याप्यते तस्यां चराचरमिदं जगत ।। (प्रपंच्चसार – १.२६-२७)

अणोरणीयसी स्थूलात्स्थूला व्याप्तचराचरा ।

आदित्येन्द्वादि तेजोमद् यद्यत्ततन्मयी विभुः (प्रपंच्चसार – १.२२)

सैव स्वं वेत्ति परमा तस्या नान्योऽस्ति वेदिता (प्रपंच्चसार – १.२८)

अर्थात जिसे प्रधान तथा शक्ति नाम से पुकारते हैं, तुम्हे तथा हमें धारण करके एवं अतिक्रम करके जो अवस्थित है, हम, तुम तथा अन्य ज्ञेय पदार्थ जिससे पृथक नहीं

है, यह चराचर जगत प्रलयकाल में जिसमें तीन रहता है, वह देवी अणु से भी अणु और स्थूल से भी स्थूल है और चराचर को व्याप्त करके अवस्थित है । केवल वही देवी अपने को जानती है, उसको जानने वाला और कोई अन्य नहीं है।

शक्तिमान से शक्ति सूक्ष्मा होने के कारण अणीयसी है । शक्तिमान से शक्ति सूक्ष्म होने के कारण अणीयसी है। शक्तिमान सूक्ष्म और शक्ति सूक्ष्मा है। परन्तु इन दोनों में शक्ति ही अधिकतर सूक्ष्मा है। इसीलिए उसे अणीयसी कहा गया है। अणु तथा सूक्ष्म शब्द यहाँ एकार्थवाची हैं। सूक्ष्म का अर्थ है, दुर्ज्ञेय, उदाहरणार्थ सूर्य प्रतिदिन सर्वसाधारण को प्रत्यक्ष होता है, परन्तु उसकी महती शक्ति सब की समझ में नहीं आती। ग्रह–उपग्रहों को यथास्थान रखना और उन सबकी केन्द्र–च्युति का निवारण करना, समस्त प्राणियों की जीवन रक्षा आदि सौर जगत की स्थिति उसी महती शक्ति से होती हैं। उस महान सूर्य की बात तो अलग रही, एक साधारण तृण की भी रोगनाशिनी शक्ति आयुर्वेद में प्रसिद्ध है, परन्तु सामान्य जग उस शक्ति को न जानकर उस तृण की उपेक्षा ही करते हैं।

यह औपाधिकी शक्ति है। यह शक्ति भी शक्तिमान की अपेक्षा दुर्ज्ञेय है। शक्तिमान, जो समझ में आता है, उसकी अपेक्षा तो स्वाभाविकी शक्ति और भी अधिक दुर्ज्ञेय होगी, इसमें कहना ही क्या है ? वस्तुतःशक्तिमान शक्तिके अधीनस्थ गुणों से भिन्न नही है, यह सदैव स्मरण रखने की बात है। शक्तिमान अपेक्षाकृत स्थूल है, परन्तु वह शक्ति से वैसे ही अलग नहीं है, जैसे मकड़ी से तन्तु अलग नहीं होता । यह स्वाभाविक शक्ति अर्थात देवात्मशक्ति स्वप्रतिष्ठत है । यथा –

स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नि प्रतिष्ठितः । (छान्दोग्य ६.२४.१)

शक्ति का आपेक्षिक स्थूल रूप शक्तिमान तथा शक्तिमान का आपेक्षिक सूक्ष्म रूप शक्ति हैं। उस शक्तिमान से अभिन्न शक्ति ही ब्रह्म हैं इसीलिए उपनिषदों में 'सर्वान्तर', 'अणोरणीयान्', 'दुर्दर्शम्', 'गुहाहितम' इत्यादि विवरण प्राप्त होता है। शारीरिक–भाष्य के १.१.२ सूत्र की व्याख्या में भी इसी शक्ति–तत्व का निर्देश है। यथा–

'अस्य जगतो ....जन्मस्थितिभङ्ग यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्ते कारणाद् भवति तदब्रम्ह'

अर्थात जिस सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिरूप कारण से जगत की सृष्टि, स्थिति तथाा लय होता है, वही ब्रह्म हैं। उक्त भाष्य की पंक्ति की अन्य भी व्याख्या है, परन्तु वह भगवान श्री शंकराचार्य के प्रप्रंचसार से विरुद्ध है। जो व्याख्या यहाँ की गयी है, उसी का विस्तृत प्रमाण प्रपंच सार में है। यथा –

सैव स्वंवेत्ति परमा तस्या नान्योऽस्ति वेदिता ।।

अर्थात उस परमा शक्ति को जानने वाला दूसरा कोई नहीं है, वह स्वंय ही अपने को जानती है। इससे सिद्ध होता है कि शक्ति का ज्ञाता और कोई नहीं है, वह स्वंय अपना तत्व जानती है। एक भी ज्ञान का अभाव होने से कोई सर्वज्ञ नहीं कहला सकता। शक्ति–तत्व का ज्ञान जब और किसी को नहीं है तो वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

भक्त ब्रह्म से भयभीत रहता है। वह ब्रह्म को माता तथा स्वंय को पुत्र समझकर ही निर्भय होता है। दुधमुंहां बालक जैसे अपनी माता को ही सब कुछ समझता है, और

उसी से मनचाहा सब कुछ पाता है, उसी प्रकार जो अनन्यासक्त होकर उनको भेजते हैं, उनके ऊपर माँ की कृपा होती है तथा कृपा प्राप्त होने पर उन्हें अधिकारानुसार फल भी प्राप्त होता है। श्री दुर्गा सप्तशती में वर्णित राजा सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य इसके उदाहरण हैं । अथ च माँ शक्ति को प्रणाम करते हुए विषयोपसंहार किया जा रहा है :—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्वयाप्य स्थिता जगत्।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

या देवी सर्वभूतेष विष्णुमायेति शब्दिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

निष्कर्ष एवं समीक्षा

मनुष्य सदा से ही यह सोचता चला आ रहा है कि वह वस्तु क्या है :—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।। (गीता १८.४६)

अर्थात जिससे समस्त पदार्थों का उदगम है और जो सब पदार्थों में व्याप्त हैं। संसार के धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य में इस प्रश्न के अनेक उत्तर दिये गये हैं। हमारे मत से विश्वगत नानात्व देश—काल परिस्थितिकृत हैं। स्वरूपतः वह अवर्णनीय है। इसके पीछे इसका आधार तथा तत्व एक हैं। एक ही अनेक रूप में प्रकट हो रहा हैं।

वह एक तत्व सामान्य गुण, स्वरूप वाला कोई शुष्क सन्मात्र नहीं है। वह सर्व–गुण–स्वभाव शक्तिमय एक है।

वह एक होता हुआ भी अनेक रूपों में परिणत हो रहा है। व्यक्तित्व और विशेषज्ञ उसी एक परम तत्व का किसी विशेष क्षण, स्थान तथा परिस्थिति में प्रकट होने क नाम हें। अतएव वह क्षणिक है । इस दृष्टिकोण से सदा ही उसमें अनेकता तथा परिणाम रहेंगे । एकत्व दृष्टि से वह नित्य है, अनन्त है और सर्वशक्तिमय है । वह जो है, सदा है, सर्वत्र है तथा सब कुछ है इसीलिए उसका कोई विशेष नाम और गुण नही कहा जा सकता। उसका हम लक्षणा से ही वर्णन कर सकते हैं । भारतीय शास्त्रों में उस तत्व का नाम प्रायः ब्रह्म है ।

योगवासिष्ठ महारामायण में, जो कि भारतीय अध्यात्म–शास्त्रों में एक उच्चकोटि का ग्रन्थ है, उस तत्व का नाम ब्रह्म और उसके नाना रूप में प्रकट होने का नाम ब्रंम्हण है। इसी ग्रन्थ के कुछ स्थलो पर जगत के इन दो स्वरूपों का नाम शिव और शक्ति भी दिया गया हैं। परम तत्व शिव है तथा तथा नाना रूप जगत उसकी क्रिया शक्ति का अनन्त रूपों में नृत्य करने का नाम है।

योगवासिष्ठ के अनुसार ब्रह्म और माया अथवा शिव और शक्ति दो तत्व नहीं हैं। शिव–शक्ति या चिच्छक्ति उस एक ही परम तत्व का नाम है, जो जगत में दो रूपों में प्रकट हो रहा हैं। एक वह वह रूप, जो हमारा तथा संसार के समस्त पदार्थों का आत्मा हैं। वह सदा एकरस, निर्विकार तथा अखण्ड रहता हुआ सब विकारों का साक्षी है, दूसरा वह रूप है, जो दृश्यमान है, जिसमें नानारूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं।

संसार के जितने क्षण–क्षण में रूप बदलने वाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्व के इस रूप के रूपान्तर हैं। इस रूप का नाम शक्ति है। दूसरे रूप का नाम शिव है। एक रूप

क्रियात्मक है तथा दूसरा शान्त्यात्मक। एक का दर्शन ब्राह्म पदार्थो में होता है तथा दूसरे का हृद्गुहा में। एक ही उपासना करने से अभ्युदय की सिद्धि होती हे तथा दूसरे के ध्यान से नि+श्रेयस् की। सदा से ही कुछ मनुष्यों की रूचि एक की ओर रही है और दूसरों की दूसरी ओर। प्रथम श्रेणी के मनुष्यों को हिन्दू शास्त्रों में प्रवृत्ति–मार्ग के पथिक तथा दूसरी श्रेणी के मनुष्यों को निवृत्ति–मार्ग के पथिक कहा है। इनसे उच्च कोटि वे सौभाग्यशाली महात्मा है, जिनके ज़ीवन में दोनों रूपों की उपासना का अविरोधात्मक समन्वय हैं। उन लोगों के लिए एक रूप बिना दूसरे के अध ूरा है। उनके लिए तो–

चित्सत्रैव जगत्सत्ता जगत्सत्तैव चिद्वपुः।। (यो.वा. ३.१४.७५)

जो कुछ भी जगत् में दिखाई दे रहा है, वह सब यदि ब्रह्म से ही प्रादुर्भूत हुआ है, तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्म में यह सब कुछ पैदा करने की शक्ति है। अन्यथा अभाव से भाव की उत्पत्ति मानने का दोष उपस्थित हो जाएगा। इसीलिए योगवासिष्ठ में ब्रह्म को सर्व शक्तिमय माना गया है।

सर्वशक्तिपरं ब्रह्म नित्यमापूर्ण मव्ययम्।
न तदस्ति न तस्तिन्य द्विधते विततात्मनि।। (यो0वा0 ३.१००.५)

ज्ञान शक्तिः क्रिया शक्तिः कर्तृताऽकर्तृताऽपि च।
इत्यादिकानां शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मनः।।
चिच्छक्तिब्रह्मणे राम शरीरेष्वभि दृश्यते।
स्पन्दशक्तिश्च वातेषु जडशक्ति स्तथोपले।।
द्रवशक्तिस्तथाम्भःसु तेजश्शक्तिस्त थाऽनले।
शून्य शक्तिस्तथाकाशे भावशक्ति र्भवस्थितौ।।
ब्रह्मणः सर्वशक्तिर्हि दृश्यते दशदिग्गता।
नाशशक्तिर्विनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु।।
आनन्द शक्तिर्मुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भठे।
सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिता।।

(यो०वा० 3.100.6—90)

अर्थात नित्य, सर्वथा पूर्ण, अव्यय पर ब्रह्म सर्वशक्तिमय है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो उस विस्तृत स्वरूप में न हो। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तत्व तथा अकर्तृत्व आदि शाक्तियों का उस शिवात्मा में कोई अन्त नहीं है। चेतन शरीर में उस ब्रह्म की चित्—शक्ति, वायु में स्पन्द शक्ति, पत्थर में जड़, शक्ति, जल में द्रव—शक्ति, अग्नि में तेज शक्ति, आकाश में शून्य शक्ति, जगत् की स्थिति में भाव—शक्ति, दश दिशाओं में सर्व—साधारण शक्ति, नाशों में नाश—शक्ति, शोक करने वालों में शोक—शक्ति, प्रसन्न रहने वालों में आनन्द—शक्ति, योद्धाओं में वीर्य—शक्ति, सृष्टि में सर्जन—शक्ति था कल्प को अन्त में सब शक्तियाँ उसी में दिखाई देती है।

ब्रह्म की अनन्त शक्तियों में से स्पन्द—शक्ति एक विशेष शक्ति है। इस स्पन्द—शक्ति के द्वारा ही संसार की रचना होती है। यथा —

स्पन्द शक्तिस्तथेच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पना पुरम्।। (यो०वो० 6.8.4.6.)

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिर कृत्रिमा।। (यो0वा0 6.85.14)
प्रकृतित्वेण सर्गस्य स्वयं प्रकृतितांगता।
दृश्याभासानुभूतानां कारणात्सोच्यते क्रिया।। (यो0वो0 6.84.8)

भगवान् की स्पन्दशक्तिरूपी इच्छा उसी प्रकार इस दृश्य जगत् का प्रसार करती है, जैसे कि मनुष्य की इच्छा कल्पना–नगरी का निर्माण कर लेती है। हे राम। वह अनादि स्पन्द–शक्ति प्रकृति, परमेश्वर शिव की इच्छा, जगन्माता आदि नामों से भी विख्यात है। सृष्टि का कारण होने से वह प्रकृति तथा अनुभूत दृश्य पदार्थो के उत्पादन करने से वह क्रिया कहलाती है।

इस महाशक्ति के अन्य नाम शुष्क, चण्डिका, उत्पला, जया,सिद्धा, जयन्ती, विजया, अपराजिता, दुर्गा, उमा गायत्री, सावित्री, सरस्वती, गौरी, भवानी और काली आदि भी है। (यो.वो. 6, 84, 7–14)।

वह क्रिया–शक्ति ही इस समस्त जगत् को उत्पादन करके अपने भीतर अवयव रूप से धारण करती है। यथा –

साहि क्रिया भगवती परिस्पन्दैक रूपिणी।
चितिशक्तिरनाद्यन्ता तथा भावात्मनात्मनि।।
देव्यास्तस्या हियाः काल्या नाना भिनयनर्तनाः।
ता इमा ब्रह्मणः सर्गजरामरणरीतयः।।
क्रियासौ ग्राम नगर द्वीमण्डलमालिकाः।
स्पन्दान् करोति धत्तेऽन्तः कल्पितावयवात्मिका।।
काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका।।
धत्ते स्वावयवीभूतां दृश्यलक्ष्मीमिमां हृदि।। (यो.वा.6.84.17–20)

वह भगवती क्रिया, स्पन्दन ही जिसका स्वरूप ही जिसका स्वरूप है, अनादि और अनन्त चिति–शक्ति, जगद्रूप से अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है, उस देवी के सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्म की सृष्टि, वृद्धि तथा तय के निमय हैं। यही कल्पित अवयव वाली क्रिया–देवी ग्राम, नगर द्वीप, मण्डल आदि स्पन्दनों की माला को रचती है और अपने भीतर धारण करती है। वह ब्रह्माण्ड रूप से स्पन्दित होने वाली काली क्रिया अपने अवयव रूप इस जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है, जैसे कि कमलिनी अपने भीतर पुष्प–लक्ष्मी को। शक्ति स्वंय अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त जगत् को अपने भीतर प्रकट करती है। यथा –

चित्स्पन्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनेवपुरं हृदि।
सैववा जगदित्येव कल्पनैव यथा पुरम्।।
पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छा शिवस्य सा।
यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्तः प्रशान्तेच्छस्तथा शिवः।।
अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाऽम्बरमानिक्तः।
यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरूते जगत्।।

(यो.वा. 6.85, 4–6)

वह चिस्पन्दरूपी शक्ति जगत् को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है, जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगर को या इस तरह कहना चाहिए कि जैसे कल्पना स्वंय ही कल्पित नगर है, वैसे ही वह शक्ति ही स्वंय जगत् है।

वह शक्ति शिव की इच्छा है और वायु के स्पन्दन के समान शिव का ही स्पन्दन है। जैसे स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र पर शान्ति रहती है, उसी प्रकार महाशक्ति रूप स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र में शान्त इच्छा वाला शिव की इच्छा अव्यक्त शिव में इस

प्रकार जगत् को प्रकट कर देती है, जैसे कि अमूर्त अकाश में वायु का स्पन्दन मूर्त शब्द को प्रकट कर देता है। प्रकृतिरूपी शक्ति ब्रह्म से अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व नहीं है। वह तो ब्रह्म का ही एक रूप है। यथा–

यदैव खलु शुद्धाया मनागपिहि संविदः।
जडेव शक्तिरूदिता तदावै चित्र्यमागतम्।। (यो.वा. 3.96.70)
भावदाढर्यात्मकं मिथ्या ब्रह्मानन्दों विभाव्यते।
आत्मैव कोश कारेण लालदाढर्यात्मकं यथा।। (यो.वा. 3.37.73)
ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाजडः।
नित्यात्प्रबुद्धात्पुरुषाद् ब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा।। (यो.वा. 3.93.71)
सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेतिसा कल्प्यते त्रिधा।
सत्तवं रजस्तम इति ह्येषैव प्रकृतिः स्मृतौ।। (यो.वा. 6.7.5.)

यह जगत् रूपी विचित्रता तभी उदित होती है जब कि शुद्ध संवित् में जड़रूप शक्ति का उदय होता है। जैसे कोश बनाने वाला कीड़ा अपने भीतर से ही लार निकाल कर उससे दृढ़ कोश का निर्माण करता है, उसी प्रकार ब्रह्मानन्द ही सब भावों के रूप में दृढ़ हो रहा है। जैसे चेतन मकड़ी से जड़ जाले की उत्पत्ति होती है, वैसे ही नित्य, प्रबुद्ध पुरूष ब्रह्म से प्रकृति की उत्पत्ति होती है। उस प्रकृति के तीन रूप हैं– सक्ष्म, मध्यम तथा स्थूल। इन्ही को सत्तव् रजस् तथा तमस् कहा जाता है।

शक्ति और शिव सदा ही अनन्य भाव से रहते है। एक दूसरे से कभी भी विळग नहीं होते। यथा –

यथैंक पवनः स्पन्दमेकमौष्ठयानलौ यथा।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा।। (यो.वा. 6.84.3)
चितिशक्तेः क्रियादेव्याः प्रतिस्थानं यदात्मनि। (यो.वा. 6.84.26)

तथाभूतस्थितेरेव तदेव। शिव उच्चते।। (यो.वा. 6.84.27)

अनन्यां तस्यतां विद्धि स्पन्दशक्ति मनोमयीम्। (यो.वा. 6.84.2)

कथमास्तां वदप्राज्ञ मरिचं तिक्ततां विना।। (यो.वा. 6.84.7)

जैसे पवन और उसका स्पन्दन, अग्नि और उसकी उष्णता एक ही वस्तु है, वेसे ही चिन्यात्र शिव तथा उसकी स्पन्द–शक्ति सदा ही एकात्म हैं। क्रिया–देवी चिति–शक्ति के भीतर उसका सदा एक रूप रहने वाला प्रतिस्थान शिव कहा जाता हे। मनोमयी स्पन्द–शक्ति उससे अन्य कोई वस्तु नहीं है। जैसे मिर्चतिक्तता के बिना नहीं होती, वैसे ही शिव बिना शक्ति के नहीं होता। शिवरूप प्रतिस्थान का दर्शन सा स्पर्श करने मात्र से ही शक्ति का स्पन्दन शान्त हो जाता है तथा संसार की गति एकदम अवरूद्ध हो जाती है। यथा –

भ्रमित प्रकृतिस्तावत्सांसरे भ्रमरूपिणी।
यावन्न पश्यति शिवं नित्यतृप्तमनामयम्।।
संविन्मात्रैक धर्मित्वात्काकतालीय योगतः।
संविद्देवशिवं स्पृष्ट्वा तन्मय्येव भवत्यळम्।।
प्रकृतिः पुरूषं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्झति।
तदन्तस्त्वेकतां गत्वा नदीरूपमिवार्ण वे।। (यो0वा0 6.85त्र16त्र18)

भ्रमणशालिनी, स्पन्दात्मिका, परमेश्वर की चिच्छक्ति प्रकृति इच्छापूर्वक तब तक संसार में भ्रमण करती है, जब तक कि वह नित्य, तृप्त, अनामय शिव के नहीं देखती। स्वंय भी संवित् रूप होने कारण, यदि वह अकस्मात् कभी। शिव को स्पर्श कर लेती है, तो तुरन्त ही उनके साथ तन्मयी हो जाती है। तब वह शिव के साथ एकता को प्राप्त करके अपने प्रकृति रूप को इस प्रकार खो देती है, जैसे समुद्र में गिरकर नदी अपने नदी रूप को। प्रकृति के इस ब्रह्म में लय हो जाने का ही नाम निर्वाण पद है। यथा –

चितिनिर्वाणरूपं यत्प्रकृतेः परमं पदम्।
प्राप्य तत्तामवाप्नोति सरिदब्धाविवाब्धिताम्।।

(यो.बा. 6.85.26)

अर्थात प्रकृति की परम गति संवित् में निर्वाण प्राप्त कर लेना ही है। उसको प्राप्त करके वह वही हो जाती हे, जैसे कि नदी समुद्र में पड़कर समुद्ररूप हो जाती है। वह पद परमानन्दरूप है और उसका वर्णन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। यथा –

न सनासन्न मध्यान्तं न सर्व सर्वमेव च।
मनोवचोभिरग्राह्मं शून्याच्छून्यं सुखात्सुखम्।।

(यो.वा. 3.119.23)

अर्थात न तो वह सत् है, न ही असत् तथा न इन दोनों का मध्य या अन्त है। वह कुछ भी नहीं है तथा सब कुछ है। मन और वचन से उसका ग्रहण नहीं हो सकता। वह शून्य से भी शून्य है तथा आनन्द से भी अधिक आनन्दरूप है।

सारांशतः शक्ति चिद्रूपिनी है। वह सच्चिदाननद रूपिणी है। वह प्रकृति की विध ात्री है। वह स्वंय ही प्रकृति है। वह भगवान् शिव या ब्रह्म की शक्ति है। वह इस संसार रूपी नाटक की सूत्रधार है। वह जगज्जननी है। वह महिषमर्दिनी है। वह भ्रान्तिनाशिनी है।

देवी भगवान् शिव की शक्ति है। वह जड़ शक्ति तथा चित् शक्ति है। शक्ति प्रकृति है, माया है, महामाया है, श्रीविद्या है। शक्ति ही ब्रह्मा है। वह ललिता है, वह कुण्डलिनी है, वह राजराजेश्वरी है। वह त्रिपुरासुन्दरी है। वह दश महाविद्या है। काली, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातङ्गी षोडशी, धूमावती, कमलात्मिका, तारा भैरवी है। शुद्ध माया चित्–शक्ति है तथा प्रकृति जड़–शक्ति है।

निर्गुण ब्रह्म में शक्ति अप्रत्यक्ष (गुप्त) रहती है तथा सगुण ब्रह्म में वह प्रत्यक्ष (प्रकट) हो जाती है। माँ शक्ति की कृपा प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना, श्रद्धा, पूर्ण प्रेम तथा आत्मसमर्पण की आवश्यकता है। केवल उसकी अनुकम्पा के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अन्ततः इन्ही शब्दों के साथ शरणागतदीनार्त्त परित्राणपरायणा सर्व स्यार्तिहरी जगदात्मिका करूणामयी माँ के पावन चरणकमलों में सविनय यह शब्दाज्जलि अर्पित है –

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्।।इति।

पंचम अध्याय

(शक्ति स्वरूप एवं शाक्त सिद्धान्त में दर्शन की पृष्ठभूमि)

(क) शाक्त सिद्धान्त के आचार्य एवं शाक्त सिद्धान्त का क्रमिक विकास

(ख) शक्ति की उपासना का क्रमिक इतिहास, शाक्त सिद्धान्त का दार्शनिक रूप और उसका क्रमिक विवेचन

(ग) शाक्त दर्शन की प्रारम्भिक पृष्ठ भूमि, शक्ति की उपासना में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यो का मत तथा दार्शनिक दृष्टि से शाक्त सिद्धान्त का महत्व

पंचम—अध्याय

शक्ति—स्वरूप एवं शाक्त सिद्धान्त में दर्शन की पृष्ठ भूमि

शाक्त—सिद्धान्त के आचार्य एवं शाक्त सिद्धान्त का क्रमिक विकास

अति प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति के पोषक तत्वों में वेद और आगम अथवा निगम और आगम अथवा वैदिकी और तान्त्रिकी श्रुति के रूप में दो परस्पर समानान्तर धाराओं का सम्मिश्रण रहा है। विश्व के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में उन्मत्त और सोमरसपायी तपस्वियों के वर्ग विशेष के रूप में मुनियों का वर्णन (ऋग्वेद—10.136), शिश्न देवों की चर्चा (ऋग्वेद— ७.२१.५ तथा १०.६६.३) एवं यजुर्वेद में रूद्र के सन्दर्भ में 'दौर्व्रात्य' शब्द का प्रयोग (यजुर्वेद—३६.६), सामान्य यज्ञ—विधान से पृथक कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेद के त्रयम्बक होम (शुक्ल—यजुर्वेद—३.६0) और शतरूद्रीय सूक्त (शुक्ल—यजुर्वेद— १६.१—६६) तथा अथर्ववेद में व्रात्यों का उल्लेख (अथर्ववेद, काण्ड—१५) प्रभृति उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त सिन्धुघाटी की सभयता में खनन से उपलब्ध शिवलिंग, वृषभ, योगी आदि के प्रतीकों का वेदों में न मिलना भी इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि भारतीय संस्कृति में वैदिक सभ्यता से अतिरिक्त किसी अन्य सभ्यता का भी पृथक अस्तित्व अवश्य ही विद्यमान रहा है। इस सभ्यता के अनुयायियों की अपनी पृथक जीवन शैली थी, इनका अपना स्वतंत्र दर्शन था। इनके कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड भी भिन्न—भिन्न थे। इन दोनों प्रमुख सांस्कृतिक ध ाराओं के मध्य कभी विकर्षण, तो कभी आकर्षण के संकेत प्राप्त होते हैं। कभी कभी तो अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इनमें परस्पर संघर्ष होने के भी प्रमाण मिलते हैं।

शाक्त तंत्रों का प्रमुख सिद्धान्त शक्ति—पारम्यवाद है, जिसका उद्गम हमें वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। वेदों में जो भी स्त्री—देवता वर्णित है, उनका महत्व

कुछ भिन्न प्रकार का है। कुछ सूत्रों में पृथिवी का स्तवन किया गया है। (अथर्ववेद–१२.१) स्त्री–देवता रोदसी भी है (शैवमत, डा0 यदुवंशी, पृ0३३–३४) वेदों में केवल एक स्त्री–देवता ऐसी है, जो अन्य से भिन्न और विशेष महत्व की है। वह है वाक जिसका प्रथमबार उल्लेख ऋग्वेद के एक अपर कालीन सूक्त (ऋग्वेद–१०.१२५) में मिलता है। उसका वर्णन देवताओं की शक्ति के रूप में किया गया है और उसका देवताओं पर नियंत्रण रखने वाली कहा गया है; परन्तु परवर्ती संहिताओं में उसके नाम की स्मृति मात्र शेष रह गयी है। इस वाक् का स्वरूप शाक्त–तन्त्रों में वर्णित शक्ति से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि–सहिंता के त्रयम्बक होम सूक्त में अम्बिका नाम की एक अन्य स्त्री देवता का भी उल्लेख मिलता है, जिसे रूद्र की बहन कहा गया है, परन्तु उसका स्थान भी वैदिक साहित्य में नगण्य ही है। कुछ विद्वान इस अम्बिका को अपरकालीन दुर्गोपासना का आदि रूप मानते है।

उपनिषत्काल में नये–नये धार्मिक एवं दार्शिनिक प्रस्थानों का सूत्रपात हुआ। प्राचीन वैदिक कर्मकाण्डों का स्थान भक्ति वाद ने ले लिया। त्रिदेव के रूप में ब्रम्हा, विष्णु, महेश एवं शिव प्रमुख रूप से उपास्य बने। वैदिक बहुदेवतावाद सिमटकर एक देवतावाद में परिणत हो गया और विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता माना जाने लगा। 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति 'के सिद्धान्त के अनुसरण में एकमात्र विष्णु में ही 'सत्' का अधिष्ठान माना गया, किन्तु इनकी उपासना त्रैवर्णिकों तक ही सीमित रही। दूसरी तरफ शिव का प्रभाव समस्त आर्य एवं आर्येतरों में बढ़ा। योग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण इनका यक्ष,राक्षस, दैत्य, दानव आदि विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश वाली उपासना पद्धतियों के साथ सम्बन्ध बढ़ता ही गया। इन

दोनों ही देवताओं की उपासना के पूर्ण विकसित होने के साथ ही त्रिदेव में परिगणित ब्रह्मा की उपासना क्षीणान्तर होती गयी, जो कालान्तर में स्मृतिमात्र ही रह गयी।

शक्तिवाद के सिद्धान्तों का निरूपण भी सर्वप्रथम हमें उपनिषदों में ही दृष्टिगोचर होता है। केनोपनिषद में कहा गया है कि देवताओं को ब्रहमज्ञान उमा हेंमवती नामक एक स्त्री –देवता ने कराया(केनोपनिषद–३,१२)। यहाँ इस देवता की कल्पना देवताओं की चेतन–प्रज्ञा के रूप में की गयी है, जो अपरकाल में उमा तथा पार्वती आदि नामों से ही शिव से सम्बद्ध हो गयी। श्वेताश्वतर उपनिषद् में पहली बार विश्व की सक्रिय सर्जन शक्ति के रूप में प्रकृति का उल्लेख हुआ है। उसे परब्रह्म की शक्ति कहा गया है, जिसके द्वारा वह ब्रह्म विविध रूप विश्व की सृष्टि करता है। वह शक्ति त्रिगुणमयी और जगत् की सृष्टि करने वाली कही गयी है (श्वेताश्वर उपनिषद् ४,१,५)। इस उपनिषद के तीसरे,चौथे, तथा पांचवे अध्यायों में शैवदर्शन के भित्तिस्वरूप सांख्य की सूक्ष्म मीमांसा की गयी है।

रामायण वैखानस मत का वैष्णव ग्रन्थ है। इसमें विष्णु के साथ ही साथ शिव के भी सर्वश्रेष्ठ माना गया। यहां शिव की शक्ति के रूप में उमा, पार्वती, भवानी आदि का नाम आता है। यहां पर वर्णित शक्तिरूपा देवी केवल पतिरूप पुरूष देवता की छाया मात्र ही नही है, अपितु उसके स्वतंत्र अस्तित्व की भी हमें प्रतीति होती है।

महाभारत में स्त्री देवता की स्वतंत्र उपासना का कई बार उल्लेख हुआ है, परन्तु इससे शक्तों के स्वतंत्र प्रस्थान की हमें जानकारी नहीं मिलती। नारायणीयोपाख्यान में सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद तथा पाशुपत मतों का ही उनके प्रवर्तक आचार्यों के साथ उल्लेख मिलता है (महाभारत, नारायणीयोपाख्यान–२४६,

६५–६८)। वहां के अनुसार धर्म के निर्णयों में प्रमाणशास्त्र के रूप में इन्हीं को मान्यता प्राप्त थी। ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह स्थिति महिम्नस्तव के रचना काल तक बनी रही है। (महिम्नस्तव, श्लोक–१७) महाभारत में देवी की स्तुति में पूरे दो स्त्रोत में कहे गये है जिनसे उसके स्वरूप और उसकी उपासना पर प्रकाश पड़ता है (महाभारत, विराट्पर्व–६ भीष्मपर्व–२३)। आधुनिक इतिहासकार इन दोनो स्त्रोतों को यद्यपि प्रक्षिप्त मानते है, किन्तु ध्यातव्य है कि भाण्डारकर शोध संस्थान के परिष्कृत संस्करण में भी श्रीपर्वत, शाकम्भरी और धूमावती के नाम मिलते हैं। यथा–

'श्रीपर्वते महादेवो' (वनपर्व–८३, १७)

'शाकम्भरीति विख्याता'(वनपर्व–८२,११)

'धूमावती ततो गच्छेत्' (वनपर्व–८०,२०)

वह कृष्णवर्णा अथवा कृष्ण तथा वभ्रु रंग की है, यद्यपि एक बार उसे श्वेतवर्णा भी कहा गया है। जया और विजया के रुप में युद्ध से पूर्व विजय प्राप्ति के लिए उसका आह्वान किया जाता था। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को देवी की अराधना करने का निर्देश दिया था। यहां देवी को एक तरफ शिव की पत्नी और स्कन्द की जननी कहा गया है, तो दूसरी तरफ उसको कुमारी भी कहा गया है, जिसने सतत् कौमार्य व्रत ले रखा है तथा जिसे मद्य, मांस और पशुबलि अत्यन्त प्रिय है। एक अन्य स्थल पर उसे कालरात्रि और महाकाली भी कहा गया है। महाभारत में इस देवी को विश्व की परम साम्रज्ञी तथा सर्वश्रेष्ठ देवता माना गया है, जो यह इंगित करता है, कि उस समय तक शाक्त सम्प्रदाय अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था और जो कालान्तर में क्रूर उपासना और मद्य, मांस, पशुबलि जैसे आचार–विचार तथा समाजविरोधी तत्वों को धारण करता हुआ एक स्वतंत्र मत धारण कर लिया।

इसकी साधना पद्धति भी गुप्त और गुप्ततर होती गयी। तद्नन्तर इसके साम्प्रदायिक ग्रन्थ भी निर्मित हुए।

इस प्रकार अत्यन्त संक्षिप्त रूप में शाक्त तन्त्रों के प्रादुर्भाव का एक बाह्य रेखांकन प्रस्तुत किया गया। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही इस शाक्त धारा का प्रवाह हमारी संस्कृति में होता रहा है। वेदों, आरण्यकों, ब्राम्हण, ग्रन्थों, गृहयसूत्रों तथा उपनिषदों में भी इस धारा का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी पड़ता है। वैदिक रूद्र से लेकर पौराणिक शिव तक की यात्रा में, वेदातिरिक्त नाना प्रकार के सम्प्रदायों की उत्पत्ति में, अनेक रहस्मय ज्ञान विज्ञान की साधना एवं तपश्चर्या में तथा भक्तिवाद की धारा में शक्तिवाद ही प्रमुख कारक रहा है। न्याय और वैशेषिक दर्शन में शाक्तिवाद मान्य नहीं है। मीमांसक तथा शंकर–वेदान्ती शक्ति को मानते हैं। योगदर्शन में 'चितिशक्तिरपरिणामिनी' कहा गया है। (योगसूत्र, व्यासभाव्य–१.२)।

'इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते' इत्यादि वाक्यों से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भी 'एकोऽहं बहु स्याम्' के मूल में इसी शक्ति की ही क्रिया लक्षित होती है। उपनिषद् में कहा भी गया है– 'एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरूषः'। इस प्रकार से शक्तिवाद की यह धारा अनादिकाल से वैदिक सभ्यता के समानान्तर प्रवाहित होती रही है। जिस प्रकार से गुरू–शिष्य की परम्परा से वैदिक ज्ञान वर्णाश्रम धर्म का अनुसरण करते हुए आज तक चला आ रहा है, उसी प्रकार तन्त्रागम शास्त्र की भी परम्परा अनादि काल से प्रवहमग्न है।

वस्तुतः इस शास्त्र के अनुयायियों ने वैदिक कर्मकाण्डों से हटकर 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' प्रभृति सिद्धान्तों पर आधारित एक ऐसी पूजा विधि का अनुसंधान

किया था, जिसमें उपासक अपने उपास्य देव के साथ आन्तर तथा बाह्य वरिवस्या के माध्यम से तादात्म्य स्थापित करता था। भूत–शुद्धि, प्राण–प्रतिष्ठा, न्यास और

मुद्रा की सहायता से स्वयं देवरूप होकर मूर्ति, पट मंत्र तथा मण्डल आदि में वह अपने आराध्य को प्रतिष्ठित करता था। बाह्य वरिवस्या की पूर्णता के लिए एक तरफ व्रत, उपवास, उत्सव, पर्व आदि का विधान था, तो दूसरी तरफ वह आन्तर वरिवस्या में कुण्डलिनी योग के माध्यम से मूलाधार से आज्ञाचक्र और तद्नन्तर सहस्रर–पर्यन्त की दिव्य यात्रा सम्पन्न कर चिदानन्द की सामरस्यमयी स्थिति को प्राप्त करता था। समय–समय पर वैदिक वर्णाश्रम के अविरोधी तान्त्रिक तत्वों का समावेश इतिहास, पुराण, स्मृति आदि शास्त्रों में होता रहा है। तन्त्रशास्त्र में स्त्रियों और शूद्रों को भी अधिकार मान्य है। आगम और तन्त्र शास्त्र में वेदविरोध ी और वेदों के अविरोधी दो प्रकार के विभाग मिलते हैं। वेद के अविरोधी तंत्रों में सच्छूद्रों को और वेद के विरोधी तंत्रों में 'दीक्षयेत् श्वपचानपि' के सिद्धान्त से दीक्षा में मानव मात्र को अधिकार मिला है।

शाक्त–तंत्रों में उच्चतम् आध्यात्मिक भूमि में प्रविष्ट स्थित प्रज्ञ साधकों के साथ ही साथ निम्न भूमि में स्थित अज्ञानी जनों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी अपनी योग्यता और रूचि के अनुरूप अलग अलग मार्ग उपदिष्ट हैं। महेश्वरानन्द ने 'महार्थमञ्जरी' में जाति के दुराग्रहों को पाश माना है। (महार्थमञ्जरी, पृ०१४५) और शाङ्कर वेदान्त की अपेक्षा तन्त्रों को सप्रमाण वरिष्ठ घोषित किया है। (महार्थमञ्जरी, पृ० १३०)। इसका कारण खोजने तथा दर्शानिक दृष्टि से आलोडन करने पर समझ में आता है कि हमारी संस्कृति में धर्मतत्व के साक्षात्कार की विधाओं में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति–मार्ग के भेद से दो प्रमुख धाराएं अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही

है। जिस धर्म के अनुष्ठान से इन्द्रियों को पूर्ण सन्तृप्त करते हुए आत्मा की समस्त शक्तियां विकसित और पूर्णरूप से परितृप्त होती है, वह प्रवृत्तिमार्ग कहलाता है

६

और जब ये पूर्णतः को प्राप्त हुई शक्तियां तृप्त होकर नित्य अचल शिवभाव के साथ एकाकार हो जाती हैं, तभी निवृत्ति भाव का आविर्भाव होता है।

प्रवृत्ति की पूर्णता में भोग शक्ति और भोग्य वस्तु दोनो ही विशुद्ध होकर पूर्णरूप से प्रकाशित होती है; परन्तु निवृत्ति में यह भोग शक्ति और भोग्य वस्तु दोनों ही अव्यक्त हो जाते हैं। योग की समस्त विधाएं इन्ही दोनों मार्गो पर अवलम्बित हैं। दर्शनिक दृष्टि से भी हम प ाते हैं कि हमारी संस्कृति में 'सत–तत्व' और 'चित–तत्व' की मान्यता भी पृथक–पृथक रूप में आरम्भ से ही रही है। वैदिक वाङ्मय में हम पाते हैं कि परमतत्व सत् है और उसका स्वरूप लक्षण है–सच्चिदानन्द। इस सत् को प्रतिष्ठित रखने हेतु इनके शास्त्रकारों को जगत् को मिथ्या आदि कहना पड़ा है। सृष्टि का कारणभूता शक्ति को अविद्या, माया, अनिर्वचनीय आदि उपाधियों दी गयी; किन्तु तान्त्रिक वाङ्मय में परमतत्व चित् अथवा चिति है और उसका स्वरूपलक्षण चिदानन्द है। इनकी दृष्टि में सृष्टि मिथ्या नहीं है। सृष्टि की कारणभूता शक्ति भी यहां अविद्या नहीं है; वरन् परम शिव की साक्षात् निजा शक्ति है। इनके सिद्धान्तों में शिव से लेकर धरणीपर्यन्त सर्वत्र सत् अनुस्यूत है। यद्यपि साधना की चरमावस्था में दोनों के परमतत्व का स्वरूप सच्चिदानन्द का ही है, तथापि निम्न भूमि या दोनों एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक सिद्ध होते हैं।

इन्ही प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप द्विविध मार्गो का अवलम्बन करते हुए तथा दार्शनिक दृष्टि से सत् और चिद्रूप दो परमतत्वों को केन्द्रीय भूत करके ही हमारा

आद्वैत चिन्तन आगे बढ़ा है। इनके मध्य हुए साम्य–वैषम्य, आकर्षण–विकर्षण और घात–प्रतिघात के अनेक उदाहरण नानाविध आख्यानोंपाख्यानों के माध्यमों से प्रचीन ग्रन्थों में हमें दृष्टिगोचर होते हैं। इन्ही कारणों से योग की अनेक विधाएं भी प्रचलित हुई। इसके अतिरिक्त असत्, सदसत् और अचित्, चिदचित को लक्ष्य बनाकर भी हमारा दार्शनिक चिन्तन हुआ है। सत् और चित् के आधार पर अद्वैतवादी, असत् के आधार पर द्वैतवादी बौद्धादि, अचित–पर आधारित चार्वकादि, सदसत् और चिदचित् पर आधारित भर्तृप्रपञ्च आदि तथा अन्यान्य द्वैताद्वैतवादी दार्शनिक प्रस्थान उद्भूत हुए हैं, जो अपनी अपनी दाढर्योक्तियों से कालान्तर में पल्लवित और पुष्पित हुए।

शाक्त–दृष्टि से परम सत्ता अखण्ड प्रकाश रूपा है अथवा चिद्रूपा है। यह सत्ता स्वातंत्रयमयी है। सत् ही चित् है एवं चित् ही सत् है। परमार्थ स्थिति में सत् आवाङ्मनसगोचर है, अभिव्यक्त की दृष्टि से वह चित् है।एवं रसास्वादन की दृष्टि से वहीं आनन्द है। परन्तु तांत्रिक दृष्टि से वह अव्यक्त सत् एवं अपने आप में अव्यक्त नहीं है; क्योंकि वही तो चित् है। इसीलिए वह परमतत्व अप्रमेय होकर भी स्वप्रकाशरूप है एवं अपनी स्वप्रकाशता के कारण स्वयं आनन्दरूप भी है। वह अपने पास अपना प्रकाश रखता है तथा अपने स्वरूपानन्द का स्वयं आस्वादन भी करता है। शाक्तों की इस दृष्टि से शैवों का कोई भी मतभेद नहीं है। दोनों में परमतत्वं का शक्ति–स्वातंत्रय समान रूप से मान्य है। इस स्वातंत्र्य के प्रभाव से परमतत्व एक और अद्वितीय रहते हुए भी अपने मूल सत्ता के आधार पर द्वितीय का स्फुरण कर सकता है। निःस्पन्द रहते हुए भी स्पन्दशील हो सकता है और आचल होते हुए भी आनायास रूप ये चलन युक्त हो सकता है। वह आरूप, आशब्द और अस्पर्श आदि

होकर भी सर्वरूप,सर्वशब्द और सर्वस्पर्श आदि है। यह स्वातंत्र्य शक्ति शैव और शक्त–तंत्रों का प्राण तत्व है।

हड़प्पा मोहन जोदड़ों से खुदायी से प्राप्त अवशेषों में हम शाक्त–तंत्रों के मूल उपादानों की खोज कर सकते हैं ऊर्ध्व–मेद्र एवं भगाङ्कित मुद्राएँ वहाँ उपलब्ध होती है। महाभारत के अनुशासन–पर्व पाशुपत मत की चर्चा के प्रसंग में उपलब्ध निम्नलिखित श्लोक में माहेश्वर पद शिव और शक्ति के सामरस्य का द्योतक है। यथा–

'न पद्माड्.का न चक्राड्.का न वज्राड्.का यतः प्रजाः।
लिडङ्काका च भागाङ्का च तस्मान्यमहेश्वरी प्रजाः'।।

(महाभारत, अनुशासन–पर्व–१४.२३३)

इसके अतिरिक्त सौत्रामणि याग का 'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्' छान्दोग्य उपनिषद् का 'नकाञ्चन परिहरेत्, तद् व्रंतम्' (२.१३.२), ऐतरेय आरण्यक का 'यदेतत् स्त्रियां लोहितं भव त्यग्नेस्तद्रूपम्, तस्मात्तस्मान्न बीभत्सेत। अथ यदेत्त् पुरूषे रेतो भवत्यादित्यस्य तद्रूपम, तस्मात्तस्मन्नि बीभत्सेत' (२.३.७)इत्यादि विधि वचन शाक्त तंत्रों में वर्णित सुरापान, दूतीयाग और अर्घ्यनिष्पादन जैसी विधियों की सूचना देते हैं इसी तरह से 'आकारों वै सर्वा वाक्' (ऐ, आ, २, ३, ६), 'आ इति ब्रम्ह तत्रागतमहम्' (ऐ, आ, २, ३, ८), 'छन्दः पुरूष इति यमवोचामक्षरसमाम्नाय एव। तस्यैतस्याकारो रसः (ऐ, आ, २, ३, 6) इत्यादि श्रुतिवाक्य भी शाक्ततंत्रों में वर्णित तथा व्याख्यात अनुत्तर आकार और मातृका के स्वरूप को सूचित करते हैं। 'शिवाम्बु रेतो रक्तं च नालाज्य विश्वनिर्गमः' आदि तंत्रालोक–विवेक (२६,२००) के इस वचन में वर्णित रत्नपंचक और कुण्डगोलकात्मक चरूद्रव्य का उपयोग बाम्ह व

आन्तर कायपूजा में शाक्त तंत्रों के साथ–साथ कौल, कापालिक तथा बौद्ध तंत्रों में भी समान रूप से व्यवहृत है।

वर्तमान समय में अभिनवगुप्त के परवर्ती साहित्य ही उपलब्ध तथा प्रकाशित हुए हैं। उनके पूर्ववर्ती साहित्य अधिकत्तर अनुपलब्ध हैं। यदि कुछ उपलब्ध हैं भी, तो वे प्रकाशित नहीं है, जिसके कारण शाक्त–तंत्रों का समुचित अनुशीलन अतिदुष्कर हो गया है। परवर्ती काल के साहित्यों में मारण–मोहन–वशीकरण–

उच्चाटन–स्तम्भन–विद्वेषण आदि कर्मकाण्डों की बहुलता है और शक्त तंत्रों का उदात्त दार्शनिक तथा गुहच साधनात्मक स्वरूप तिरोहित हो गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि उक्त मारण आदि आभिचार–क्रियाओं का उल्लेख अथर्ववेद में भी मिलता है; किन्तु वहाँ इन क्रियाओं को न तो तांत्रिक नाम दिया गया है और न तो वे शाक्त–तंत्रों के सिद्धान्तों के अनुरूप ही है। प्राचीन तंत्रों की उपलब्धि और प्रकाशन के बाद ही तंत्र शास्त्र की विविध शाखा–प्रशाखाओं के आविर्भाव–काल के विषय में कुछ निश्चित किया जा सकता है। अब तक जितनी सामग्री प्रकाशित हुई है, उससे शैव–शाक्त–तंत्रों का स्वरूप वैष्णव तथा सिद्वान्त शैवगमों की तुलना में बहुत भिन्न नहीं लगता।

वैरोचन–कृत प्रतिष्ठालक्षणसारसमुच्चय (२.१०८–१२८) में शिव के पांच मुखों से निर्गत शैव–तंत्रों के नाम गिनाये गये हैं। ऊर्ध्व ईशानमुख से 28 सिद्धान्ततंत्र, पूर्व तत्पुरूष–वक्त्र से २८ गारूड़ तंत्र, दक्षिण अघोर मुख से ३२ अथवा ६४ भैरवतंत्र, पश्चिम सद्योजात–मुख से २० भूततंत्र और उत्तर वामदेव–मुख से २४ वामतंत्रों के नाम इनकी सूची में उल्लिखित हैं। वहीं पर आगे (२.१३१–१३२) मान्त्रिक विभाग की पंक्तियों में कहा गया है कि सिद्धान्त–शास्त्र में चारों वर्णो के

अन्न का, गारूड़–तन्त्र में विष–भक्षण का, भैरव–तंत्र में एकत्र भोजन का, भूत–तन्त्र में शव–स्पर्श का और वामतन्त्र में कामामृत के पान का विधान है। शतरर्तनसंग्रहकार (पृ0–६) ने सिद्धान्त–शास्त्र को मुक्तिप्रद, गारूड़–तंत्र को सभी प्रकार के विषों का उपचारक, भैरव–तंत्रों को सर्वशत्रु क्षयकर, भूत तन्त्रों को भूत प्रेत–ग्रह आदि दोषों का निवारक तथा वामतंत्रों का सर्ववशीकरण में समर्थ बतलाया है।

मृगेन्द्रवृत्तिदीपिका (पृ. ७४) में अघोर शिवाचार्य ने मत्स्येन्द्र को कौल तंत्रों का प्रवर्तक कहा हे। अभिनवगुप्त ने भी तन्त्रालोक के आरम्भ में 'मच्छन्द विभु'

कहकर इनकी स्तुति की है। तन्त्रालोक के व्याख्या कार जयरथ ने इन्हें सकल कुलशास्त्र का अवतारक कहा है। डॉ0 प्रबोधचन्द्र बागची ने कौलज्ञाननिर्णय आदि ग्रन्थों को मत्स्येन्द्रनाथ की कृतिमाना है। अभिनवगुप्त से पूर्व के कुल–कौलाचार्यो की एक लम्बी परम्परा भी मिलती है। तन्त्रालोक (३६.११–१४) में आमर्दक, शंखमठिका तथात्र्यम्कमठिका के साथ ही साथ त्र्यम्बक की दुहिता के अधिकार क्षेत्र में परिगठित 'अर्धमठिका' का भी उल्लेख मिलता है, जो कामरूप पीठ से सम्बद्ध है। बौद्धों के गुह्यसमाजतंत्र में कुलतंत्र वर्णित है। तन्त्रालोक (२६.३६) ये यह भी परिज्ञात होता है कि मत्स्येद्रनाथ ने स्वोपज्ञात ज्ञान को छः राजपुत्रों में बांट दिया था। यहाँ राजपुत्र शाक्त तंत्रों का साम्प्रदायिक एवं रहस्यमय शब्द है। स्थिति चक्र की बाईस कलाओं के अन्तर्गत हृदयस्थ षट्कोणों में स्थित बारह कलाओं को 'राजपुत्र' कहा जाता है। साधिकार और निरधिकार भेद से इनके दो विभाग किये गये हैं। बुद्धि और पांच कर्मेन्द्रियाँ साधिकार तथा मन और पांच ज्ञानेन्द्रियां निराधिकार राजपुत्र हैं। (तंत्रालोक–२६.२६–४२) इन राजपुत्रों की परम्परा में आनन्द, आबलि, बोधि,

प्रभू, पाद और योगी नाम से परम्पराएं चली इनमें से आनन्द, और योगी का शाक्त परम्परा में तथा बोधि, प्रभु और पाद का बौद्ध परम्परा में उल्लेख मिलता है।

तंत्रालोक–विवेक (४.१७२) में जयरथ ने आद्य वर्ण आकार की चार कालाओं के रूप में जयाआदि चार शक्तियों की व्याख्या की है। शुद्ध परब्रम्ह ही अनुत्तर आदि वर्ण आकार का रूप धारण करता है। इसकी परा नामक शक्तियों के नाम अम्बिका, ज्येष्ठा, रौद्री, शान्ति तथा वामा है में परम्परा शक्तियों में शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति हैं। जया आदि गृह्यशक्तियाँ अपरा कहलाती हैं। कौलज्ञाननिर्णय में प्रकाशित ज्ञानकारिका (३.१७–१८) में कहा गया है कि जया, विजया, अजिता और अपराजिता नामक चार शक्तियों से सम्पन्न मातृका–स्थान ही चत्वर कहलाता है। योग्वासिष्ठ में इन चार नामों के साथ सिद्धा, रक्ता, अलम्बुषा और उत्पला आदि आठ देवियों को मातृकाओं में श्रेष्ठ माना गया है। वहाँ पर इन आठ मातृकाओं को अष्ट ऐश्वर्यों से युक्त, रौद्र, स्वभाव वाली और वामस्त्रोत से निर्गत तुम्बुरू नामक रूद्र के आश्रित बतलाया गया है।

योगवासिष्ठ के टीकाकार ने जया को लक्ष्मी की सखी बतलाया है। पंचरात्र आगम की जयाख्य–संहिता (६.७७) में लक्ष्मी, कीर्ति, जया और माया नामक चार शक्तियों का उल्लेख है। वहीं (२७.९९–१५०) पर जया की सखियों में जयन्ती, विजया, अपराजिता और सिद्धा के नाम परिगणित है। नेत्रतन्त्र (१३.८) में चारों दिशाओं की पूज्य देवियों में जया, लक्ष्मी, कीर्ति और माया के नाम मिलते हैं। लघुस्तक में लक्ष्मी और जया की एक साथ स्तुति की गयी है। महाभारत के विराट पर्व (६.१६) में जया और विजया को युद्ध में विजय दिलाने वाली बतलाया गया है और भीष्मपर्व (२३.६) में उनकी स्तुति कात्यायनी और कराली के साथ की गयी है।

देवीभागवत (७.३०.६२) में जया की स्थिति वराहशैल पर बतलायी गयी है। षोड्श मातृकाओं में भी जया परिगणित है।

शाक्त–तंत्रों के अनुयायी चिद्रूपा शक्ति की ही परम तत्व के रूप में उपासना करते हैं। इनका परमतत्व संवित्स्वरूपा चिति है। भगवती संवित् ही अपने भीतर विद्यमान विश्व को बाहर प्रकाशित करती है। इनके दर्शनों में मुख्यतया क्रमदर्शन का ही समावेश माना जाता है। कालिका–क्रम में विमर्श को और कालीकुल में परबोध को परमा–शक्ति कहा गया है। परा–मत में विमर्श को सर्व–सक्षम माना गया है। वृहस्पतिपाद ने इसे चित्स्वरूपिणी माना है। यहाँ विमर्श को शक्ति के अतिरिक्त परतत्व भी बतलाया गया है। क्रमदर्शन में संवित्स्वरूपिणी काली को परम तत्व के रूप में और त्रिपुरासम्प्रदाय में त्रिपुरा नाम की परासंवित् परब्रम्ह–स्थानीय है, ऐसा कहा गया है। त्रैपुर तंत्रों में गामा आदि चार शक्तियों की तथा परा आदि चार वाणियों की स्थिति मध्य बिन्दु एवं त्रिकोण में मानी गयी है। नित्या–तंत्रों में कुल को शक्ति कहते है। जयाख्यसंहिता में वैष्णवी को संवित्स्वरूपा कहा गया है।

मालिनीतंत्र में शाङ्करी शक्ति और मालिनीविजय तथा मन्त्रवार्तिक में इच्छा–ज्ञान–क्रिया के रूप में इनका त्रैविध्य सूचित है। परासूक्त में इच्छाशक्ति का और ज्ञान सम्बोध में ज्ञानशक्ति का स्वरूप वर्णित है। पूजारहस्य में बोध भैरव स्वरूप स्पन्दात्मक देवाधिदेव की औनमुख्य, इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक चार शक्तियाँ वर्णित हैं। क्रमदर्शन में द्वादश, त्रयोदश, षोडश और सप्तदशविध कालियाँ वर्णित है। वामकेशवरतन्त्र में षेऽश नित्याओं का वर्णन मिलता है। लाद्यादि–शास्त्र में सप्तदशी और त्रीशिकावृत्ति में अष्टादशी कला प्रदर्शित है। तंत्रसद्भाव और सर्ववीर भट्टारक जैसे ग्रन्थों में डाकिनी, डामरी, शाबरी आदि विविध शक्तियों का वर्णन है। भगवद्गीता और प्रत्याभिज्ञाकारिका में स्मृति, ज्ञान और अपोहन शक्तियों

की चर्चा की गयी है। महार्थमञ्जरी की व्याख्या में भी इनका स्वरूप स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार से अतिसंक्षिप्त रूप में नित्या, त्रिक, क्रम, कुल आदि अद्वैतवादी शाक्त मतों में अंगीकृत शक्तिपारम्यवाद की सूचना मेरे द्वारा प्रस्तुत की गयी। इनके अतिरिक्त वर्तमान में प्रचलित महाविद्यानुसारी देवियों अर्थात् शक्तियों का भी स्वरूप हमारे सामने है।

भगवान बुद्ध और महावीर के प्रादुर्भाव के समय और उनके परवर्तीकाल में भारतवर्ष में नाना प्रकार की दृष्टियाँ प्रचलित हो गयी थीं। इनमें से कुछ तो वेदों का अनुवर्तन करती थीं, कुछ वेद–विरूद्ध थीं तो अन्य अपना स्वतंत्र स्थान मानती थी। आदि शंकराचार्य ने इन दृष्टियों में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रभावी उपाय प्रस्तुत किया। आचार्य जी ने एक ओर प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रम्हसूत्र और भगवद्गीता) के माध्यम से प्राचीन वर्णाश्रम, की व्यवस्था को अक्षुण्ण रखा, तो दूसरी ओर स्मार्त परम्परा को भी विकसित किया। इसके लिए इन्होने प्रपञ्चसम्र और सौन्दर्यलहरी जैसे श्रेष्ठतम् ग्रन्थों की रचना भी की। स्मार्तपरम्परा के अन्तर्गत इन्होंने शिव–शक्ति–विष्णु–गणपति–सूर्य–स्कन्द आदि सम्प्रदायों की तांत्रिक उपासना–विधियों को मणिवत् एक सूत्र में गूंथ दिया।

इतना सब करते हुए भी भगवत्पाद ने ब्रम्हसूत्र के तर्क पाद में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, बौद्ध एवं जैनदर्शनों के साथ ही साथ पाशुपत और पांञ्चरात्र मतों का खण्डन कर इन्हे अवैदिक और अनौपनिषदिक बतलाया तथा प्रस्थानत्रयी का प्रामाण्य सुरक्षित रखा। इनके अतुल प्रभाव से भारतीय दर्शन की आस्तिक धारा में स्वतंत्र चिंतन के स्थान पर प्रस्थानत्रयी और स्मार्तधर्म की परिधि के अन्दर ही रहकर चिन्तन करने का प्रचलन बढ़ा। परिणामस्वरूप आदि शंकराचार्य के परवर्ती चिन्तकों के विचार, चाहे वे किसी भी आस्तिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध क्यों न रहे हों,

प्रायः प्रभावित होने लगे। अपने सम्प्रदाय की वेदानुवर्तिता को सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र ग्रन्थ ही नहीं लिखे गये, प्रत्युत महाभारत और पुराणों में अपने मत के सम्पोषक प्रकरणों को भी जोड़ा गया। इसी क्रम में स्वतंत्र उपपुराण और नये उपनिषद् भी निर्मित हुए।

तांत्रिक सम्प्रदाय तथा उनके वाङ्मय की इस प्रभाव से अपने को पूरी तरह से मुक्त नहीं रख सके। नवीन साहित्यों की सहायता से उनमें भी वैदिकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। आगमों के सम्बन्ध में दो प्रकार की दृष्टियां प्रकाश में आ गयी। इनमें से एक दृष्टि के अनुसार आगमों का स्वतः प्रामाण्य है, जैसा कि अभिनवगुप्त आदि आचार्यों का मानना है।

'आगमस्तु आनवच्छिन्न प्रकाशात्मक माहेश्वर विमर्श परमार्थः'।

अर्थात् जिस तरह प्रदीप को प्रदीपान्तर की आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह से आगमों को भी प्रमाणान्तर की अपेक्षा नहीं होती। दूसरी परम्परा में आगे चलकर निगमागम—सम्मत मार्ग पुष्ट हुआ। इस प्रकार से वैदिकीकरण की यह प्रक्रिया आदि शंकराचार्य से प्रारम्भ होकर आप्पयदीक्षित से होती हुई भास्कर रम्य तक पूर्ण हुई है। अप्पयदीक्षित ने शिव को अवैदिक कहने की प्रथा का सशकत परिहार किया तथा भास्कर राय ने चतुर्दश विद्याओं में परिगणित धर्मशास्त्र में तंत्रों का अन्तर्भाव घोषित करते हुए उनकी वेदमूलकता को सिद्ध किया—

'तंन्त्राण्मं धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावः' (वखिस्याहस्यप्रकाश,पृ0 ६)

इन दोनों ही महापुरूषों की गणना आद्य शंकराचार्य की परम्परा के गृहस्थ शिष्यों की श्रेणी में होती है। अप्पयदीक्षित ने शिवोपासना और भास्कर राय ने शक्त्युपासना विषयक अति—मूल्यवान वाङ्मयों की रचना भी की है। यहां पर प्रसंगतः निगमागम—सम्बन्ध का विवेचन भी समीचीन प्रतीत हो रहा है।

निगम शब्द वेद का पर्याय है। यह वेद ब्रम्ह की अविच्छिन्न परम्परा से प्राप्त शब्दराशि है। यह शब्दराशि यंत्र और ब्रम्हणरूप दो भागों में हैं, जिसे निगम कहते हैं। निसक्त शास्त्र में यास्काचार्य ने अनेक स्थलों पर 'इत्यदि निगमों भवति' कहकर निगम पद से वेदमंत्रों का ग्रहण किया है। पाणिनि भी निगम शब्द का वेदपरक अर्थ करते हैं। भर्तृहरि के वाक्यपदीय में अनेक स्थलों पर आगमशब्द वेदार्थ में प्रयुक्त है। यथा–

'न चागमादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते।

ऋषीणीमपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम्।। (वा.प. १.३०)

मनुस्मृति (४.१६) और उसकी कुल्लूकभट्ट–कृत टीका में निगमों को वेदार्थाव बोधक कहा गया है।–

'तथा पर्यायकथनेन वेदार्थाभावबोधकान्निगमॉश्चग्रन्थान्नित्यां पर्यालोचयेत्'

गुरू–शिष्य–परम्परा से आयातित नैगमिक ज्ञान ही वैदिक श्रुति कहलाती है।

निगम की एक अन्य परिभाषा १५.१६वी शती के सर्वानन्दनाथकृत सर्वोल्लासतन्त्र में भी मिलती है।

'निर्गतं शांकरिवक्त्राद् गतञ्च गिरिशानने।

मंत श्रीवासुदेवस्य तस्मानिगम उच्यते।। (१.१३)

उसी ग्रन्थ के आगे श्लोकों में निगम के पांच भेद भी बतलाये गये हैं–कल्पसार, कल्पतत्तव, कल्पद्रुम, कल्पलता तथा कल्पानन्द।

वैष्णवागमों की वैखानस शाखा निगम और आगम के अन्तःसम्बन्धों पर प्रकाश डालने वाली तथा उनकी श्रंखला को जोड़ने वाली पहली कड़ी है। वैदिक वर्णश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत तृतीय आश्रम वानप्रस्थ से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वैखानस वैष्णवग्रन्थ अपने लिए आगम शब्द का प्रयोग नहीं करते। इन ग्रन्थों का

भागवच्छास्त्र के नाम से उल्लेख मिलता है। 'शास्त्रपरिग्रहः सर्वेषां वैखानसानाम्ः 'त्रिविधों मख उच्यते' श्रीमदभागवत (११.२७.७) के इस वचन की सुबोधिनी व्याख्या में व्याख्याकार बल्लभ ने वैदिक पद का वैखानस, तांत्रिक पद का पाञ्चरात्र तथा मिश्र पद से नाम संकीर्तन आदि कहा है। व्याख्याकार वीरराघव ने 'उभाभ्याम् अर्थाद्वेदपाञ्चरात्राभ्याम्' कहकर वेदपद से वैखानस सम्प्रदाय का निर्देश किया है। विष्णु पुराण के श्लोक 'वेदान्तवेदिभिर्विष्णुः प्रोच्यते' (५.१७.१५) की व्याख्या में श्रीनिवास मखी ने वेदान्तवेदिन् का अर्थ वैखानस किया है। आभूर्ति आराधक, अर्थात् केवल वैदिक याग सम्पादक और सभूर्त आराधक, अर्थात् विष्णु मूर्ति की आराधना में संलग्न– इस भेद से मखी ने वैखानस के दो भेदों का भी निर्देश किया है। वैदिक श्रौत प्रक्रियाका अभूर्ताराधन क्रम ही वैखानस सम्प्रदाय में समूर्ताराधन के रूप में प्रवर्तित और व्यवहृत हुआ हैं इस प्रकार से वैखानसों का वैदिकत्व और भी पुष्ट होता है। सीतोपनिषद् (५–६) में इसे मतविशेष कहा गया है। इस उपनिषद के अनुसार अन्य सभी सूत्र तथा स्मृति आदि वैखानस–सूत्र के अनुगामी है। इस प्रसंग में आनन्द–संहिता से भी दो वचन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैंः–

'वैखानस पाञ्चरात्रं वैदिकं तान्त्रिकं क्रमात्'। (५.१३)

तथा

'निगमस्तान्त्रिको मिश्रस्त्रिविधः प्रोक्त आगमः

निगमो विखनः प्रोक्तो मिश्रो भागवतः स्मृतः।।

चतुःसिद्धान्तसहितः पाञ्चरात्रस्तु तान्त्रिकः'।। (८.२३–२४)

वैखानास एवं पञ्चरात्र साहित्यों के अनुशीलन से बोध होता है कि वैखानस–प्रक्रिया मंत्रों और पञ्चरात्र–प्रक्रिया में वैदिक मंत्रों के साथ ही अनेक आगमिक एवं तान्त्रिक मंत्रों का भी प्रयोग किया गया है। १६वी शती के काशीनाथ

भट्ट ने अपने लघु ग्रन्थ 'वैदिकतान्त्रिकाधिकारनिर्णयः' में समूचेवाड्.मय को चार भागों में विभक्त माना है– शुद्ध–वैदिक, तान्त्रिक–वैदिक, शुद्ध–तांत्रिक तथा वैदिक–तांत्रिक। यहाँ शुद्ध–वैदिक विभाग में सूंत संहिता, व्याकरण, मीमांसा, ब्रह्मसूत्र तथा उसके शांकरभाष्य को रखा गया है। तांत्रिक वैदिक विभाग में शिव राघव–संवाद रूप वायवीय संहिता, न्याय, वैशेषिक, सांख्य तथा पतंजलिका योगशास्त्र है। शुद्धतान्त्रिक विभाग में एक मात्र पशुपतशास्त्र को रखा गया है। वैनिक तन्त्रिक विभाग में शैवसिद्धान्त, पाञ्चरात्र और भागवत आदि शास्त्र रखे गये हैं। इन्ही तांत्रिक–वैदिक और वैदिक–तांत्रिक विभागों के अन्तर्गत तथा इनसे अनुप्राणित पौराणिक साहित्यों में ही निगमागमों का सुन्दर समन्वय हुआ है, जिनमें हम उनके आन्तर सम्बन्धों की खोज एवं उनका विश्लेषण कर सकते हैं; क्योंकि इन्ही वाड्.मयों में निगमागमों के अन्तःसम्बन्धों के साक्ष्य एवं प्रमाण उपस्थापित हैं। इनके अतिरिक्त इस प्रसंग तमें संतो की परम्पराएं भी परीक्षणीय है।

शक्ति की उपासना का क्रमिक इतिहास तथा शाक्त सिद्धान्त का दार्शनिक रूप और उसका क्रमिक विवेचन–

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशाक्त्या

निःशेषदेवगणशक्ति समूहमूर्त्या।

तामम्बिकामखिलदेवमहर्षि पूज्यां

भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभाणि सानः।।

(श्रीदुर्गासप्तशती–४.३)

दर्शन शब्द का अर्थ आँख भी है तथा देखना भी। अथ च दर्शन शब्द का अर्थ वेदान्त प्रधान षड्दर्शन भी है। इन छः दर्शनों का 'दर्शन' नामकरण प्रायः इसी हेतु से किया गया होगा कि ये संसार के स्वरूप को, तत्व को छः स्थानों से, छः

दृष्टियों से तथा छः प्रकार से देखते हैं– 'प्रस्थानभेदादर्शन भेदः' और इनके बल से, विशेषतः वेदान्त व अध्यात्म शास्त्र के बल से अन्य समस्त शास्त्रों के हृदय को, मर्म को जान लेना पहचान लेना सम्भव हो जाता है, मानो मनुष्य की नयी आंख हो जाती है, जिससे वह सब शास्त्रों, सम्प्रदायों, मार्गों पन्थों तथा धर्मों के सार को सत्य अंश को, तात्विक अंश को देखने लगा जाता है।

'मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा'। (सप्तशती)

इस दृष्टि से देखने पर ऐसा ज्ञात होता है कि द्वन्द्वमय संसार के, जीवन के जैसे दो ही कारण हैं, दो ही रूप हैं, उसी प्रकार उपासना के भी दो ही प्रकार हैं–एकरस, एकरूप, सदा केवल परमात्मा की उपासना तथा अनन्त रसवती, अनन्रूपिणी, सतत परिणामिनी माया की उपासना।

शक्ति शक्तिमदुत्थं हि शाक्त शैवमिंद जगत्।

स्त्रीपुंसप्रभवं विश्वं स्त्रीपुंसात्मकमेव च।।

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा मायेति कथ्यते।

पुरूषः परमेशानः प्रकृतिः परमेश्वरी (शिवपुराण)

'शेते सर्वशरीरेषु इति शिवः। या मा, या नास्ति किन्तु प्रति

भासते या माया। या अविद्या, भोगदा। मा न इति न इति

सर्वमूर्तरूप निषेधिनी विद्या, मोक्षदां।

या मुक्ति हेतु रविचिन्त्य महाव्रता त्व–

मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्व सारैः।

मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्त दोषै–

र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि।। (सप्तशती)

नींद में सोकर सुस्ताया हुआ मुनष्य जागना चाहता है। जागते—जागते, विविध ा प्रकार के कर्म करते—करते तथा भोगों को भोगते भोगते थका हुआ मनुष्य सोना चाहता है। भोग—मोक्ष, अभ्युदय—निःश्रेयस, काम—निर्वाण शक्ति—शिव, यही पुरूषार्थ तथा उपासना का द्वन्द्व है।

आत्मज्ञान रूपवाली पराविद्या की उपासना शिव की उपासना है। चाहे भोग साधक ज्ञान रूप वाली विद्या कहें या अविद्या कहें 'द्वेविद्ये वेदितव्ये पराम चैवापरा च' की अपरा विद्या की उपासना शक्ति की उपसाना है। बुभुक्षु प्रवृत्युन्मुख संसार प्राग्भार व्युत्थान—चित्त की इसमें रूचि होती है। मुमुक्षु निवृच्युन्मुख कैवल्यप्रभार निरोधचित्र की दूसरी में रूचि होती है 'इहैवच निजं राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि' महाराज सुरभ ने देवी से यह वर मांगा था समाधि नामक वैश्य ने वर मांगा कि 'ममेत्यहमिति ज्ञानं सङ्गविच्युतिकारकम्'। यह कथानक मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत श्री दुर्गासप्तशती में प्रसिद्ध है।

यह द्वन्द्वता— हां भी— नहीं भी, हंसना भी रोना भी, जागना भी सोना भी, सटना भी, हटना भी, चाहना भी, डाहना भी, शरीर ओढ़ना भी छोड़ना भी पुरूष की प्रकृति है। प्रकृति पुरूष से भिन्न नहीं है। पुरूष की प्रकृति परमात्मा का स्वभाव। ब्रम्ह की माया। शिव की शक्ति। ईश्वर भूत जीव और जीवभूत ईश्वर की इच्छा।

तस्य चेच्छास्म्य्हं दैत्य सृजामि सकलं जगत्।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा।।

(देवी भागवत्—३.१६)

सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः।।

(देवी भागवत—१.८.४०)

केचित्तां तय इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे।

ज्ञानं मायां प्रधानञ्च प्रकतिं शक्तिमप्यजाम्।।

विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्र विशारदाः।

अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थ चिन्तकाः।।

(देवी भागवत– ७.३२, ६.१०)

'इच्छा शाक्तिरूमा कुमार' (शिवसूत्र विमर्शिनी)। इच्छा ही शक्ति है, जबकि वह अन्य बलवन्तर इच्छा से व्याहत न हो। जब व्याहत हो जाय, तब वही अशक्ति हैं। परन्तु व्याघात होने से क्रोध का रूप धारण करके वह अशक्ति की काल पाकर नयी शक्ति बन जाती है।

पीडयन्ते दुर्बला यत्र तत्र रूद्रः प्रजायते।

प्रह्लादः सहतां क्लेशान् नृसिंहः केन वार्यते।।

'सुखानुशयी रागः', दुःखनुशयी द्वेषः'। ग्रहणेच्छा, आकर्षणेच्छा, उपासनेच्छा का नाम राग या काम है। त्यागेच्छा, अपकर्षणेच्छा, अपासनेच्छा का नाम द्वेष या क्रोध है। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के सुन्दोपसुन्दवत् परस्पर संहार से परस्पर निषेद्ा–प्रतिषेध से न इति न इति करके जीवन तुला के दोनों सुख–दुःख रूपी पल्लों के बराबर होते रहने से और सार्विक पारमार्थिक दृष्टि से सर्वकाल या कालाभाव में सदाबराबर बने रहने से ही ब्रम्ह परमात्मा की निष्क्रियता, अपरिणामिता, एकरसता, अखण्डता, निरञ्जनता, निर्विशेषता, शिव की शिवता, शान्तता, शायिता, सुषुप्तता तथा तुरीयता सिद्ध होती हैं।

इसी राम–द्वेषरूपिणी महाशक्ति इच्छाशक्ति नामक अमूर्त्त आध्यात्मिक तत्व के पौराणिक, तांत्रिक, साम्प्रदायिक मूर्त्त रूप गौरी–काली, भवानी–भैरवी, अन्नपूर्णा–दुर्गा तथा उमा–चण्डी आदि हैं। इन्ही के पुरूषाकार शिव–रूद्र, भवान्हर, शर–उग्र तथा

ईशान–भीम आदि हैं। 'जाकी रही भावना जैसी। प्रभू मूरति देखी तिन तैसी'।। अपने अभीष्ट के अनुसार भक्त लोग देवता की मूर्ति का संकल्प कर लेते हैं–'मननात्त्रायते इति मन्त्रः, मन्त्रमूर्ति देवता' तथा उनसे उनके अभीष्ट सुख एवं तदनुषक्त दुःख भी प्राप्त होते हैं। तैंतीस किंवा अनन्तकोटि मुनष्यों की तैंतीस किंवा अनन्त कोटि इच्छा के अनुसार तैंतीस किंवा अनन्त कोटि देवता भी है। मुहम्मद पैगम्बर ने भी ठीक हीं कहा है कि जितने आदमी हैं, उतने ही रास्ते खुदा तक पहुंचने के हैं। सब जीव, सब देह, सब उपासक, सब उपास्य, सब भक्त, सब इष्ट, एक ही परम देवता, सर्वव्यापक, प्रेरक परमात्मा की संकल्प शक्ति भावना शक्ति, इच्छाशक्ति से कल्पित, भावित, प्राणित हो रहे हैं, सभी उसी के रूप हैं। 'रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव'।

यह परमात्मा की माया–रूपिणी इच्छाशक्ति ही उस मूल पुरुष की मूल प्रकृति है। परन्तु इसके तीन अंग हैं। हृदयस्थानी तो स्वयं इच्छाशक्ति है, शिरःस्थानी ज्ञानशक्ति है, हस्तपादस्थानी क्रियाशक्ति है।

मूलप्रकृति तिरूपिण्याः संविदों जगदुद्भवे।
प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्धयधिदैवतम्।।
दुर्गा तु बुद्धचधिष्ठात्री राधा प्राणेश्वरी मता।
राध्नोतिं सकलान् कामॉस्तस्माद्राधेति कीर्तिता।।
सर्वबुद्धिचधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी।
दुर्ग संकटहन्त्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि।। (देवीभागवत ९.५०)

इच्छा की पूर्ति करने का उपाय बुद्धि, ज्ञान शक्ति, ज्ञानेन्द्रिय–व्यापिनी बताती है और क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति, कर्मेन्द्रियव्यापिनी उस उपाय को निष्पन्न करती है। एकही संवित –शक्ति, चेतना–शक्ति, चित्–शक्ति की तीन कला, तीन मुख,

व्यवहार में तीन रूप, व्यावहारिक दृष्टि से दिखायी पड़ते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से निष्क्रिय, निश्चल, निःस्पन्द होकर तीनों एकाकार संवित् के आधार में अव्यक्त ब्रह्म, परमात्मा, परम पुरुष में सदा प्रलीन, निर्वाण हैं।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।

नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः।।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेत द्व्याप्य स्थिता जगत्।

नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः।। (श्री दुर्गासप्तशती)

उसी परम प्रकृति की तीन आदिम विकृतियां यह तीनों हैं, जिनके न्यायशास्त्रोक्त आध्यात्मिक नाम ज्ञान–शक्ति, इच्छा–शक्ति तथा क्रियाशक्ति हैं। इन्ही के मूर्त्ताकारों प्रतिभाओं के पौराणिक नाम महासरस्वती, महाकाली तथा महालक्ष्मी हैं। इन्ही के तांत्रिक नाम हैं–ऐं, क्लीं तथा ह्रीं (श्री)। इन्ही के पुरूषाकारों के पौराणिक नाम हैं। विष्णु, महेश तथा ब्रह्मा। इन्ही के अधिदैविक सांख्ययोग में प्रख्यात नाम है।– सत्व, तमस् तथा रजस। जैसे इच्छा के दो प्रतिद्वन्द्वी रूप हैं–काम तथा क्रोध, उसी प्रकार ज्ञान के तथ्य तथा मिथ्या और क्रिया के भी दो रूप हैं– 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्'।

'ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिसृणां व्यष्टीनां महासरस्वती–महाकाली–महालक्ष्मीरीति प्रवृत्ति निमित्त वैलक्षण्येन नाम रूपान्तराणि। ....

..............सच्चिदानन्दात्मक परब्रह्मधर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम्।

महासरस्वति चिते महालक्ष्मि सदात्मिके।

महाकाल्यानन्दरूपे तत्त्वज्ञानसिद्धये।।

अनुसन्दध्यमहे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे।।

महालक्ष्मीर्ब्रह्मत्वम्, महाकाली रूद्रत्वम्, महासरस्वती विष्णुत्वं प्रपेदे'

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सतवाधिको भवेत्।

तमोगुणाधिको रूद्रः सर्वकारणरूप धृश्क्।।

स्थूल देहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेही हरिःस्मृतः।

रुद्रस्तु कारणों देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि।।

(देवी भागवत १२,८, ७२,–७३)

'यास्य प्रथमारेखा सा क्रियाशक्तिः यास्य द्वितीयारेखा सा इच्छाशक्तिः। यास्य तशतीया रेखा सा ज्ञान शक्तिः'।

(कालाग्निरूद्रोपनिषद्)

शक्तिः स्वाभाविकी तस्य विद्या विश्वविलक्षणा।

एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा।।

अनन्ताः शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादयः।

इच्छाशक्तिर्महेशस्य नित्या कार्यनियामिका।।

ज्ञानशक्तिवस्तु तत्कार्य कारणं करणं तथा।

प्रयोजनं च तत्वेन बुद्धिरूपाऽध्यवस्यति।।

यथेप्सितं क्रियाशक्तिर्यथाऽध्यसितं जगत्।

कल्पयत्यखिलं कार्यं क्षणात् संकल्परूपिणी।।

(शिवपुराण, वायुसंहिता, उत्तरखण्ड, अ0 ७–८)

'अनन्ताः शक्तयस्तस्य'। देवीभागवत्, श्री दुर्गासप्तशती में तथा अन्य पुराणों एवं तंत्रशास्त्र व ललित सहस्रनाम प्रभृति स्तोत्रों में इनका पर्याप्त विवरण उपलब्ध होता है, मूर्त्त रूपों में तथा अमूर्त आध्यात्मिक भावों के रूपों में भी। यथा–

सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ति राजसस्य क्रियात्मिका।

द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव।।

(देवी भागवत– ३.७.२६)

परमात्मा की इच्छा–शक्तियों का ही रूपान्तर अनन्त द्रव्यशक्तियां हैं। इनको अथ–शक्ति भी कहा जाता है। यथा–

ऋषिरेव हि जानाति द्रव्यसंयोगजान् गुणान्।

यह इच्छा–शक्ति अनन्त पदार्थों, द्रव्यों, देहों, योनियों तथा भूतग्रामों के रूप का धारण तथा मारण करती रहती हैं।

मन्वानि श्रृणवानि पश्यानि जिघ्राणि अभिव्याहराणि ....

.... इति आत्मा .... मनः श्रोत्रं चक्षुः घ्राणं वाक् ..... आभवन्।

'एकोऽहं बहुस्याम्' इस इच्छा से असंख्य ब्रह्माण्डों में से एक इस पृथिवी नामक ब्रह्माण्ड, ब्रह्म के गोल अण्ड, भूगोल पर चैरासी लाख स्थावर–जंगम चतुर्विध भूतग्राम में राशीकृत द्रव्यात्मक रूप धारण कर लिये। प्रत्येक में एक विशेष शक्ति दूसरों के पोषण या शोषण की, रंजन या द्वेषण की है। बहिर्मुखी वृत्ति वाले पाश्चात्य वैज्ञानिक अधिकतर इन्ही का पता लगाने में तथा इनसे काम लेने में इन्द्रिय–सुख की वृद्धि में ज्ञान शक्ति तथा क्रिया–शक्ति का उपयोग करते हैं। ओषधिजा सिद्धियों के साधन में व्यस्त हैं। यहाँ शक्ति देवी की पूजा 'वर्शिप आफ पावर ऑफ माइट' (Worship of Power of might) बहुत जोर पर है।

भारतवर्ष में अपने को ऋषि–सन्तान मानने तथा कहने वाले 'जन्मौषाधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः नामक पंचविध सिद्धियों की चर्चा तो करते हैं; परन्तु उनके साधन में पुण्यक्षय तथा पापोदय से पापसारभूत, पाप की एकमात्र जननी भेदबुद्धि, स्वार्थबुद्धि, दुर्बुद्धि के कारण नितराम, आशक्त हो रहे हैं। इसीलिए हर तरफ से तिरस्कार ही प्राप्त करते हैं। कहते हैं कि हम शिवदेव की पूजा 'वर्शिप

ऑफ पीस' (Worship of peace), शान्ति की, प्रशम की पूजा करते हैं। परन्तु न सच्ची शिव की तथा न ही सच्ची शक्ति की उपासना करते हैं। सच्ची उपासना यदि शक्तिमान् शिव की, की जाये, तो उत्तमा शक्ति अलग रह ही नहीं सकती। जैसा कि कहा गया है–

खुदा को पाया तो क्या न पाया खुदा मिला तो सभी मिला है।

जरा तू सोचे मिला जो खालिक तो उसे खिल्कत कभी जुदा है।

रूद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किक्ता।

शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्।।

(देवीभागवात् ३.६.१६)

रूद्रहीन, विष्णुहीन कहकर किसी का तिरस्कार नहीं किया जाता। शक्ति हीन–अशक्त, क्लीव–नपुंसक, निकम्मा–किसी काम का नहीं, 'किं तेन जनस्य जन्तुना न जात हार्देन न विद्विषादरः ऐसा कहकर अनादर–अवमान किया जाता है।

'नायमात्या बलहीनेन लभ्यः' यह आत्मा, आत्मराज्य, बलहीन–निर्बल–दुर्बल को नहीं प्राप्त होता। बल तपस्या से होता है। तपस्या के बल से प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की है। तपस्या का अर्थ शरीर सुख का त्याग मात्र ही नहीं है, अपितु किसी ऊंचे अच्छे परार्थी उद्‌देश्य से, दृढ़ सकल्प से सदैव भीतर तपते भी रहना, उसके साधन में भी दत्तचित्त रहना है। केवल ग्रन्थ पढ़ते रहना, केवल अच्छे ज्ञान का ही संग्रह करते रहना, यह पर्याप्त नहीं है। उसके साथ ही साथ तदनुसारिणी सदिच्छा और सत्क्रिया का भी होना परम आवश्यक है। यथा–

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूमिकर्मसु।

भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः।।

'सर्वभूतहिते रताः' यह शब्द दो बार भगवद्गीता में आया है। 'तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुङ्.के स्तेन एव सः' यह भी दो बार आया है। श्रीमद्भावत महापुराण में वेन को जिस समय ऋषियों ने दण्ड दिया है, उस कथा में–

ब्राह्मणः स्मदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः।

स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिनाभाण्डात् पयो यथा।।

दीन–दुर्बलों का अनुचित पीड़न तथा ताड़न देखता हुआ जो ब्राह्मण समदृष्टि तथा शान्त अपने को मानकर एवं कहकर, वास्तव में अपना आराम बचाने के लिए उपेक्षा कर जाता है, उसके द्वारा पूर्वार्जित ब्रह्मज्ञान भी फूटे बर्तन में से पानी की तरह चू जाता है। विद्यारूपिणी शक्ति के और ऐसी शक्ति वाले शक्तिमान् शिव के सच्चे उपासक वे हीं हैं, जो मानसा, वाचा, कर्मणा सर्वभूतहिते रत हैं। जैसा कि कहा गया है–

त एव मां प्राप्नुवन्ति (ये) सर्वभूतहिते रताः।।

क्योंकि मै तो सर्वभूत से अलग नहीं हूं, सब में बसा हुआ हूं।

यथा–

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

ऐसी शंका नहीं होनी चाहिए कि सर्वभूतहिते रत ऋषियों न वेन का नाश करके उसका हित तो नहीं किया। ऐसा नहीं है, उसका वास्तविक हित किया है। अन्यथा वह अधिकाधिक पाप करता रहता तथा घोर से घोरतर नरक का भागी होता।

लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता

इत्थं मतिर्भवति तेष्यापि तेऽतिसाध्वी।

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा

त्वय्येव देविवरदे भुवनत्रयेऽपि।।

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तवदेविशीलं

रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यामन्यै।

वीर्यं च हन्तृ हृतदेव पराक्रमाणां

वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम।।

देव–देवियों के तो अवतार ही इसी उद्देश्य की पूति हेतु होते हैं–

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।

(श्री दुर्गासप्तशती)

परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

(श्रीमद्भगवद्गीता–४.८)

भगवान मनु का भी आदेश है–

आदण्डयान दण्डयन् राजा दण्डचांश्चैवाप्यदण्डयन्।

अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति।।

यावानवध्यस्य वधे तावान वध्यस्य मोक्षणे।

अधर्मो नृपते दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः।।

अन्यत्र भी कहा गया है:–

यस्य सम्यग् धृतो दण्डः सम्यग् दण्डधरश्च यः।

तावुभौ कर्मणा तेन पूतौ स्वर्गं गमिष्यतः।।

दण्डरूपिणी शक्ति के सत्प्रयोग का ऐसा फल है–

तथो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसंकरं परम्।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

तपस्या से क्रिया शक्ति का सम्पादन, विद्या से ज्ञान शक्ति का, सर्व–लोक के हित की सदिच्छा–शक्ति से जब दोनों का प्रेरण हो, तब अपने तथा लोक के भी किल्बिष–पाप का नाश हो तथा स्वयं एंव अनुसारी लोक भी शान्ति–सुख तथा अभय–सुख रूपी अमृत का पान करें।

श्री दुर्गा जी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि है कि वे हिमालय की पत्नी मेनका के गर्भ से प्रकट हुई है। वैदिक कोष 'निघण्टु' के अनुसार मेना, मेनका शब्द का अर्थ वाणी तथा गिरि, पर्वत आदि शब्दों का अर्थ मेघ होता है।

वे जगज्जननी हैं। जननी का कार्य बच्चों को दूध पिलाना है। वे जगत् को जलरूप दूध पिलाती हैं। इस कार्य में मेघ पिता के समान उनका सहायक हुआ। अतएव उनका नाम पार्वती तथा गिरिजा संस्कृत–साहित्य में प्रख्यात है। हिमालय का पानी भी मेघ है;क्योंकि महर्षि यास्क ने निरूक्त के षष्ठ अध्याय के अन्त में हिम का अर्थ जल किया है–

'हिमेन उदकेन' (निरूक्त, अ0–६)

वे जगत् के प्राणियों को दूध–जल पिलाती है, यह बात ऋग्वेद में भी दिखायी पड़ती है। यथा–

'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'। (ऋ.सं. २, ३, २२)

माता से सन्तति का आविर्भाव होता है। मेनका–वेदवाणी ने उनका ज्ञान लोगों को कराया। वेद ने हमें सिखाया कि परमात्मा अपने को स्त्री और पुरूष–दो रूपों में रखते हैं, जिससे प्राणियों को ईश्वर के मातृत्व, पितृत्व दोनों का सुख प्राप्त हो।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्–। (यजुर्वेद)

इसका तात्पर्य है कि हम दुर्गा सहित महादेव की पूजा करते हैं। सामवेद के षड़विंश ब्राह्मण ने त्र्यम्बक शब्द का उक्त अर्थ बतलाया है–

'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य स त्र्यम्बकः' (षड्विंश ब्राह्मण)

सायणाचार्य ने इसके भाष्य में लिखा है कि स्त्री–शब्द के सकार का 'पृषोदरादित्वात् सलोपः' सूत्र से लोप हो जाने से स्त्री शब्द का सकार त्र्यम्बक शब्द में नहीं दिखाई पड़ता। श्लेषालंकार से इस शब्द का अर्थ त्रिनेत्र भी होता है, जिसका तात्पर्य होता है कि वे त्रिकालज्ञ हैं, सर्वज्ञ हैं, न कि उनके तीन आंखे हैं। षडविंश–ब्राह्मण के अर्थ से यह ज्ञात होता है कि परमात्मा के अपने दोनो रूपों में भाई–बहन जैसा सम्बन्ध है; क्योंकि वे दोनों पूर्णकाम हैं।

श्री दुर्गा जी, दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गति को विनष्ट करने के लिए वीरता की आवश्यकता होती है। वीर सिंह के समान शत्रुओं को भी अपने वश में रखता है। इसी बात की शिक्षा के लिए उनका वाहन सिंह है। तंत्र तथा पुराणों में उनके हाथों में रहने वाले शस्त्रास्त्रों का वर्णन है, जो वास्तव में पापियों को दिये जाने वाले रोग–शोक के द्योतक हैं। उनके हाथ का त्रिशुल आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक पीड़ाओं को जानता है।

प्रलयकाल में ब्रह्माण्ड शमशान हो जाता है, जीवों के रूण्ड–मुण्ड इधर उधर बिखरे रहते हैं। इसलिए परमेश्वर अथवा परमेश्वरी को लोग चिता–निवसी तथा रूण्ड–मुण्डधारी कहते हैं। क्योंकि उस समय उनके अतिरिक्त दूसरे की सत्ता नहीं रहती है। माता के भय से पापी राक्षसों के रक्त मांस सूख जाते हैं, अतएव कवियों ने कल्पना की है कि वे रक्त–मांस का उपयोग करती हैं। मार्कण्डयेपुराण में उल्लिखित है कि वे युद्ध के समय मद्यपान करती थीं। मद्य तथा मधु से अभिप्राय

अभिमान या उन्मत्ता करने वाले आचरण का है। ईश्वरदीन बन्धु तथा अभिमान द्वेषी है। यथा–

ईश्वर स्याभिमान द्वेषित्वा दैन्यप्रियत्वाच्च'

(नारद–भक्तिसूत्र)

उनमें अभिमान की मात्रा भी नहीं है। सर्वव्यापक होने के कारण वे सब दिशाओं में व्याप्त हैं, जो उनके वस्त्र के समान हैं। इसीलिए उनका नाम दिगम्बरा भी है। जगज्जननी का शरीर दिव्य है। उसमें पञ्चतत्वों का अथवा विकारों का संयोग नहीं है। शुद्ध तथा नित्य शरीर होता हैं यह बात महर्षि कपिल जी सांख्यशास्त्र में स्वीकार करते हैं। यथा–

'उष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्ज सांङ्कल्पिकच्चेति नियमः (सांख्य सूत्र)

घिसने पर जैसे माचिस से आग प्रकट होती है, वैसे ही भक्तों के कल्याण के लिए दिव्य रूप आविर्भूत होते हैं। केनोपनिषद् में चर्चा है कि एक बार देवताओं में विवाद हुआ कि कौन देव बड़े हैं? जब निर्णय नहीं हो सका, तब यक्ष–पूजनीय परमेश्वर उनके मध्य चले आये। सबकी शक्ति क्षीण हो गयी, वे उन्हे नहीं पहचान सके। उस समय उमा–दुर्गाने प्रकट होकर कहा कि यक्षब्रह्म हैं। माता ही अपने बच्चों को पिता का नाम सिखाती है। उमा जी के प्रकट होने में बच्चों की स्नेहमयी करूणा कारण है। यथा–

'स तस्मिन्नोवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हेमवतीं

तां होवाच किमेतद्यक्षमिति। सा ब्रह्मोति होवाच........'।

देवताओं को स्वरूप धारण करने के लिए बाहरी साधन की आवश्यकता नहीं होती। महामहिम होने के कारण केवल आत्मा से ही उनके सब काम हो जाते हैं। यथा–

'आत्मेषवः। आत्मायुधम्। आत्मा सर्वं देवस्य'।

(निरूक्त देवतकाण्ड)

तन्त्रशास्त्र के संकेत में इ से शक्ति का बोधन होता है। शिव में से इ हटा दिया जाय तो शव मात्र रह जाता है। इसीलिए शंकराचार्य ने आनन्दलहरी में कहा है:—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

अतस्त्वामाराध्यां हरिहर विरिञ्चदिभिरपि

प्रणन्तुं स्तोतुं का कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।

समग्र संसार शिव और शक्ति से ही बना है। शिव परमात्मा तो एक ही है; परन्तु 'एकाकी नारमत, स आत्मनं द्वेधाऽपातयत्, पतिश्च पत्नी चाभवत्' — द्वेधा भी बहुधा भी, असंख्यधा भी 'एकोऽहं बहु स्याम्। एक पुरूष की नाना प्रकृति होते हुए भी एक ही पुरूष सर्वव्यापी होना चाहिए; परन्तु अन्योन्याध्यास से एक के अनेक पुरूष, अनेक की एक प्रकृति भी दिखाई पड़ती है।

आदिम द्वन्द्व, पहला जोड़ा, पुरूष, अनेक की एक प्रकृति भी दिखाई पड़ती है।

आदिम द्वन्द्व, पहला जोड़ा पुरूष तथा पुरूष की प्रकृति का है। संसार के असंख्य, अगण्य, अनन्त, अन्य सब जोड़े इसी के अनुकरण है; फल है, कार्य हैं। कहा भी गया है—

गिरमाहुर्देवीं द्रुहिणग्रहिणीमागमविदो

हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।

तुरीया काऽपित्वं दुरधिगमनि स्सीममहिमे

महामाये विष्वंभ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।।

शिवपुराण में भी कहा गया है—

शंकरः पुरूषाः सर्वे स्त्रियाः सर्वा महेश्वरी।

विषयी भगवानीशो विषयः परमेश्वरी।।

मन्ता स एव विश्वात्मा मन्तव्यं तु महेश्वरी।

आकाशः शंकरों देवः पृथिवी शंकरप्रिया।।

समुद्रो भगवानीशों वेला शैलेन्द्रकन्यका।

वृक्षोवृषध्वजो देवो लता विश्वेश्वर प्रिया।।

शब्दजालमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।

अर्थस्य रूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दु शेखरः।।

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरूदाहृता।

सा सा विश्वेश्वरी देवी स स देवो महेश्वरः ।।

पुल्लिंगमखिलं धत्ते भगवान पुरशासनः।

स्त्रीलिंगचाखिलं धत्ते देवी देवमनोरमा।।

येयमुक्ता विभूतिर्वे प्राकृती साऽपरा मता।

अप्राकृतीं परामन्यां गुह्यांगुह्यविदों विदुः।।

यतोवाचों निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अप्राकृती परा सैषा विभूतिः परमेष्ठिनः।।

(शिवपुराण, वा.सं., उ0खं0, आ. ५)

श्रीमद्भागवत महापुराण का उल्लेख भी दृष्टव्य है—

युवां तु विश्रवस्य विभू जगतः कारणं परम्।

इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरव्यया।।

तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वमेव पुरूषः परः।

त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग् भवान्।।

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग भवान।

त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया।।

नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः।।

(श्रीमद्भागवत ६.१६, ११—१३)

विष्णुपुराण में भी कहा गया है—

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।

बोधोविष्णुरियं बुद्धिधर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्।।

स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः।

सन्तोषो भगवांल्लक्ष्मीस्तुष्टिमैत्रेय् शाश्वती।।

इच्छा श्री र्भगवान् सामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम्।

आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्दनः।।

काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्तोऽसौ कला त्वियम्।

ज्योत्स्ना श्री र्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः।

ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया।।

तृष्णा लक्ष्मीजगन्नाथो लोभो नारायणः परः।

रती रागञ्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च।।

किञ्चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते।।

देवतिर्यङ्.मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।

स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्।।

(विष्णुपुराण, अंश—१, अध्याय—८)

वायु पुराण में इसी अर्थ को दूसरे रूपक में कहा गया है। पुरूष तत्व का नाम शिव, स्त्री तत्व का नाम विष्णु, सन्तान तत्व का नाम ब्रह्मा रखा गया है। यथा– विष्णुरभाषत (ब्रह्माणं प्रति)–

हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरूषोऽव्ययः।

प्रधानमव्यां ज्योतिख्यक्तं प्रकृतिस्तमः।।

अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।

यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते योगिभिः शिवः।।

एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः।

अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते।।

(वायु पुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय– २४)

शिव उवाच (विष्णुंप्रति)–

प्रकाशं चाप्रकाशञ्च जङ्गमं स्थागरञ्च यत्।

विश्वरूपमिदं सर्वं रूद्रनारायणात्मकम्।।

अहमविनर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम्।

भवान् ऋतमहं सत्यं भवान क्रतुरहं फलम्।।

भवान ज्ञान महं ज्ञेयमहं जप्यं भवान् जपः।

भवानर्द्ध शरीरं में त्वहं तब तथैव च।।

(वायु पुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय–२५)

विष्णु के मोहिनी अवतार की कथा में इस भाव को चरितार्थ किया गया है। यथा–

'शिवस्य हृदयं विष्णुः, विष्णोश्च हृदयं शिवः'।

इसी प्रकार ब्रम्हा का भी इन से अभेद है। त्रिमूर्ति ब्रम्हा, विष्णु, महेश की; सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी की; सत्व, रजस, तमस् की; ज्ञान इच्छा, क्रिया की सदैव अमोघ है। इन सबका समाहार शक्ति–शक्तिमान में होता है। इस प्रकार

शक्तिशक्तिमदुत्थं हि शाक्तं शैवमिदं जगत्।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्ताभ्यां नमो नमः।।

<u>शाक्त सिद्धांत–</u> भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने समान रूप से तन्त्र मात्र की तथा प्रधान रूप से शाक्त धर्म की प्रायः स्पष्ट शब्दों में निन्दा ही की है। उनमें से कतिपय विद्वानों ने तो यहां तक संकेत किया है कि जन सामान्य में अनाचर एवं व्यभिचार का प्रचार करने के लिए ही तंत्रों की रचना हुई अथवा तन्त्रों में प्रच्छन्न रूप से कामशास्त्र की ही शिक्षा दी गयी है। उनमे से थोड़े से लोगों ने भोली–भाली जनता की भलाई के लिए इस प्रकार के साहित्य का सर्वथा लोप हो जाना ही अच्छा समझा। सामान्य व्यक्तियों का तन्त्र साहित्य के प्रति इस प्रकार का स्पष्टरूपेण प्रतिकूल भाव होने के कारण ही उस समय जब कि संस्कृत वाड्मय की समस्त शाखाओं के आलोचनात्मक एवं विचारपूर्ण अध्ययन की उत्कट भावना जागृत थी, लोगों का ध्यान तन्त्रसाहित्य की ओर कम ही गया। तन्त्रशास्त्र का समुचित आदान होने एक कारण यह भी था कि इस विपुल तथा विस्तृत साहित्य के कुछ अंश इतने गहन एवं दुर्बोध है कि एक सुयोग्य गुरू की सहायता के बिना उनमें प्रवेश ही नही हो सकता। परिणामतः शक्ति साहित्य तथा शाक्त मत के प्रति लोगों में विचित्र भ्रम फैलते गये।

इनमें से एक भ्रम की ओर ध्यान देना समीचीन प्रतीत हो रहा है। कुछ विद्वानों की धारणा इस प्रकार हुई कि तन्त्रों में शाक्त मत तथा विशेष कर उन थोड़ी सी

वीभत्स साधनाओं के अतिरिक्त कुछ भी नही है, जिनका शक्ति के कुछ सम्प्रदायों में उनके अध्यात्मिक जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिकाओं में प्रचार पाया जाता है। उन लोगों ने इस बात को समझने की भी प्रयास नही किया कि तन्त्रों अथवा शाक्त धर्म में कोई अच्छी बात भी है। जिसके कारण वे अध्यात्मिक साधकों के काम की वस्तु हो सकते हैं। अन्ततः यह स्पष्ट ही हो जायेगा कि तन्त्रशास्त्र के अधूरे एवं श्रद्धाहीन अध्ययन के कारण ही ये सब बातें हुई।

यदि श्रद्धा एवं विवेक के साथ तंत्रशास्त्र का अध्ययन किया जाये, तो यह पता चलेगा कि तन्त्रो तथा शाक्त धर्म का ध्येय जीवात्मा की परमात्मा के साथ—व्यष्टि की समाष्टि के साथ—अभेद सिद्धि ही है। अथ च यदि तान्त्रिक उपासना का भी आलोचनात्मक अध्ययन किया जाये, तो यह अवगत होगा कि इसके भिन्न—भिन्न विध ाानों की सृष्टि भी इसी उद्देश्य को क्रमशः सिद्ध करने के लिए हुई है। तांत्रिक उपासना का पहला सिद्धांत यह है कि उपासक अपने उपास्य देव के साथ तादात्म्य स्थापित कर लें। यथा— 'देवो भूत्वा यजेद् देवम्'
यही कारण हैं कि तंत्रों में आन्तरिक उपासना (अन्तर्याग)के विशेष महत्व दिया गया है। समय मत के अनुयायी तो बाह्य पूजा की अवहेलना करते है, तथा ध्यान एवं आत्मसाक्षात्कार पर ही विशेष बल देते हैं। यथा—

'समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्य होमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमलवमेव सर्वं यावदनुष्ठेयम्'। (आनन्द लहरी पर लक्ष्मीधर की टीका, पृ. ११०)

तन्त्रों एवं प्रायः सभी सम्प्रदायों का अपना—अपना तत्वज्ञान अथवा दार्शनिक सिद्धन्त है। वास्तव में छः वैदिक दर्शनों की भाँति पाँच तान्त्रिक दर्शन माने गये हैं। प्रत्येक प्रधान सम्प्रदाय का एक स्वतन्त्र दर्शन है

अनर्थकारी तथा नृशंस अभिचार प्रयोगों से भी है। परन्तु जिन ग्रन्थों में इस प्रकार के प्रयोगों का विवरण प्राप्त होता है, उनके अध्ययन से यह पता लगेगा कि विशालकाय तंत्रशास्त्र के अपेक्षाकृत एक बहुत ही छोटे अंश में इन प्रयोगों का वर्णन पाया जाता है। उदाहरण के लिए बंगाल के कृष्णानंद द्वारा संग्रहीत 'तंत्रसार' नामक आकर ग्रन्थ के बहुत थोड़े अंश में इन पंचमकारादि की चर्चा की गयी है। इसके अलावा इन प्रयोगों का विधान सर्वसाधारण के लिए नहीं है, अपितु कुछ थोड़े से चिह्नित व्यक्तियों, शाक्तमत के कुछ चुने हुए सम्प्रदायों के लिए ही है।

कौल सम्प्रदाय में भी लोग इस प्रकार की उपासना के अधिकारी नहीं माने जाते। जबकि कौल सम्प्रदाय इस प्रकार के प्रयोगों के लिए बहुत ही बदनाम है। इस पथ के अनुगामी होते हुए भी पूर्व काल तो इन निषिद्ध वस्तुओं के संकेतों तथा प्रतीकों की ही उपासना करते हैं। यथा–

'श्रीचक्रस्थितनवयो निमध्यगतां योनिं भूर्जहेमवस्मयीपीठादौ'

लिखितां पूर्वकौलाः पूजयन्ति। तरूण्या प्रत्यक्षयोनि–

मुत्तरकौलाः पूजयन्ति। (आनंदलहरी, लक्ष्मीधरी–टीका पृ० १३०)

ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोगों के लिए तथा कौलमार्ग से इतर अन्य मार्ग वालों के लिए भी यही आदेश है कि वे इन वस्तुओं के प्रतीकों की ही पूजा अर्चना करें। यथा–

'यत्रासवमवश्यं तु ब्राह्मणस्तु विशेषतः'।

गुडार्द्रक तदा दद्यात्तम्रे वारि सृजेन्मधु।।

(तन्मसार, पृ० ६५१)

क्षत्रियों को तो धार्मिक कृत्यों में मद्य पीने का आदेश नहीं है। वे केवल उसे देवता को समर्पित कर सकते है– 'तेन क्षत्रियादीनां मुखस्य दानेऽधिकरः न पाने'।

(द्रष्टव्य– श्रीमद्देवीभागवत–४,१५,१२ की नीलकण्ठ कृत टीका)।

विभिन्न सम्प्रदायों तथा उप–सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्त विस्तृत साहित्य में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता है, उन्हें एकत्र कर उनका एक निश्चित शैली के अनुसार अध्ययन किया जाय। उनके सम्बन्ध में जो कुछ थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त हुई है, उसके अनुसार उनका वेदान्त–दर्शन के सिद्धान्तों से घनिष्ठ सम्बन्ध ही व्यक्त होता है। विविध पुराणों तथा उपपुराणों में भी शक्ति, आर्थात परमेश्वरी को सर्वथा परब्रह्मा से अभिन्न ही माना गया है। द्रष्टव्य–श्रीमद्देवी भागवत, भूमिका, पृ. २६, नीलकण्ठी टीका)।

शास्त्रों के योगदर्शन में आत्मसंयम का समग्र विधान प्रदत्त होता है। उपासना की विस्तृत पद्वति तथा योगाभ्यास प्रायशः एक साथ ही चलते हैं। तन्त्रशास्त्रीय अन्तर्याग का योग की क्रियाओं से गहरा सम्बन्ध है। पूजा के समय भी शक्ति–समस्त साधकों के चित्त में 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावनाबद्ध मूल की जाती है। यथा–

'शक्तिरूप जगत्सर्व यो न जानाति नारकी'।

(तन्त्रसार, पृ.६५१ पर उद्धृत)

शक्ति ही समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं यथा –

'आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं ततम्'। (देवी भागवत – ३,६,३३)

शक्ति ही सब कुछ है। वही विश्व की रचना, पालन तथा संहार करती है। यह सच है कि इन दिव्य और उच्च भावनाओं के साथ ही साथ शाक्त तन्त्रों में कुछ ऐसे प्रयोगों का भी विवरण प्राप्त होता है, जो नैतिक दृष्टि से सर्वथा निषिद्ध तथा निन्दनीय है। क्योंकि उनका सम्बन्ध पञ्चकारों से ही नही, उनसे भी अधिक निषिद्ध वस्तुओं, जैसे–स्त्री–पुरूष के रज–वीर्य तथा शव आदि के प्रयोग से एवं षड्विध

हस्तत्वदीधित (पृष्ठ सं0–57–58) में श्याम प्रदीप से बड़े–बड़े उद्धरण लिये गये है। उनमें इन वस्तुओं के स्थान पर जिन वस्तुओं का प्रयोग किया जा सकता है, उनकी एक विस्तृत सूचीास दी गयी है, यथा वीर्य के स्थान पर पनीर, मैथुन के स्थान पर पुष्पविशेष का एक विशष्टि आसन से समर्पण मदिरा के स्थान पर दुग्ध आदि तथा मॉस के स्थान पर फलों का प्रयोग उद्धृत किया गया है।

कही कही इन प्रयोगों के रूपक के समान तथा योग की गयी है। इन व्याख्याओं के अनुसार मदिरा से परमात्मा के उन्मद ज्ञान का तथा वाणी के संयम का ही अभिप्रायः गृहीत होता है–यथा

'यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकार निरञजनम्।

तस्मिन् प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्।।

कुलकुण्डलिनीशक्तिदेहिनां देहधारिणी।

तया शिवस्य संयोगों मैथुनं परीकीर्तितम्।। (विजयतंत्रम)

गैंयमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।

तौ मत्स्यौ भक्षयेद्यस्तु स भवेन्मत्स्यसाधकः।

माशब्दात् रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रियान्।।

सदा यो भक्षयेद्वेवि स एक मांससाधकः।। (आगमसार)

यह तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि इन व्याख्याओं में अत्यन्त ही खींचतान है और ऐसी प्रतीति होती है कि इनकी बुराई को छिपाने के लिए इन पर इस प्रकार का पर्दा डाल दिया गया हैं। परन्तु इससे हमारा यह पक्ष कथमपि कमजोर नहीं होता कि इस प्रकार के वीभत्स प्रयोगों का विधान भी तो उनका उस जुगुप्सित रूप में प्रचार केवल कुछ चिह्नित लोगों में ही था। अतएव इससे सम्पूर्ण शाक्त–मत दोषी नहीं हो सकता। कौल सम्प्रदाय को छोड़कर अन्य शाक्त मतावलम्बियों के लिए

इस बात की कठोर आज्ञा है कि वे कौलोपासना के प्रयोगों को कथमति कार्य में न लायें। सम्भवतः साधारण जगमानस को इन फंसाने वाले प्रयोगों से दूर रखने के उद्देश्य से ही कौलेतर सम्प्रदायों के ग्रन्थों में कहीं–कहीं कौल सिद्धान्तों तथा कौलोपासना की निन्दा की गयी है। कौलेतर मार्गो का प्रतिपादन करने वाले तन्त्रों में कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं, जिनमें किसी निन्दनीय बात की चर्चा तो दूर रही, अधिकांश बातें ऐसी ही हैं, जो जगन्मान्य तथा अत्यन्त सत्य है। उदाहरण के लिए परानन्द सम्प्रदाय में, जिनके सम्बन्ध में आजकल लोगों को बहुत कम ज्ञान है, पशु–बलि का सर्वथा निषेध है, जैसा कि परानन्द–सूत्र में कहा गया है–

–परानन्दस्याष्टविधहि सनाभावान्मध्यमं परानन्दोविवर्जयेत्।

(परानन्द सूत्र पश. 13)

इसके अतिरिक्त शाक्त से भिन्न सम्प्रदायों की तो बात कौन कहे, समयमतानुयायी शाक्तों के उदात्त आध्यात्मिक सिद्धान्त इतने सुंन्दर हैं कि उनकी ओर किसी भी सहृदय जिज्ञासु का ध्यान आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

इन प्रयोगों से जो पतन हो सकता है, उससे जनता को बचाने के लिए अत्याधिक सावधानी तथा सर्तकता रखी गयी है। जो लोग इस मार्ग पर चलना चाहते है, उन्हे काफी चेतावनी दी गयी है। इस साधन–पथ में आने वाली कठिनाईयों पर साधक का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट किया गया है। मद्य, मांस प्रभृति जिन वस्तुओं के कारण तन्त्रों को लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं, उन वस्तुओं का उपयोग धार्मिक कृत्यों में यथेष्ट नियमंत्रण के साथ विहित है। मात्र विषम–वासना की तृप्ति एवं इन्द्रियों की प्रीति के लिए इन वस्तुओं के सेवन की बहुत ही कड़े शब्दों में निन्दा की गयी है।

कुलार्णवतन्त्र में उल्लिखित है कि इन सब वस्तुओं के सेवन को ही धर्म नहीं मान लेना चाहिए; क्योंकि ऐसा होने पर तो शराबी तथा मांसाहारी ही सबसे बड़े धार्मिक पुरूष समझे जाने लगेंगे। यथा–

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः।।
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्याभाजो भवन्ति हि।।

(कुलावर्णवतन्त्र –2.117–118)

इन्हीं वस्तुओं का धार्मिक रूप में तथा साधारण रूप में सेवन करने में जो आनन्द है, वह लोगों को अत्यन्त सूक्ष्म ही नहीं, अपितु एक प्रकार से कल्पना की ही वस्तु प्रतीत होगा परन्तु उक्त दोनों प्रकार के सेवन का अन्तर केवल स्वीकार ही नहीं किया गया है अपितु उस पर बहुत अधिक जोर भी दिया गया है । उस समय इस बात का भी अनुभव किया गया कि सर्वसाधारण के लिए इस सूक्ष्म अन्तर को समझ सकना तथा हृदयंगम करना असम्भव ही होगा और परिणामतः लोग बहुधा न तो इन वस्तुओं के सेवन के नियमों का पालन कर सकेंगे और न ही उनका सेवन करते समय मन को पूर्णतया शान्त ही रख सकेंगे जिससे उन्हें लाभ होने की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी । यही कारण है कि इस साधना के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों तथा विघ्न–बाधाओ का बहुधा अतिरंजित वर्णन किया गया, जिससे वे लोग जिनका इस मार्ग के प्रति आकर्षण हुआ, डर जॉय, सचेत हो जाये।

कौल–मार्ग की उपासना में ही पञ्चमकारों अर्थात मत्स्य, मांस, मद्य, मुद्रा एवं मैथुन का विधान है, परन्तु यद्यपि इस उपासना को परम लाभदायक ही नहीं अपितु सर्वश्रेष्ठ माना

गया है, फिर भी साथ ही साथ इसे स्पष्ट शब्दों में संसार की कठिन से कठिन वस्तुओं से भी अधिक कठिन बताया गया हैं। कुलावर्णवतन्त्र में तो यहॉ तक लिखा गया है कि कौल–मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने, बाघ की गरदन पकड़ने तथा सांप को हाथ में लेने की अपेक्षा भी अधिक कठिन है। यथा –

कृपाणधारागमनाद् व्याघ्रकण्ठावलम्बनात् ।

भुजङ्गधारणान्नूनमशक्यं कुलवर्तनम् ।। (कुलार्णवतन्त्र – २.१२२)

इस उपासना से सम्बन्धित क्रियाओं को सबके सामने करने की आज्ञा नही है, बल्कि इन्हें अत्यन्त प्रयत्न से गुप्त रखने की आज्ञा है जिससे साधारण कोटि के मनुष्यों में उनका अनुकरण करने की लालसा उत्पन्न ही न हो। जो लोग इन वस्तुओं का सेवन केवल कामोपभोग के लिए करते हो, उनके लिए प्रायश्चित के रूप में कठोर तप–श्चर्या का विधान है। उदाहरणतः जो व्यक्ति विषय–भोग के लिए मदिरा पीता है, उसके मुख में गर्म–गर्म शराब डाल देने का विधान बताया गया है, जिससे उसका मुख जलकर शुद्ध हो जाये । यथा–

सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिक्षिपेत् ।

मुखे तया विनिर्दग्धस्ततः शुद्धिभवाप्नुयात् ।। (कुलार्णवतन्त्र – २.१२६)

जो लोग सांसारिक कामों में इन वस्तुओं का सेवन करते हैं, वे सदा के लिए रौरव आदि नरक में ढकेल दिये जाते हैं। यथा –

अर्थाद्वा कामतो वाऽपि सौख्यादपि च यो नरः ।

लिंङ्गनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं ब्रजेत् ।। (तन्त्रसार, पृ० ६४६)

इस विचित्र उपासना का उन्हीं लोगों के लिए विधान है, जो आध्यात्मिक विकास की बहुत ऊंची स्थिति में पहुंच गये हों, जिनका आत्मसंयम पराकाष्ठा को पहुंच गया हो और जिनके मन में विकार का बड़ा से बड़ा कारण उपस्थित होने पर भी विकार न होता हो । इन प्रयोगों के करने के अधिकारी एक सच्चे कौल के जो लक्षण विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों में वर्णित हैं, उनसे इस बात का स्पष्ट रूप से पता लगता है और इन लक्षणों को देखकर किसी के भी मन में एक सच्चे कौल के प्रति श्रृद्धा और आदर के भाव जागृत हुए बिना नहीं रह सकते। आध्यात्मिक साधना में लगे हुए पुरुष के लिए यह साधना उसकी प्रायः अन्तिम और सबसे कठिन परीक्षा के रूप में होती है, जो लोग इस भीषण और दुर्गम मार्ग का अनुसरण करते हैं, उनका वीर कहलाना उचित ही है । वे ही पदार्थ जो साधारणतः पतन का कारण माने जाते हैं, उनके लिए मोक्ष का साधन बन जाते हैं । यथा –

'येरेव पतनं द्रव्यैर्मुक्तिस्तैरेव साधनैः'।

इसीलिए कौल मार्ग को अत्यन्त दुरधिगम्य, अर्थात योगियों के लिए की अगम्य कहा गया है । यथा –

'कौलो धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'

(आचारसार, सप्तम अध्याय का अन्तिम पद्य)

सच्चा कौल–मार्गी तो वह है, जो उन वस्तुओं के सेवन से भी विकार को प्राप्त नहीं होता, जो कि देवताओं के मन में भी विकार उत्पन्न कर देती हैं । यथा –

अहो पीतं महद्द्रव्यं मोहयेत्त्रिदशानपि ।

तन्मद्यं कौलिकः पीत्वा विकारं नाप्नुयान्तु यः ।।

मद्ध्यानैकरो भूयात् स भक्तः स च कौलिकः ।। (परानन्दमत, पृ० १६)

इसीलिए एक सुयोग्य गुरु की देखरेख तथा तत्वाधान में इन क्रियाओ के करने का विधान बतलाया गया है। एक अल्पज्ञ के लिए जो इस उपासना–पद्धति के रहस्यों से सर्वथा अनभिज्ञ है, इस पूजा के द्वारा सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करना उतना ही हास्यास्पद है, जितनी कि अपार समुद्र को तैरकर पार करने की चेष्टा करना। यथा –

कुलधर्ममजानन् यः संसारान्मोक्षमिच्छति ।
पारावारमपारं स पाणिभ्यां तर्त्तुमिच्छति ।। (कुलावर्णवतन्त्र – २.४७)

जैसा कि कुछ प्रख्यात विद्वानों ने कल्पना की है कि तन्त्रों ने इन प्रयोगों के रूप में व्यभिचार का प्रचार किया है अथवा यह कि वे प्रच्छन्न रूप में कामशास्त्र ही हैं, यह कभी भी नहीं माना जा सकता । वस्तुतः तन्त्रशास्त्र का ध्येय पूर्ण आत्मसंयम ही है, जो केवल विषयों के त्याग से ही नहीं, अपितु उनके उपभोग से भी सिद्ध होता है।

परन्तु तन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थों एवं तान्त्रिक गुरुओं का इस सम्बन्ध में चाहें जो आदेश हो, किन्तु इस सत्य के दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि बहुत से लोगों की वास्तविक क्रियायें इतनी गन्दी तथा धर्मविरुद्ध हैं कि जनसाधारण का उनके प्रति ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण तान्त्रिक सम्प्रदाय के प्रति घृणा का भाव होना न्यायविरुद्ध नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः शास्त्र के आदेशों का अक्षरशः पालन करना अत्यन्त ही कठिन है और इस प्रकार के थोड़े बहुत ही दुष्परिणामों का होना अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि भ्रष्ट चरित्र से कुछ लोगों ने, जिनकी इससे स्वार्थपूर्ति होती थी, तन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थों में रूपान्तर कर दिया हो अथवा समग्र ग्रन्थ ही नये रच डाले गये हों। कतिपय तन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थों को ही देखने से यह ज्ञात होता है कि अपेक्षाकृत प्राचीन काल में भी इस प्रकार की घटनायें हुआ करती थीं कुलार्णतन्त्र में उल्लिखित है कि कतिपय ऐसे व्यक्ति भी थे जो शास्त्रपरम्परा से

सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण कौल धर्म के नाम पर मनमानी कपोल–कल्पित बातों का उपदेश दिया करते थे । यथा –

बहवः कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञानविडम्बकाः ।

स्वबुद्धया कल्पयन्तीत्थं पारम्पर्यविवर्जिताः ।। (कुलार्णवतन्त्र – २.११६)

कुलार्णवतन्त्र में ही यह भी उल्लिखित है कि आजकल भी ऐसे व्यक्ति हैं जो झूठ–मूठ में ही अपने को तन्त्रशास्त्र का विद्वान प्रकट करते हैं और ऐसी अप्रमाणित बातों का प्रचार करते हैं जो तन्त्रशास्त्रीय सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। यथा –

अद्यत्वेऽपि हि दृश्यन्ते केचिदागमिच्छलात् ।

अनागनिकमेवार्थं व्याचक्षणा विचक्षणाः ।। (आगमप्रामाण्य, पृ0 ४)

इस समग्र विवेचन से स्पष्ट होता है कि सम्भवतः इन्हीं आशास्त्रीय विचारों का समावेश हो जाने के कारण तन्त्रों के दो भेद हो गये – १– वैदिक अर्थात प्रामाणित तथा २– अवैदिक अर्थात अप्रामाणिक। विभिन्न सम्प्रदायों में विद्वेष होने के कारण ही एक सम्प्रदाय के ग्रन्थों की दूसरे सम्प्रदाय ने अत्यन्त कटु शब्दों में निन्दा की हैं। इसलिए वास्तव में तन्त्रशास्त्र के प्रामाणित तथा उत्तम ग्रन्थों का मिलना ही आपाततः असम्भव सा दिखाई देता है किन्तु परिश्रमी विद्वानों की सूक्ष्मदर्शिनी बुद्धि के द्वारा कठिन से कठिन समस्या का भी समाधान हो ही जाता है । किन्तु कतिपय अशास्त्रीय क्रियाओं अथवा कुछ अप्रामाणिक ग्रन्थों के प्रचार के कारण सम्पूर्ण तान्त्रिक सम्प्रदाय को कोई न्यायतः दोषी नहीं ठहरा सकता । उक्त सम्प्रदाय के कम से कम प्रसिद्ध तथा प्रमुख ग्रन्थों के सम्यक अध्ययन से वस्तुतः अच्छी बातों के बुरी वस्तुओं से पृथक किया जा सकता है । इसके विषय में जो भ्रम प्रचारित हें, उनका निराकरण किया जा सकता है तथा इसके सिद्धान्तों के वास्तविक स्वरूप को समझाकर लोगों के द्वारा इसकी समुचित कद्र करायी जा सकती है।

शाक्त–दर्शन की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि, शक्ति की उपासना में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों का मत तथा दार्शनिक दृष्टि से शाक्त–सिद्धान्त का महत्व

वैष्णव और शैव दर्शनों में शक्ति पदार्थ ब्रह्म पदार्थ के रूप में अन्वित माना जाता है उनमें प्रधानता ब्रह्म की है, शक्ति पदार्थ गौण है परन्तु शान्त मत में शक्ति मुख्य तथा स्वतन्त्र है । प्रत्यभिज्ञासूत्र में कहा गया है :–

'चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्धि हेतुः । (प्रत्याभिज्ञाहृदयम्, पृ० १)

अर्थात विश्व का कारण शक्ति तत्व स्वतन्त्र है। कहा भी है –

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विषयरूपिणी स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संम्भतः'। अर्थात जब वह विश्व रूप धारण करने वाली पराशक्ति अपनी इच्छा से अपने में स्फुरण करती हैं, तब संसार–चक्र की उत्पत्ति होती है। कार्य–कारण–भाव से सारे पदार्थों को एक पराशक्ति ने ही व्याप्त कर रखा हैं। इसलिए श्रुति कहती है :–

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किन्च जगत्यां जगत् । (यजुर्वेद – ४0.१)

अर्थात जो कुछ भी नाम–रूपात्मक–जगत इस संसार में है, उसे ईशा पराशक्ति (ईशाया आवास्यम् ईशावास्यम्) ने व्याप्त कर रखा हैं। इसी के अनुसार दुर्गा सप्तशती में कहा है कि :–

'देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या (दुर्गा सत्पशती – ४.३)

तथा श्रीमद् भागवत में इसी के अनुसार कहा गया है :–

'आत्मावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विदनम् ।।

(श्रीमदभागवत – ८.१.१०)

इन प्रमाणों से शक्ति–कारणवाद सिद्ध होता है । यही शक्ति पदार्थ शिव–शक्ति–रूप धारण करके जगत अभिन्न निमित्तेपादान कारण है। इसे ही परावाक् या सांविदी (सादिनी) कला भी कहते हैं। यथा –

'मेदिनीप्रमुखमाशिवं मतं तत्वचक्रमिह चक्रमुत्तमम् ।

स्वस्वभावसमवायभासिनी देवता भवति सादिनी कला'

(चिद्विलास, श्रीविद्यारहस्य, श्लोक १७)

इसका यह रूप मन, वाणी से अगोचर स्वंसंवेद्या है। इससे ही शाक्त तथा शैव मतों में माने जाने वाले पृथ्वी से लेकर शिव पर्यन्त छत्तीस तत्वों का आविर्भाव होता है। इसका निरूपण कामकलाविलास में भी किया गया है :–

'षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या''।(कामकलाविलास, पृ ११)

अर्थात छत्तीस तत्वों का रूप धारण करने वाली महाशक्ति तत्वों से परे केवल शुद्ध स्वरूप वाली भी है। श्रुति में कहा गया है –

'या प्राणेन सम्भवति अदितिदैवतामयी गुहा।

प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्य्जायत एतद्वैतत् ।।

(कठोपनिषद – २.४.७)

अर्थात प्राणात्मा की समस्त देवमयी अदिति आदिशक्ति समस्त प्राणियों की बुद्धि रूप गुहा में स्थित है। समस्त भूतों के साथ, उसकी भी व्यक्ति होती है। मरने के बाद क्या शेष रहता है। हे नचिकेता ! जिसे तुमने पूंछा है, वही यह तत्व है।

शक्ति कारणवाद वेदान्त–सूत्रों में भी महर्षि व्यासदेव ने माना है। यथा –

'अक्षराम्बरान्तधृतेः', 'तथा साच प्रशासनात्'। (वेदान्त–दर्शन – १.३.१०–११)

इन सूत्रों का भाष्य आचार्य भगवत्पाद तथा श्री पंचानन भट्टाचार्या ने विशद रूप से शक्तिवाद के अनुकूल किया है। शक्तिवाद के प्रतिपादक चारों वेदों मे अनेक प्रसंग हैं। देवी सूक्त, रात्रिसूक्त आदि ऋग्वेद में, कृत्या, राष्ट्री, विद्युत सूक्त से अथर्ववेद में, ताण्डय–ब्राम्हण तथा सामवेद–संहिता, यजुर्वेद (शुक्ल एवं कृष्ण) के अनेक मन्त्रों में, वहवृचोपनिषद्, छान्दोग्योपनिष, त्रिपुरोपनिषद् (शांखायन शाखा) में स्फुट रूप से शाक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

शक्तिमान का अभेद होने से ब्रह्म पदार्थ और शक्ति पदार्थ दो नहीं हैं। तान्त्रिक शास्त्रों के मत से जगत ब्रह्म का परिणाम होने से सत्य है, अन्यथा **'तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्यः'** इस सूत्र से विरुद्ध होगा, क्योंकि जगत यदि मिथ्या हो तो सत्य रूप ब्रह्म से अभिन्नता नहीं होगी। ऐसा होने पर भी श्री बल्लभाचार्य भागवत की सुबोधिनी व्याख्या में शक्ति निमित्त ब्रह्म परिणाम शाक्तों का मत बताते हैं :–

'तत्र ब्रह्मणः समवायित्वप्रकृतेर्निमित्तत्वमिति केचिदाहुः, विपरीत–मित्यन्ये' – यह चिन्त्य है। इसी के अनुसार शुद्धाद्वैतमार्तण्ड में कहा गया है, उसे भी अप्रामाणिक ही समझना चाहिये। आचार्य भासुरानन्द नाथ ने – **'मिथ्या जगदधिष्ठाना'** इस नाम की व्याख्या करते हुए भेद मात्र को ही मिथ्या बताया है। कामकलाविलास आदि दार्शनिक ग्रन्थों में शक्ति को उभय कारण ही माना गया है।

शाक्त–दर्शन अपने आप में एक पूर्ण दर्शन है। फिर भी वेदान्त और सांख्य के परम तत्व विवेचन के आधार पर शाक्त–दर्शन की उक्त दर्शनों के साथ तुलना की जा सकती हैं। इसके साथ ही यह पहचान भी की जा सकती है कि शान्त–दर्शन की भूमि कितनी सुदृढ़ है। वेदान्त–दर्शन मे अन्तिम रूप से यह प्रतिपादन किया गया है। सत्ता केवल ब्रह्म की ही है

और इसके अतिरिक्त जो कुछ भी दृश्यमान एवं अदृश्यमान स्वरूप दिखलाई पड़ता है, वह केवल माया के माध्यम से उत्पन्न आभास मात्र है। उसकी कोई पारमार्थिक सत्ता नहीं बन पाती । जब जगत के स्वरूप और सृष्टि का प्रश्न वेदान्तियों के समक्ष उपस्थित हुआ तो उन्होंने जगत को परिणाम माना और कुछ वेदान्तियों ने विवर्त माना। इस प्रकार जगत के सम्बन्ध में वेदान्त में दो मत हो गये – परिणामवाद और विवर्तवाद। शाक्त–दर्शन में शक्ति को पारमार्थिक तत्व के रूप में माना गया है। इस शक्ति का मूल रूप से जैसा प्रतिपादन किया गया है, उससे ब्रह्म और शक्ति में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । वेदान्त की दृष्टि से जो ब्रम्ह है, वही शाक्त की दृष्टि से शक्ति हैं। दूसरी बात शाक्त–दर्शन में जगत को परिणाम माना गया है, अतएव शाक्त–दर्शन में जगत को मिथ्या कहने की आवश्यकता नहीं हुई ।

वेदान्त का जो अद्वैत स्वरूप है, उससे शाक्त–दर्शन का कोई विरोध नहीं है, किन्तु एक प्रश्न जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यह उठता है कि दार्शनिक दृष्टि से एक तत्व की अर्थात ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता मान लेने के बाद उसकी अनुभूति या उसके साक्षात्कार का साध ान क्या हो सकता है ? केवल चिन्तन से साक्षात्कार नहीं हो सकता। क्योंकि चिन्तन बुद्धि का विषय है । वेदान्त में बाद में युग को साधन के रूप में जोड़ा गया है, किन्तु शाक्त ने उस परम तत्व के साक्षात्कार हेतु साधनात्मक प्रक्रिया को सर्वांगीण बनाया है, जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की विधियां एक साथ अपनायी गयी है। शाक्त–दर्शन में उपासना की दृष्टि से काली, तारा, षोडशी आदि महाविधाओं का जो स्वरूप निर्धारित किया गया है, वह स्वरूप वस्तुतः प्रतीकात्मक है। वैसे निराकार का कोई वास्तविक रूप नहीं हो सकता। साधना के सौकर्य की दृष्टि से एक प्रतीक के रूप में की कल्पना की गयी है, जिसका पर्यवसान अन्ततः निराकार में होता है।

जिस प्रकार वेदान्त के ब्रह्म का कोई लिंग नहीं होता, उसी प्रकार शक्ति का भी कोई लिंग नहीं होता । कालीस्तव में कहा गया है – **'न स्त्री न पुनः पुमान् त्वमेका ब्रह्मरूपेण**

सिद्धा' । यह तो रूप–कल्पना में शक्ति का स्त्री रूप केवल साधना की सुविधा की दृष्टि से तथा शक्ति और शक्तिमान में शक्ति वैशिष्ट–प्रतिपादन की दृष्टि से माना गया हैं। मूलतः स्त्री या पुरुष होना उसका प्रतिपाद्य अर्थ नहीं हैं। जैसे शिव से शक्ति के निकल जाने पर शिव का शिवत्व नष्ट हो जाता है, शिव केवल शव रह जाते हैं और इसी तथ्य को शाब्दिक दृष्टि से शिव शब्द में से इंकार के अलग हो जने पर शव शब्द बच जाता है, यहॉ शक्ति को मूल तत्व के रूप में मानने के कारण ही शाक्त–तन्त्रों में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। शंकराचार्य अपनी सौन्दर्यलहरी में कहते हैं :–

शिवःशक्त्या युक्तों यदि भवति शक्तः प्रभवितुं

न चेदेवं देवो न खलु कुशलःस्पन्दितुमपि ।

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि

प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ।। (सौन्दर्य लहरी – १)

शक्ति से युक्त होने पर शिव, ब्रह्मा, विष्णु अपने–अपने कार्यों में समर्थ होते हैं। शक्ति से पृथक होने पर वे स्पन्दित होने में भी समर्थ नहीं होते हैं । इसका तात्पर्य यही है कि वास्तविक सत्ता शक्ति की है और वह निराकार एवं चिद् रूप में सर्वत्र व्याप्त है। जितने भी शक्तिमान पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, वे सभी शक्ति के कारण ही हैं । श्री गौड़ पाद ने श्री विद्यारत्न सूक्त में एक सूत्र लिखा है – 'चैतन्यस्वरूपा चिच्छक्ति' (श्रीविद्यारत्नसूक्त–3) यह चैतन्यस्वरूपा चित्त–शक्ति ब्रह्म है । इस प्रकार वेदान्त के अद्वैत से शाक्त –दर्शन के शक्ति–सिद्धान्त में पर्याप्त समानता एवं एकता है।

सांख्य–दर्शन में पुरुष तथा प्रकृति दो तत्व माने गये हैं। पुरुष चैतन्य है किन्तु निष्क्रिय हैः प्रकृति जड़ है किन्तु सक्रिय है और दोनों के संयोग से सृष्टि होती है । शाक्त–दर्शन में शिव और शक्ति के संयोग से सृष्टि होती है तथा सांख्य के तुलनात्मक

आधार पर शिव और शक्ति को पुरुष और प्रकृति के रूप में माना जा सकता है, किन्तु एक अन्तर है और वह यह है कि सांख्य की प्रकृति जड़ है किन्तु शाक्त की शक्ति जड़ नहीं है। इसलिए उसे आद्या प्रकृति कहा जाता है । व्यवहार–काल की विशेषता एवं रूपात्मकता के कारण शिव और शक्ति के द्वैत रूप अवस्थित होते हैं और उसके आधार पर सृष्टि–प्रक्रिया की पूरी व्याख्या हो जाती है, किन्तु पारमार्थिक दृष्टि से शिव और शक्ति में अभेद माना गया है। इसी अभेद का एक प्रतीक रूप अर्द्धनारीश्वर है। सांख्य ने चौबीस तत्व मानकर समग्र व्याख्या की है जो कम युक्तियुक्त नहीं है। इस प्रकार सांख्यदर्शन के साथ पर्याप्त मेल होने के बावजूद किन्चित भेद है जो तात्विक दृष्टि से शक्ति को एकमात्र पारमार्थिक सत्ता तथा चिद्रूप अर्थात चैतन्य मानने के कारण है।

महानारायणोपनिषद्, नारदपरिब्राजकोपनिषद् में छत्तीस तत्वों का उपदेश दिया गया है, जिन्हे शुद्धा शुद्ध तथा अशुद्ध कोटि में विभक्त किया गया है। यथा –

"शक्तिः साक्षन्महादेवी महादेवस्तु शक्तिमान्।
तथोर्विभूतिलेशो वै सर्वभेतच्चराचरम्।।
वस्तु किञ्चिच्चिद्रूपं किञ्चिद्वस्तु चिदात्मकम्।
इदं शुद्धमशुद्धच्च परं चापरमेव च।।
यत् संसरति चिच्चक्रमचिच्चक्रसमन्वितम्।
तदेवाशु; मपरिमिततरं तु परं शुभम्।।
अपरच्च परच्चैव द्वयं चिदचिदात्मकम्।
शिवस्य शिवायाश्च स्वात्म्यं चैतत्स्वभावतः।।
यथा शिवज्ञतथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्र चन्द्रिकयोरिव।।

(शिवपुराण, शिवार्कमणिदीपिका, पृ० १८७)

अर्थात शक्ति साक्षात् महादेवी हैं और महादेव शिव ही शक्तिमान् हैं। इन दोनों के विभूति अंशा से ही यह चराचर सारा जगत्, कोई वस्तु चेतन है, कोई अचेतन। इन्ही दोनों तत्वों को जीव–जड़ एवं शुद्ध अशुद्ध कहते हैं। पर एवं अपर भी इनकी संज्ञा है। अचिद् चक्र के साथ चिद् (जीव) संसार का अनुभव कर रहा है। इसे ही अशुद्ध कहते हैं। इनसे भिन्न शुद्ध है। चिद्, अचिद् इन तत्वो पर शिव एवं शिवा का ही अधिकार है। जैसे शिव हैं, वैसे ही शक्ति है। इन दोनों की एकता चन्द्र और चन्द्रिका की तरह है। शिव, शक्ति; सदा–शिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या तत्व शुद्ध कहे जाते है। माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति और पुरूष ये तत्व शुद्धाशुद्ध कहे जाते हैं। शेष प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त चौबीस तत्व, जिनका वर्णन सांख्यशास्त्र में किया गया है, उन्हें तत्व कहा जाता है। संक्षेप रूप में इसे इस प्रकार से कह सकजे है :–

"मायान्तमात्मतत्वं विद्यातत्वं सदाशिवान्तं स्यात्।

शक्तिशिवौ शिवतत्वं तुरीयतत्वं समष्टि रेतेषाम्"।।

सच्चिदानन्द ब्रह्म से अविर्भूत शिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त उन तत्वों का स्वरूप इस प्रकार है। शिव शक्ति तत्व में आनन्द अंश पूर्ण रूप से है। सदाशिवतत्व से लेकर विद्यातत्व तक चिदंश अनावृत रूप से है। माया से लेकर पृथिवी पर्यन्त सदंश व्यक्त है, परतत्व में सच्चिदानन्द तीनों समान रूप से व्यक्त हैं। आत्मा शब्द सत्ता को बताने वाला है। विद्या शब्द ज्ञान को और शिव शब्द आनन्द को बताने वाला है। तत्व का लक्षण निम्नलिखित है

आप्रलयं यस्तिष्ठति सर्वेषां भोगदायिभूतानाम्।

तत्तत्वमिति प्रोक्तं न शरीर घटादितत्वमतः।।

अर्थात प्रलय पर्यन्त समस्त भूतों को जो भोग प्रदान करता है, उसे तत्व कहा जाता है। शरीर घटादि का नाम तत्व नहीं है।

जब सृष्टि–क्रम प्रवृत्त होने लगता है, तब पराशक्ति इच्छा रूप से ज्ञान और क्रिया इन दो शक्तियों को व्यक्त करती है। ज्ञान–शक्ति अन्तरंग और क्रिया शक्ति बहिरंग मानी जाती है। उसी ज्ञान–शक्ति में तत्व का अभिमान करने के कारण 'मै सर्वज्ञ हूँ' जब ऐसा समझता है, तब उसे शिव कहते हैं। वही पराशक्ति लब क्रिया–शक्ति में लीन होकर 'मै सबका कर्ता हूँ, ऐसा व्यवहार करती है, तब उसे शक्ति–तत्व कहते हैं। श्री नटनानन्दनाथ ने कहा है –

'सत्र शिवशब्देन ज्ञान शक्तिरभिधीयते। ज्ञान शक्त्याधिष्ठितत्वात् शिवतत्वस्य। शक्तिशब्देनापि क्रियाशक्तिराभिधीयते, क्रियाशक्त्याधिष्ठितत्वाच्छक्तितत्वस्य चिदानन्दस्वरूपिण्या सर्वत्र ज्ञानक्रियाभ्याभेव प्रपञ्चनिर्माणदर्यर्शनात्'।

(कामकलाविलास, प०१५)

अर्थात् इस शास्म में शिव शब्द से ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शब्द से शक्ति तत्व किया जाता है, क्योंकि शिव तत्वाज्ञान का अधिष्ठाता है, एवं क्रिया की अधिष्ठात्री शक्ति है। सच्चिदानन्दस्वरूपिणी पराशक्ति ज्ञान और क्रिया इन दोनों शक्तियों से प्रपंच का निर्माण करती है।

शिव–शक्ति का भेद केवल व्यावहारिक है, वास्तव में दोनों अभिन्न हैं। इसे ही सामरस्य कहते हैं। आचार्यश्री शंकरस्वामी ने कहा है –

अतश्शेषशेषीत्यमुभयसाधारणतया।

स्थितस्सम्बन्धों वा सामरसपरानन्द परयोः।।

(सौन्दर्यजहरी–३४)

अर्थात अन्त में जो तत्व शेष बचता है, वही शेष एवं शेष (अंगी) दोनो साधारण रूप

से कहा जाता हैं, क्योंकि समस्त परानन्द स्वरूप से ही शिव–शक्ति का सम्बन्ध है। परतत्व शिव–शक्ति उभयात्मक है। यही समयिमत है। देवी भागवत में भी कहा गया है –

सगुणा निर्गुणा चाहं समये शंकरोत्तमा।

सदाहं कारणं शम्भो न च कार्यं कदाचन।।

सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरूषान्तिके।

शिवशक्तिरिति हयेकं तत्वमाहुर्मनीषिणः।।

शिवाभिन्ना पराशक्ति सर्वकर्मशरीरिणी।

न शिवेन बिना देवी न देव्या च बिना शिवः।।

(देवी भागवत–२.४.३–६)

इन शास्त्रीय प्रमाणों से शिव–शक्ति का अभेद सिद्ध होता है। अथ च दोनों की तुल्यता ज्ञात होती है। कितने ही दार्शनिक शक्तितत्व को कारण नहीं मानते है। उनके मत से निरपेक्ष ब्रह्म–कारण–वाद ही सम्मत है, परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। शक्ति के बिना ब्रह्म–कारणवाद असंगत है। इसीलिए स्वच्छन्दतन्त्र में कहा है–

तत्वारूढः स भगवान् शिवः परमकारणम्।

शिवः सर्वस्य कर्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते।।

(कामकलाविलास में उद्धृत, पृ० ७)

अर्थात तत्वारूढ़ भगवान् शिव तथा शक्ति ही जगत् के कर्ता तथा कारण हैं। सृष्टि के लिए उन्मुख दोनों तत्वों के आदि समागम को ही महाबिन्दु कहते हैं। इसी से नाद तत्व व्यक्त होता है। वही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप धारण कर लो है। 'एकोऽहं बहुत स्याम्' इस श्रुति में इसे ही 'एकोऽहम्' इस पद से कहा गया है। आनन्द रूप लीला हेतु ही

यह शिव–शक्तिमय सारा विश्व चेष्टा कर रहा है। कार्य–कारण का अभेद होने से यह जगत् ब्रह्म रूप ही है। 'एकोऽहं' यह वाक्य शब्दब्रह्म तथा सामरस्य शिव शक्ति रूपात्मक अद्वैत का एक–सा ही बोधन करता है। कहा भी है –

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।

हकारोऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।।

(कामकलाविलास, पु.१७)

अर्थात शिव को प्रकाश तथा शक्ति को विमर्श कहते हैं। समस्त वर्णो के आदि में अकार प्रकाशरूप शिव का वाचक है तथा अन्त में आया हुआ हकार शक्ति का बोधक है। इसी को 'अहम्' यह पद बता रहा है। इसीलिए इसे नाद या शब्दब्रह्म कहते हैं। अकार एवं हकार का सामरस्य परतत्व में है। इसी 'अहम् से समस्त मातृका–चक्र व्यक्त होता है, जिन्हें वाञ्च–वाचकभाव का बोधक कहते हैं। 'नाद सर्ववर्णोत्पत्ति हेतु वर्णः'। समस्त वर्णो की उत्पत्ति का माध्यम परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी इन चारों वाणियों की अधिष्ठात्री चार शक्तियाँ कही जाती हैं, जिन्हे बामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका कहते हैं। इनका लक्षण इस प्रकार किया जाता है –

'तत्र वामानाम स्वान्तः स्थिति प्रयञ्चवमनात् विश्वजनयित्री ज्येष्ठा, सर्वमङ्गकारिणी, रौद्री सर्वरोग विद्राविणी, अम्बिका सर्वेष्टप्रदा शक्तिः'।

(कामकलाविलास, प्र०५०)

परावाक् अम्बिका इच्छा–ज्ञान–क्रिया शक्ति क्रम से पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप कही जाती है। नाद तत्व से श्वेत बिन्दु (शिवात्मक) तथा रक्त बिन्दु (शक्त्यात्मक) व्यक्त होते हैं। श्वेत बिन्दु में रक्त में श्वेत बिन्दु प्रविष्ट होकर कला की स्फुट व्यक्ति करते हैं। इस प्रकार नाद, बिन्दु और मिश्र इन तीनो से यह स्थूक्त दृश्यमान जगत् उत्पन्न होता है। कहा भी गया है –

वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शिवशक्ति मयावैतौ।

सृष्टि स्थितिक्तयभेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिजीब रूपेण।।

(कामकलाविलास, पृ.३३)

शब्द, अर्थ शिव–शक्तिमय परस्पर नित्य सम्बन्ध वाले हैं। इन्ही के द्वारा सृष्टि–प्रक्रिया होती है।

वर्णः कलापंद तत्वं मन्त्रों भुवनमेव च।

इत्यध्वषट्कं देवेशि भातित्वयि चिदात्मनि।।

(सौभाग्यहृदय, पृ.६0)

अर्थात वर्ण, पद एवं मन्त्र मे तीन शब्दाध्वा कहे जाते है। इन तीनों का आविर्भाव नाद तत्व से होता है। कला, तत्वऔर भुवन ये तीन अर्थाध्वा कहे जाते हैं। शब्दाध्वा के वर्ण, पद तथा मन्त्र के अनन्त प्रकार हैं। अर्थाध्वा में कला, भुवन और तत्व हैं। कला के पाँच प्रकार हैं– निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति तथा शान्त्यतीता। तत्व कुल छत्तीस हैं। भुवन दो सौ चौबीस हैं। भुवन कला तत्वों के ही अर्न्तगत हैं। इनकी भी उत्पत्ति शक्ति तत्व से हुई हैं, जिन्हें 'वागर्थौ नित्ययुतौ' इस श्लोक से कहा गया है। इस प्रकार शब्दमय और अर्थमय इन द्विविध सृष्टियों का कारण शक्ति तत्व है।

उपसंहार

उपसंहार

शक्ति स्वरूप तथा शाक्त सिद्धान्त के अनुसार जगतजन्ननी मॉ दुर्गा ही एक पात्र जगत की संचालिका है। वहीं सृष्टि की रचयिता, पालनकर्ता एवं संहाकरकर्ता है। उनसे भिन्न इस जगत में और कुछ भी नहीं है। जिससे यह चराचर जगत व्याप्त है। वह उन्हीं पराम्बा की महिमा है वह महामाया है तथा बड़े–बड़ू ज्ञानियों को मोहित करती है। जो कुछ मूर्त है सम्पूर्ण जगत दृष्टिगोचर होता है। ज्ञानस्वरूप मनुष्य उसे भगवती की कृपा समझते हैं। किन्तु इस संसार को अर्थ स्वरूप समझने वाले बुद्धिहीन पुरूष को मोह रूप सागर में भटकना पड़ता है। किन्तु जो शुद्ध चित्त ज्ञानी पुरूष है, वे सम्पूर्ण जगत को परमात्मा का ज्ञान रूप स्वरूप ही देखते है। भवगती दुर्गा के उपासकों, ज्ञानियों तथा मनीषियों का निश्चिय है। सम्पूर्ण जगत शक्ति से उत्पन्न हुआ है। पराम्बा मॉ दुर्गा से भिन्न इस संसार का कोई और कारण नहीं है। अतः शक्ति स्वरूप एवं शाक्त स्वरूप का समीक्षात्मक अध्ययन (श्रीमद्भागवत तथा मार्कण्डेय पुराण के विशेष सन्दर्भ में) इस शोध में पराम्बा मॉ दुर्गा के परम स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। **सर्व रूपयी देवी सवं देवी मयं जगत। अतोऽहम विश्वरूपां त्वां नमामि परमेश्वरीम्।।**

तान्त्रिक सिद्धान्तानुसार सृष्टि का निर्माण शिव तथा शक्ति के संयोग का परिणाम है और दोनों कासंयोग ही नाद का मूल कारण है। यथा–

सच्चिदानन्दविवात्स कलात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादा नादाद्विन्दुसमुद्भवः

(शारदातिलक–१.७)

आगम तथा योग ग्रन्थों में नाद एवं लय दोनो का सर्वाधिक महत्व दर्शाया गया है। शैवागम के अनुसार नाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं– १. नाद, २. अनाहत

नाद तथा ३. आहत नाद। नाद अथवा महानाद का उद्भव शक्ति से बतलाया गया है। इसी नाद से बिन्दु नाद का उद्भव होता है, जो अनाहत नाद के रूप में समस्त गगन मे व्याप्त रहता है। इसी का गद्य–पद्यादि वाङ्मय आदि में व्यक्त वर्ग मूलक रूप 'आहत' कहलाता है। नादानुसन्धान लय–सिद्धि के लिए परम साधक माना या है।

नाद में समस्त वर्ण अर्थ–प्रकाशन रूप सामर्थ्य से रहते हैं। ज्यो–ज्यों सृष्टि स्थूल रूप धारण करती जाती है, त्यों–त्यों शब्द भी स्पष्ट रूप धारण करता जाता है। सृष्टि के आरम्भ काल में केवल शब्द था, वह परमात्मा के साथ था और वह स्वंय परमात्मा स्वरूप था। पराशक्ति जब सृष्टि करने की इच्छा से 'अहं' रूप से ब्रह्म का प्रकाशात्मक भाव तथा विषय का इदं रूप से विमर्शात्मक रूप धारण करके विपक्षी और विपक्ष रूप को व्यक्त करती है, उसका हेतु शब्द ही माना जाता है। आदिम शब्द को परावाणी कहते हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था है। यह ब्रह्म की भाषा कही जाती है। मूलाधार से इसकी व्यक्ति होती रहती है। इसको योगी ही जान सकते हैं। मन्नों, बीजों का विकास इसी से होता है। जब विमर्श और प्रकाश की स्थूलावस्था होने लगती है, तब उसे ही नाद कहा जाता है। शाक्तगमों के अनुसार पराशक्ति वर्णार्थरूपा है। यथा –

नित्यामनन्तां प्रकृतिं पुराणीं चिदीश्वरीं सर्वजगन्निवासाम्।
शिवार्धदेहामगुणां गुणाढयां वर्णार्थरूपां प्रणमामि देवीम्।।

(आगमरहस्य, श्लो.२),

योगाशास्त्र में नाद, बिन्दु, कला के तीन नाम शब्द को ही अवस्था भेद से दिये गये हैं। जैसे–जैसे अर्थों में विचित्रता होती जाती है, वैसे, वैसे शब्द भी रूप धारण करता जाता है। क्रम से तीन वाणी पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी रूप धारण करके समस्त वैदिक तथा लौकिक व्यवहार का कारण शब्द ही है। परावाणी सत्य और नित्य मानी गयी है। शेष वाणियों में माया या अज्ञान के परिणामों का सम्बन्ध होने से क्रमशः तारतम्य होता गया है। वर्ण ही शब्द है। व्याकरण के वर्णो से भिन्न स्फोट को शब्द बताया गया है। यथा– 'नादाभिव्यड़गयः शब्दः स्फोटः'। नाद या वर्ण से स्फोट की व्यक्ति या प्रकाश होता है और वह नित्य है।

जब आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थ को लेकर मन के साथ बोलने की इच्छा से युक्त होता है, मन शरीर की अग्नि में आघात करता है, यह आघात वायु को प्रेरित करता है, उससे वक्षःस्थल में गम्भीर स्वर की उत्पत्ति, वैखरी नामक अत्यन्त स्थूल वाणी की उत्पत्ति होती है। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के भेदों से षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद–ये सात स्वर भी शब्द के उच्चारण में माने जाते हैं।

शुद्ध सात्विक देवी भाव का व्यंजक शब्द ही मन्त्र कहलाता है। शाक्तागमों में देवता तथ मन्त्र एक ही हैं। देवा का ही पूर्व रूप शब्द या मन्त्र है। जैसे घट, कलश तथा कुम्भ एक ही अर्थ को बताते हैं, वैसे इसी प्रकार देवता, मन्त्र तथा गुरू का अभेद है। जैसे देवता हैं, वैसे ही मन्त्र तथा गुरू भी हैं। इनके पूजन से तुल्य फल होता है। इससे देवता के साथ अभेद और नित्यता ज्ञात होती है। यथा –

यथा घटश्च कलाः कुम्भश्चैकार्धवाचकः।
यथा देवश्च मन्त्रश्च यथा गुरूश्चैकार्थ उच्यते।।
यथा देवस्तथा मन्त्रों यथा मन्त्रस्तथा गुरूः।

देवमन्त्रगुरूणाश्च पूजया सदृशं फलम्।।

(कुलार्णवतन्त्र—१३, ६४—६५),

स्वंय नाद की व्युत्पत्रि भी उपर्युक्त ऐक्य की ओर ही इंगित करती है। नाद शब्द में 'ना' एवं 'द' दो अक्षर हैं। 'ना' का अर्थ प्राण एवं 'द' का अर्थ अग्नि है। प्राण (प्राणवायु) एवं अग्नि के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त तथ्य का स्पष्टीकरण संगीतरत्नाकर के निम्नलिखित श्लोक से होता है —

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातं प्राणाग्नि संयोगातेन नादो ऽभि धीयते।।

मतंग ने भी नाद शब्द कीव्युत्पत्ति उपर्युक्त ढंग से ही की है। यथा—

नकारं प्राण इत्याहुर्दकारश्चानलो मतः।
नादस्य द्विपदार्थोऽयं समीचीनं मर्यादितः।।

(बृहद्दशी, श्लोक—२२)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि 'नाद' शब्द के अन्तर्गत नकार प्राण के अर्थ में एवं दकार अग्नि के अर्थ में प्रायः प्रयुक्त किया गया है।

डॉ. शिवशंकर अवस्थी ने अपने ग्रन्थ 'मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य' के द्वितीय अध्याय में नाद के स्थूल रूप शब्द और व्यापार के विषय में विस्तृत परिचर्चा की है। उनके अनुसार सम्पूर्ण विश्व के अन्तराल में अवस्थित अगणित प्रमेय रूप अर्थ किसी न किसी शब्द अथवा पद द्वारा बोधित होते हैं। इसीलिए उन्हें पदार्थ कहा जाता है। इन्हीं पदार्थो को लेकर जागरास्था में जो वाग्व्यवहार देखा जाता है, कर्ण गोचर शब्द की यह अत्यन्त स्थूल दशा है। यह स्थूल शब्द वैखरी वाणी के नाम से कहा जाता है। सुप्रसिद्ध बिन्दु नाद और बीज—इस त्रयी में वाक् को बीज कहा जाता है। विराट् पुरूष (परावाक् रूप शब्दब्रह्म)

और इस स्थूल वैखरी वाक् की एकता है। यह (वैखरी) पंचदशाक्षर–राशिमय एवं सम्पूर्ण वैदिक तथा लौकिक शब्दों की आत्मा है।

वैखरी से सूक्ष्म मध्यमा को नाद तथा ध्वनि पदो से बोधित किया जाता है। विभिन्न शाक्तगमों में नाद के भेद वर्णित हैं, जो सामान्य क्षेत्रग्राह्म नहीं है और केवल योगियों द्वारा इनका अनुभव किया जाता है। पश्यन्ती वाक् ईश्वर तत्व है। तन्त्रों में कार्य बिन्दु से इसी वाणी का उल्लेख मिलता है। कारण बिन्दु स्वरूप शब्दब्रह्म जब पवन द्वारा प्रेरित होकर, नाभिदेश को प्राप्त होकर विमर्शात्मक मन से युक्त होता है, तो उसे ही सामान्य स्पन्द प्रकाश रूप, कार्य बिन्दुमय पश्यन्ती वाक् कहते हैं। पश्यन्ती वाणी में अवस्थित प्रकाशांश को वामा–शक्ति और विमर्शांश को इच्छा–शक्ति कहते हैं। पश्यन्ती ही परा स्थिति है, जिसे शब्दब्रह्म कहा जाता है। परा तुरीय तत्व है। यह अव्यक्तसंज्ञक शब्द है। जगद् रूप अंकुर के लिए कन्दात्मक होने के कारण यह परावाक् कारण बिन्दु के नाम से विदित है। स्वप्रतिष्ठा होने से परावाणी निस्यन्द मानी जाती है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्तियाँ यहाँ समष्टि रूप से विद्यमान रहती हैं। परावाणी में वर्तमान प्रकाशांश को अम्बिका एवं विमर्शांश को शान्ता कहा जाता है।

सृष्टिकर्त्ता में पराशक्ति बिन्दुत्रयरूप कामकलाक्षर से प्रकट होती है और सब वस्तुओं के समूह को पैदा कर तथा तत्तद्देवताधिष्ठित ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय से उन्हें संयुक्त कर शब्द तथा अर्थ की सृष्टि के कारण वह पराशक्ति परबीज स्वरूपता को प्राप्त हो जाती है। तीन बिन्दु (कार्य), नाद और बीज ही परा स्थिति में एक शक्तित्रिपुटी बन जाती है, जो निम्नलिखित रूप में भी व्याख्यापित है –

१– शिव + शक्ति तथा शिव, शक्ति

२– प्रकाश + विमर्श तथा प्रकाश, विमर्श

३– श्वेत + रक्त तथा श्वेत, रक्त

४– बिन्दु, नाद तथा बीज

५– परम्, सूक्ष्म तथा स्थूल

६– काली, तारा, षोडशी

७– ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र

८– इच्छा, ज्ञान, क्रिया

९– चन्द्र, सूर्य, अग्नि

१०– रजस्, सत्तव, तमस्

११– वामा, ज्येष्ठा, रौद्री

इस प्रकार कामकला, जो बिन्दुत्रयात्मक है, ब्रह्म की प्रथम क्रियाशीलता का द्योतक है, जो प्रलय के बाद होती है। कामकला का उल्लेख सभी तन्त्रों में हुआ है। गन्धर्वतन्त्र के तीसवें उल्लास में कामकला के तीन स्वरूपों का वर्णन किया गया है। पहला स्थूल स्वरूप है, जिसमें उसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है कि मानो वह साधक से अलग उसके बाहर कोई वस्तु हो। यह कामकला की बाह्य भावना है। इस भावना के अनुसार सूर्य बिन्दु कामकला या मन्मथकला का मुख, चन्द्र और अग्नि बिन्दु उसकेदो स्तन तथा हार्द्धकला या संवित उसकी योनि निर्दिष्ट की गयी है।

कामकला के इस स्वरूप से साधक को तादात्म्य स्थापित करना होता है। कामकला का दूसरा स्वरूप सूक्ष्म बताया गया है, जिसमें कामकला के विद्युत के समान प्रकाशवती कुण्डलिनी के रूप में ध्यान करना होता है, जो मूलधार से लेकर षट्चक्रकों से होती हई

ब्रह्मरन्ध्रतक व्याप्त रहती है। यह कामकला का आन्तर भाव है। इस भाव मे कामकला को सहस्त्रदल कमल में हार्द्ध रूप से भावित करना होता है।

कामकला का तीसरा स्वरूप मन्त्रतनु कहा गया है। इसे त्रयी मयी भी कहा गया है जो प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। इस स्वरूप में सामवेद कामकला को मुख,. ऋग्वेद तथा यजुर्वेद उसके दो स्तन तथा अर्थवेद हर्द्ध वाला निर्दिष्ट हुआ है। अन्त में गन्धर्वतन्त्र यह बतलाता है कि कामकला ही एक मात्र तुरीय ब्रह्म है। सर्वोल्लासतन्त्र में उद्धृत तन्त्रान्तर बताया गया है कि एक बिन्दु लयावस्था का द्योतक है। दो बिन्दु सृष्टवस्था के और तीन बिन्दु स्थिति के परिचायक हैं। श्यामारहस्य में श्रीक्रम से कामकला का पूरा विवरण उद्ध् ृत किया गया है।

महामहोपाध्याय पण्डित श्री गोपीनाथकविराज ने कामकला के विवेचन में निरूपित किया है कि शाक्त–मतानुसार समग्र विश्व–रचना के मूल में वर्तमान अखण्ड सत्ता जब आत्मप्रकाश करना चाहती है, तब शिव–शक्ति का सामरस्य घटित होता है। यह सामरस्य निर्विकार है। इसमें न ह्रास है, न वृद्धि ही है और वह अनादि, अनन्त, स्व प्रकाश तथा चिदानन्दमय है। इसी सामरस्य से पीठ–रचना का प्रारम्भ होता है। शिव – शक्ति का जो सामरस्य है, वही परम बिन्दु है।

कामकला (मन्मथकला, चित्कला) का चित्रांकन यहाँ देना समुचित नहीं प्रतीत हो रहा है। त्रिबिन्दुओं को तथा हार्द्धकला को मिलाने से 'ई' का आकार कामकला (मन्मथकला, चित्कला) का चित्राड़कन यहाँ देना समुचित नहीं प्रतीत हो रहा है। त्रिबिन्दुओं को तथा हादर्द्धकला को मिलाने से 'ई' का आकार बनता है। यह ईकार ही संसार के मूलाधार की कुण्डलिनी है अथवा कामकला 'ई' कुण्डलिनी पोडशी कामाक्रान्त्त स्त्रीवेश धरिर्णी महाशक्ति

संसार के आकर्षण का आह्लादक रूप है।

इस प्रकार शक्ति के विविध स्वरूपों तथा शाक्तदर्शन के सिद्धान्तो का यथाशक्ति एवं यथामति विवेचना करने के अनन्तर भगवती जगज्जननी के श्रीचरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए अपनी लेखनी को विराम प्रदान करती हूँ –

या नित्या श्रुतिशीर्षदर्शिततनुर्ब्रह्मा यदाद्यप्रजा
विश्वेषां जननस्थिती विदधती मातेति या गीयते।
अंकें सुप्त मिवात्मजं वहति या कल्पावसानां जगत्
तां दुर्गां चिदचिन्मयीं परतरानन्दाय वन्दामहे।।

।। इति शुभं भूयात् ।।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	संस्करण
1.	ऋग्वेद	सायण भाष्योपेत चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
23.	यजुर्वेद	सायण महीधर उब्वट भाष्य सहित, चौखम्बा, वाराणसी।
3.	सामवेद	सायण भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4.	अथर्ववेद	सायण भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5.	मनुस्मृति	कुल्लूकमहटीका संहिता
7.	याज्ञवल्क्य स्मृति	चौखम्बा सुभारती प्रकाशन
7.	ब्रह्मसूत्र	शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर
8.	साख्यदर्शन	डॉ0 उमेश मिश्र कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
9.	पातञ्जली योग सूत्र	महर्षि पातंजलि कृत, गीताप्रेस, गोरखपुर
10.	रामायण	महर्षि बाल्मीकि कृत खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई।
11.	महाभारत	गीता प्रेस, गोरखपुर
12.	सत्यार्थप्रकाश	महर्षि दयानन्दकृत वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
13.	संस्कार विधि	डॉ0 राजवलि पाण्डेय, चौखम्बा प्रकाशन
14.	शाक्त प्रमोद	खेमराजश्री कृष्णदास
15.	मन्त्र महोदधि	डॉ0 श्रवण महीधर विरचित
16	ईशादिनौ उपनिषद	गीता प्रेस, गोरखपुर
17.	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	महर्षि दयानन्दकृत वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
18.	भारतीय दर्शन	डॉ0 उमेश मिश्र, चौखम्बा सुरभारती, प्रकाशन
19.	विष्णुपुराण	वेद व्यासकृत, गीताप्रेस, गोरखपुर
20.	शिवपुराण	महर्षिवेद व्यास कृत, खेमराज श्रीकृष्णदास
21.	श्रीमद्देवीभागवत	महर्षिवेद व्यास कृत, खेमराज श्रीकृष्णदास
22.	गरूणपुराण	महर्षिवेद व्यास कृत, गीता प्रेस, गोरखपुर
23.	उपनिषद संग्रह	शांकर भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर
24.	निर्णय सिन्धु	कमलाकर भट्ट, प्रणीत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
25.	धर्मसिन्धु	कमलाकर भट्ट, प्रणीत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
26.	विश्वसूक्तिकोष	डॉ0 श्यामबहादुर वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
27.	अमरकोष	डॉ0 अभिमन्यु महर्षि दयानन्द

28.	वैदिक सम्पत्ति	महर्षि दयानन्द, अजमेर प्रकाशन
29.	दुर्गासप्तशती	गीताप्रेस, गोरखपुर
30	श्रीविद्यारहस्य	जगदगुरू शंकराचार्य ज्योतिष पीठ, द्वारिका
31	श्री वगुलामुखी रहस्य	पीताम्प्रा पीठ, दतिया
32	श्री धर्मसूत्र	महर्षि यास्क कृत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी
33	पूर्व मीमांसा	आचार्य जैमिनी कृत, गीताप्रेस, गोरखपुर,
34	वैदिक साहित्य का इतिहास	राजबलि पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन,
35.	कालिका पुराण	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
36	श्रीमद्देवी भागवत	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
37.	माकर्ण्डेय पुराण	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
38.	शाक्तार्णव	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
39.	आपस्तम्बग्रह्यसूत्र	महर्षि यास्क, चौखम्बा विद्या भवन
40.	श्री दुर्गार्चन कृति	खेमराज श्री कृष्णदास

सन्दर्भग्रन्थ सूची

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	संस्करण
1.	ऋग्वेद	सायण भाष्योपेत चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
23.	यजुर्वेद	सायण महीधर उब्वट भाष्य सहित, चौखम्बा, वाराणसी।
3.	सामवेद	सायण भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4.	अथर्ववेद	सायण भाष्य सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
5.	मनुस्मृति	कुल्लूकमहटीका संहिता
7.	याज्ञवल्क्य स्मृति	चौखम्बा सुभारती प्रकाशन
7.	ब्रह्मसूत्र	शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर
8.	साख्यदर्शन	डॉ0 उमेश मिश्र कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
9.	पातंञ्जली योग सूत्र	महर्षि पातंजलि कृत, गीताप्रेस, गोरखपुर
10.	रामायण	महर्षि बाल्मीकि कृत खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई।
11.	महाभारत	गीता प्रेस, गोरखपुर
12.	सत्यार्थप्रकाश	महर्षि दयानन्दकृत वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
13.	संस्कार विधि	डॉ0 राजवलि पाण्डेय, चौखम्बा प्रकाशन
14.	शाक्त प्रमोद	खेमराजश्री कृष्णदास
15.	मन्त्र महोदधि	डॉ0 श्रवण महीधर विरचित
16	ईशादिनौ उपनिषद	गीता प्रेस, गोरखपुर
17.	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	महर्षि दयानन्दकृत वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
18.	भारतीय दर्शन	डॉ0 उमेश मिश्र, चौखम्बा सुरभारती, प्रकाशन
19.	विष्णुपुराण	वेद व्यासकृत, गीताप्रेस, गोरखपुर
20.	शिवपुराण	महर्षिवेद व्यास कृत, खेमराज श्रीकृष्णदास
21.	श्रीमद्देवीभागवत	महर्षिवेद व्यास कृत, खेमराज श्रीकृष्णदास
22.	गरूणपुराण	महर्षिवेद व्यास कृत, गीता प्रेस, गोरखपुर
23.	उपनिषद संग्रह	शांकर भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर
24.	निर्णय सिन्धु	कमलाकर भट्ट, प्रणीत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
25.	धर्मसिन्धु	कमलाकर भट्ट, प्रणीत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
26.	विश्वसूक्तिकोष	डॉ0 श्यामबहादुर वर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
27.	अमरकोष	डॉ0 अभिमन्यु महर्षि दयानन्द

28.	वैदिक सम्पत्ति	महर्षि दयानन्द, अजमेर प्रकाशन
29.	दुर्गासप्तशती	गीताप्रेस, गोरखपुर
30	श्रीविद्यारहस्य	जगदगुरू शंकराचार्य ज्योतिष पीठ, द्वारिका
31	श्री वगुलामुखी रहस्य	पीताम्रा पीठ, दतिया
32	श्री धर्मसूत्र	महर्षि यास्क कृत चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी
33	पूर्व मीमांसा	आचार्य जैमिनी कृत, गीताप्रेस, गोरखपुर,
34	वैदिक साहित्य का इतिहास	राजबलि पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन,
35.	कालिका पुराण	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
36	श्रीमद्देवी भागवत	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
37.	माकर्ण्डेय पुराण	महर्षि वेदव्यास कृत खेमराज श्री कृष्णदास
38.	शाक्तार्णव	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
39.	आपस्तम्बग्रह्यसूत्र	महर्षि यास्क, चौखम्बा विद्या भवन
40.	श्री दुर्गार्चन कृति	खेमराज श्री कृष्णदास